प्रकाशक—
श्री गणेशप्रसाद वर्णी
जैन ग्रन्थमाला
भदैनीघाट काशी

पहलीबार
अक्षय तृतीया २४७५
मूल्य लागत मात्र ६)

मुद्रक
पं० पृथ्वीनाथ भार्गव,
भार्गव भूषण प्रेस गायघाट बनारस

"मेरी जीवनगाथा"

के विषय में

पूज्य श्री वर्णीजी के उद्गार

मैं अपनी जीवनी लिखूं इतनी कल्पना स्वप्न में भी न थी। इसमें ऐसा लिखा है ही क्या। अधिकतर दूसरे भाई इसे जिस दृष्टि से देखते हैं उसमें मेरा कुछ भी आकर्षण नहीं है। न तो मैं शोधक हूं और स्वतन्त्र विचारक ही हूं। मैं तो भगवान महावीर के महान् सिद्धान्तों का अनुयायी मात्र हूं। मुझे उनके मार्ग अनुसरण करने में जो आनन्दानुभव आता है वह वचनातीत है। अतः मेरी जीवनी को विशाल रूप मिले यह मैं नहीं चाहता। कुछ भाई बहिनों ने ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी जिससे मुझे इसके लिखने के लिए बाध्य होना पड़ा है, यह दूसरी बात है। आशा है इससे पाठकगण मात्र तो दर्पण की शिक्षा लेंगे

फाल्गुन सुदि १५ सं. २००५ गणेश वर्णी

गुरुवर्य पं० कैलाशचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री, श्रीमान् पं० पन्नालालजी धर्मालंकार, श्रीमान् पं० महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्य और श्रीमान् पं० वंशीधरजी व्याकरणाचार्यके साथ विचार विनिमय करनेसे पुनः ऐसा योग आया जिससे मैं अपने इन विचारोंको कार्यान्वित करनेमें समर्थ हुआ। इस समय पहलेकी अपेक्षा मुझे सहयोग भी अच्छा मिल गया। इसीका फल है कि आज इस ग्रन्थमालाने मूर्त रूप ले लिया है।

प्रारम्भमें मैंने इस ग्रन्थमालासे सर्वार्थसिद्धि, पञ्चाध्यायी और तत्त्वार्थसूत्र प्रकाशित करनेका निर्णय किया था जो इस समय प्रेसमें है। किन्तु जब योगायोग बलवान् होता है तो सहज ही अनुकूल सामग्री मिलती जाती है। मुझे इस बातका स्वप्नमें भी ख्याल न था कि जिन महापुरुषकी सेवाओंके उपलक्ष्यमें इस ग्रन्थमालाकी स्थापना की गई है उनकी पवित्र जीवनी 'मेरी जीवन गाथा' इससे प्रकाशित करनेके लिये मिल जायगी। परन्तु आज हमें यह लिखते हुए परम आनंदका अनुभव हो रहा है कि ग्रंथमालाका यह सबसे पहला ग्रंथ है जो इससे प्रकाशित हो रहा है।

'मेरी जीवन गाथा' क्या है इसकी अपेक्षा यह क्या नहीं है यह कहना अधिक उपयुक्त है। इसमें वर्तमान कालीन समाजका सुन्दर चित्रण तो किया ही गया है। साथ ही यह अद्भुत धर्म शास्त्रका भी ग्रन्थ है। इसमें प्रायः सभी विषयोंका समावेश है। अनेक सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थाओं व कार्यकर्ताओंका परिचय भी इसमें दिया गया है। यह पूज्य श्री वर्णीजी महाराजके कर कमलों द्वारा लिखा गया है। इससे उनकी कल्पकता और लेखन शैलीका सहज ही पता लग जाता है। जीवनीको पढ़ते समय अनेक भाव मनमें उदित होते हैं। कहीं कहीं तो घटनाओंका इतने कारुणिक और रोचक ढंगसे चित्रण किया गया है जिससे बलात् आँखोंमें आँसू आ जाते हैं और जिससे

बंध जाती हैं। जहां पूज्यश्रीका किसीसे मतभेद हुआ वहां उसका उन्होंने स्पष्ट निर्देश किया है।

पूज्यश्री महराज अपने पदके अनुसार स्याहीसे बहुत ही कम लिखते हैं। अधिकतर सीस पेंसिलसे लिखा करते हैं। 'मेरी जीवन गाथा' भी इसी प्रकार लिखी गई है। अतएव इसको वर्तमान रूप देनेका काम श्रीमान पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य सागरने किया है। हेडिंग आदि भी उन्होंने ही बनाये हैं। उन्होंने यह कार्य पूज्यश्री महाराजकी आज्ञासे किया है। इसमें भाषा और भाव बिल्कुल नहीं बदले गये हैं। केवल प्रकरणोंको आनुपूर्वीरूप दिया गया है। इस काममें साहित्याचार्य जी को बड़ा श्रम करना पड़ा है अतएव उन्हें जितना धन्यवाद दिया जाय थोड़ा है।

मेरी इच्छा थी कि जितने अच्छे ढंगसे इस का प्रकाशन हो रहा है और जितनी अच्छी साधन सामग्री इसके लिये जुटाई जा रही है उतनी ही महत्त्वपूर्ण इसकी प्रस्तावना रहे। किन्तु प्रस्तावना लिखाई किससे जाय यह प्रश्न तब भी सामने था। बहुत कुछ विचार विनिमयके बाद यह निश्चय हुआ कि इसकी प्रस्तावना लिखनेके लिये कांग्रेसके प्रसिद्ध नेता श्रीमान् पं० द्वारकाप्रसाद जी मिश्र (गृहमंत्री मध्यप्रान्त सरकार) से प्रार्थना की जाय। तदनुसार मैं नागपुर गया और उनसे प्रस्तावना लिख देनेके लिये निवेदन किया। मैं डरता था कि कहीं ऐसा न हो कि वे देशकी वर्तमान अड़चनों को देखते हुए इनकार कर दें। किन्तु प्रसन्नता है कि उन्होंने प्रस्तावके अभिप्राय को समझ कर सहज ही उसकी स्वीकारता दे दी और जहां तक बन सका शीघ्रातिशीघ्र इसकी प्रस्तावना लिख दी। प्रस्तावना क्या है जैन समाज और खास कर जैन नवयुवकों को एक चेतावनी है। उन्हें उनके तत्त्वज्ञान को समझने मनन करने और तदनुकूल आचरण करने की उसमें प्रेरणा है। मैं [illegible] तरह जानता हूं। [illegible] पाण्डित्य जो इस [illegible] नहीं [illegible]

हैं जो आज हम ग्रन्थमालाके कामको इस रूपमें देख रहे हैं। मुझे विश्वास है कि भविष्यमें भी हमें यह आशीर्वाद इसी प्रकार प्राप्त होता रहेगा।

वर्णी ग्रन्थमालाका उद्देश्य महान और उदार है। यह संकुचितता और साम्प्रदायिकतासे दूर रहकर सत्साहित्यके प्रकाशन और प्रचार द्वारा मानवसमाजकी सेवा करना चाहती है। मेरा विश्वास है कि प्रस्तुत ग्रन्थ इस उद्देश्यकी पूर्तिमें पूरा सहायक होगा। अधिक क्या।

काशी
अक्षय तृतीया
वी० नि० सं० २४७९ }

फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री
संयुक्त मंत्री श्री० ग० व०
जैन ग्रन्थमाला काशी

प्रस्तावना

हिन्दी भाषामें आत्म-कथाओंका अभाव है। अभी दो वर्ष पूर्व देशरत्न डा० राजेन्द्रप्रसादकी आत्म-कथा प्रकाशित हुई थी इसी प्रकारकी एकाध और पुस्तकें है[1]। वर्णीजीने अपना आत्म-चरित लिखकर जहां जैन-समाजका उपकार किया है वहां हिन्दीके भंडारको भी भरा है। एतदर्थ वे बधाईके पात्र है।

श्रीमान् वर्णीजीसे मेरा परिचय किस प्रकार हुआ इसका उल्लेख उन्होंने स्वयं इस ग्रन्थमें किया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मेरा हृदय उनके प्रति अत्यन्त श्रद्धालु है। राजनीतिक क्षेत्रमें कार्य करते रहनेके कारण मेरा सभी प्रकारके व्यक्तियोंसे सम्बन्ध आता है। साधुस्वभाव व्यक्तियोंकी ओर मैं सदा ही आकर्षित हो जाता हूँ। प्रातः स्मरणीय महात्मा गांधीके लिए मेरे हृदयमें जो असीम श्रद्धा है उसका कारण उनका राजनीतिक महत्त्व तो कम और उनके चरित्रकी उच्चता ही अधिक रही है। उनके सामने जाते ही मुझे ऐसा अनुभव होता था कि मैं जिस व्यक्तिसे मिल रहा हूँ उसने अपने सभी मनोविकारोंपर विजय प्राप्त कर ली है। वर्णीजीके संपर्कमें मैं अधिक नहीं आया परंतु मिलते ही मेरा हृदय श्रद्धासे भर गया। उन्होंने जबलपुरके जैन समाजके लिए बहुत कुछ किया है जिससे भी मैं भलीभांति परिचित हूँ। इसीलिए कुछ जैन मित्रोंने जब मुझसे इस ग्रन्थकी प्रस्तावना लिखनेका आग्रह किया तब समयका अभाव रहते हुए भी मैं 'नहीं' न कह सका।

बचपनमें जब मैं रायपुरमें पढ़ता था मेरे पड़ोसमें एक जैन गृहस्थ रहते थे। उनके पाससे मैं जैन धर्म संबंधी पुस्तकोंको लेकर पढ़ा करता था।

[1] सर्वप्रथम आत्मकथाके लिखनेका श्रेय कविवर बनारसीदासजीको है पर हिन्दी कवितामें है और अब कथानकके नामसे प्रसिद्ध है। कविवर बनारसीदासजी कविवर तुलसीदासजीके समकालीन थे।

आज हमारे राजनीतिक नेता हमें यह बता रहे हैं कि शीघ्र ही भारतवर्ष एशिया का नहीं, तो दुनिया का नेता होनेवाला है। मैं इसको तब नहीं समझ पाता कि यह नेतृत्व हमें अपने किन गुणोंके बल पर प्राप्त होगा। हम अमेरिकासे बढ़ कर एटम-बम न बना सकेंगे। हम योरपसे बढ़ कर कोई आयुधादि अपने सिपाहियों को न दिला सकेंगे। सच बात तो यह है कि मनुष्य को मृत्युके मुखमें ले जानेवाले साधनोंके आविष्कारमें हम भारतीय कभी पटु नहीं रहे। हमारे बाप दादोंने तो हम जीवन को जीना ही सिखाया है, हम दुनिया ही नहीं समस्त विश्व का नेतृत्व कर सकते हैं यदि हम अपनी परम्परा के प्रति सच्चे रहें। आज सारा संसार द्वेषजनित युद्धाग्निमें जल रहा है। प्रेम और अहिंसाके द्वारा हम इस अग्नि को बुझा कर संसार को शान्ति प्रदान कर सकते हैं। यही हमारी विशेषता और हमारा जातीय धर्म है। हमारे इस युगके विधायक गांधीजीने भी हमें यही मार्ग बताया है। जैनियोंने अहिंसा को विशेष रूपसे अपना रखा है। यदि वे उसे केवल उपदेश तक ही सीमित न रख वर्तमान युग की समस्याओंके हल करनेमें उसकी उपयोगिता प्रमाणित करने का भी प्रयास करें तो वे संसारके लिए प्रकाश स्तंभ सिद्ध होंगे। जैन नवयुवकोंका यह कर्तव्य है कि वे मार्क्सवाद पढ़नेके बाद जैन-दर्शन का भी अध्ययन करें।। यदि वे सत्यके अन्वेषक हैं तो वह उन्हें घरमें ही प्राप्त होजावेगा।

वर्णी जी वयोवृद्ध हैं। मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूं कि उन्हें अपने पितामह की आयु प्राप्त हो जिससे कि वे जैन समाज ही नहीं समस्त भारतीय समाज का उत्तरोत्तर कल्याण कर सकें। उनकी 'आत्मकथा' लोगों को विद्यानुरागी त्यागी दृढ़प्रतिज्ञ तथा धर्मनिष्ठ बनावे यही मेरा इच्छा है।

[illegible]
नागपुर

अपनी बात

पूज्य क्षुल्लक गणेशप्रसाद जी वर्णी, बाबा भागीरथजी और पं० दीपचन्दजी वर्णी ये तीनों महानुभाव जैन समाजमें वर्णित्रयके नामसे प्रसिद्ध हैं। इनका पारस्परिक सम्बन्ध भी बहुत अच्छा रहा है। पूज्य वर्णीजीके सम्बन्धसे सागरमें बाबा भागीरथजी और पं० दीपचन्दजी वर्णीका अनेकों बार शुभागमन हुआ है। पहले किसी समय दीपचन्दजी वर्णी सागरकी सत्तर्कसुधातरङ्गिणी पाठशालामें (जो अब गणेश दि० जैन विद्यालय के नामसे प्रसिद्ध है) सुपरिन्टेन्डेन्ट रह चुके थे। तब उन्हें वहाँका छात्र-वर्ग 'बाबूजी' कहा करता था। पीछे वर्णी बन जानेपर भी सागरमें उनका वही 'बाबूजी' सम्बोधन प्रचलित रहा आया और उन्होंने छात्र वर्ग द्वारा इस सम्बोधन का प्रयोग होनेमें कभी आपत्ति भी नहीं की।

एक बार अनेक त्यागी वर्गके साथ उक्त वर्णित्रयका सागरमें चातुर्मास हुआ। उस समय में प्रवेशिका द्वितीय खण्डमें पढ़ता था और मेरी आयु लगभग १३ वर्ष की थी। लगातार चार माह तक सपर्क रहनेसे श्री पं० दीपचन्दजी वर्णीके साथ मेरी अधिक घनिष्ठता हो गई। पहले उनके साथ वार्तालाप करनेमें जो भय लगता था वह जाता रहा।

पूज्य वर्णीजी सारी जैन समाजके श्रद्धा भाजन हैं। मैंने जबसे होश संभाला तबसे मैं बराबर देखता आ रहा हूँ कि उनमें जैन समाजके आबाल वृद्ध की गहरी श्रद्धा है और वह उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। पूज्य वर्णीजी कौन हैं? इनमें क्या विशेषता है? यह सब समझना उस समय ही क्यों अब भी मेरे ज्ञानके बाहर है। फिर भी वे जब कभी शास्त्र प्रवचनों अथवा व्याख्यानोंमें अपनी जीवनकी कुछ घटनाओंका उल्लेख करते थे तब हृदयमें यह इच्छा होती थी कि यदि इनका पूरा जीवन चरित्र कोई लिख देता तो उसे एक साथ पढ़ लेता।

मैंने एक दिन श्री दीपचन्दजी वर्णीसे कहा कि 'बाबूजी आप बड़े वर्णीजीका (उस समय सागरमें पूज्य वर्णीजी इसी नामसे पुकारे जाते थे) जीवनचरित्र क्यों नहीं लिख देते ? आप इनके साथ सदा रहते हैं और इन्हें अच्छी तरह जानते भी हैं।' एक छोटे बालक विद्यार्थीके मुखसे इनके जीवन चरित लिख देनेकी प्रेरणा सुनकर उन्हें कुछ आश्चर्य सा हुआ। उन्होंने सरल भावसे पूछा कि तू इनका जीवन चरित क्यों लिखना चाहता है ? मैंने कहा 'बाबूजी ! देखो न, जब कभी ये स्वाध्याय सभामें अपनी जीवन घटनाएं सुनाने लगते हैं तब दुःखद घटनाओंसे समस्त सभाकी आँखोंसे आँसू निकल पड़ते हैं और कभी विनोदपूर्ण घटना सुनकर सभी लोग हँसने लगते हैं। मुझे तो लगता है कि इनके जीवन चरितसे लोगोंको बड़ा लाभ होगा।' उन्होंने कहा—'पन्नालाल ! तू समझता है कि इनका जीवनचरित लिखना सरल काम है और मैं इनके साथ रहता हूँ इसीसे समझता है कि मैं इन्हें जानता हूँ पर इनका जीवनचरित इनके सिवाय किसी अन्य लेखकको लिखना सरल नहीं है और ये इतने गंभीर पुरुष हैं कि वर्षोंके सम्पर्कमें भी इन्हें समझ सकना कठिन है। सम्भव है तेरी इच्छा ये स्वयं ही कभी पूर्ण करेंगे।' बाबूजीका उत्तर सुनकर मैं चुप रह गया और उस समयसे पूज्य वर्णीजीमें मेरी श्रद्धाका परिमाण कई गुणा अधिक हो गया।

मैं पहले लिख चुका हूँ कि वर्णीजी इस युगके सर्वाधिक श्रद्धाभाजन व्यक्ति हैं। इन्होंने अपनी निःस्वार्थ सेवाओंके द्वारा जैन समाजमें अनूठी जागृति कर उसे शिक्षाके क्षेत्रमें जो आगे बढ़ाया है वह एक ऐसा महान् काम है कि जिससे जैन समाजका गौरव बढ़ा है। जहाँ तत्त्वार्थसूत्रका मूल पाठ कर देनेवाले विद्वान् दुर्लभ थे वहाँ आज गोम्मटसार तथा धवलादि सिद्धान्त ग्रन्थोंका पारायण करनेवाले विद्वान सुलभ हैं। यह सब पूज्य वर्णीजीकी सतत साधनाओंका ही तो फल है। पूज्य वर्णीजीकी आत्मा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रसे प्रकाशमान है। उनके दर्शन करने मात्रसे ही दर्शकके हृदयमें सात्त्विक

सवार होने लगता है और न जाने कहांसे पवित्रताका प्रवाह बहने लगता है। बनारसमें स्याद्वाद विद्यालय और सागरमें श्री गणेश दि० जैन विद्यालय स्थापित कर आपने जैन संस्कृतिके संरक्षण तथा पोषणके रूपमें महान् कार्य किये हैं। इतना सब होनेपर भी आप अपनी प्रशंसासे दूर भागते हैं। अपनी प्रशंसा सुनना आपको बिलकुल पसंद नहीं है। और यही कारण रहा कि आप अपना जीवनचरित लिखनेके लिये बार बार प्रेरणा होनेपर भी उसे टालते रहे। वे कहते रहे कि भाई! कुन्दकुन्द, समन्तभद्र आदि लोक कल्याणकारी उत्तमोत्तम महापुरुष हुए जिन्होंने अपना चरित कुछ भी नहीं लिखा। मैं अपना जीवन क्या लिखूं? उसमें है ही क्या।'

अभी पिछले वर्षोंमें पूज्य श्री जब तीर्थराज सम्मेद शिखरसे पैदल भ्रमण करते हुए सागर पधारे और सागरकी समाजने उनके स्वागत समारोहका उत्सव किया तब वितरण करनेके लिये मैंने जीवनझांकी नामकी १६ पृष्ठात्मक एक पुस्तिका लिखी थी। उत्सवके बाद पूज्य वर्णीजीने जब वह पुस्तिका देखी तब हंसते हुए बोले 'अरे! इसमें यह क्या लिख दिया? मेरा जन्म तो हंसेरामें हुआ था तुमने मड़ावरामें लिखा है और मेरा जन्मसम्वत् १९३१ है पर तुमने १९३० लिखा है। बाकी सब स्तुतिवाद है। इसमें जीवन की झांकी है ही कहां?' मैंने कहा, 'बाबाजी! आप अपना जीवन चरित स्वयं लिखते नहीं हैं और न कभी किसीको क्रमबद्ध घटनाओंसे परिचित ही कराते हैं। इसीसे ऐसी गलतियां हो जाती हैं। मैं क्या करूं? लोगोंसे मैंने जैसा सुना वैसा लिख दिया।' सुनकर वह हंस गये और बोले कि अच्छा अब मोहन [illegible] देवेंगे। मुझे प्रसन्नता हुई। परन्तु नाटक लिखानेका अवसर नहीं आया। दूसरी वर्ष अमृत-पूर्ण आपका जन्मोत्सव हुआ, तब श्री पं० कस्तूरचन्द्रजी नायक, उनका अभिनन्दन [illegible] सुमेरचन्द्रजी [illegible] संक्षिप्त जीवनचरित लिख [illegible]

विषय सूची

मेरी जीवन गाथा

१

जन्म और जैनत्वकी ओर आकर्षण

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते ।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे ॥

मेरा नाम गणेश वर्णी है । जन्म सम्वत् १९३१ के कुवार वदि ४ को हँसेरे गाँवमें हुआ था । यह जिला ललितपुर (झांसी), तहसील महरौनीके अन्तर्गत मदनपुर थानेमें स्थित है । पिताका नाम श्री हीरालालजी और माताका नाम उजियारी था । मेरी जाति असाटी थी । यह प्रायः बुन्देलखण्डमें पाई जाती है । इस जातिवाले वैष्णव धर्मानुयायी होते हैं । पिताजीकी स्थिति सामान्य थी । वे साधारण दुकानदारीके द्वारा अपने कुटुम्बका पालन करते थे । यह समय ही ऐसा था जो आजकी अपेक्षा बहुत ही अल्प द्रव्यमें कुटुम्बका भरण पोषण हो जाता था ।

उस समय एक रुपयामें एक मनसे अधिक गेहूँ, तीन सेर घी और आठ सेर तिलका तेल मिलता था । शेष वस्तुएँ इसी अनुपातसे मिलती थीं । सब लोग कपड़ा प्रायः घरके सूतका पहिनते थे । घर घर चरखा चलता था । खानेके लिए घी दूध भरपूर मिलता था । जैसा कि आज कल देखा जाता है उस समय इन रोगियोंका सर्वथा अभाव था ।

[illegible] आयु १० वर्ष की होने पर मेरे [illegible] हुआ था । [illegible]

उस समय मनुष्योंके शरीर सुदृढ़ और बलिष्ठ होते थे। वे अत्यन्त सरल प्रकृतिके होते थे। अनाचार नहीं के बराबर था। घर घर गाय रहती थीं। दूध और दहीकी नदियाँ बहती थीं। देहातमें दूध और दही की बिक्री नहीं होती थी। तीर्थयात्रा सब पैदल करते थे। लोक प्रसन्नचित्त दिखाई देते थे। वर्षाकाल में लोग प्रायः घर ही रहते थे। वे इतने दिनों का सामान अपने अपने घर ही रख लेते थे। व्यापारी लोग बैलोंका लादना बन्द कर देते थे। वह समय ही ऐसा था जो इस समय सबको आश्चर्यमें डाल देता है।

बचपनमें मुझे अमानाके उदयसे सुखोंका रोग हो गया था साथ ही लीवर आदि भी बढ़ गया था। फिर भी आयुकर्मके निषेकोंकी प्रबलताके कारण इस सकटसे मेरी रक्षा हो गई थी। मेरी आयु जब ६ वर्षकी हुई तब मेरे पिता मड़ावरा आगये थे। तब यहाँ पर मिडिल स्कूल था, डाकखाना था और पुलिसथाना भी था। नगर अतिरमणीय था। यहाँ पर १० जिनालय और दिगम्बर जैनियोंके १५० घर थे। प्रायः सब सम्पन्न थे। दो घराने तो बहुत ही धनाढ्य और जनसमूहसे पूरित थे।

मैंने ७ वर्षकी अवस्थामें विद्यारम्भ किया और १४ वर्षकी अवस्थामें मिडिल पास हो गया। चूंकि यहाँ पर यहीं तक शिक्षा थी अतः आगे नहीं बढ़ सका। मेरे विद्यागुरु श्रीमान् पण्डित मूलचन्द्रजी ब्राह्मण थे जो बहुत ही सज्जन थे। उनके साथ मैं [illegible] बाजार श्रीरामचन्द्रजीके मन्दिरमें जाया करता था। वहीं रामायण पाठ होता था। उसे मैं आनन्द श्रवण करता था किन्तु मेरे घर के सामने एक जिनालय था इसलिये वहाँ भी जाया करता था। इस [illegible] सब [illegible] थे केवल [illegible] परवारपन प्रायः हमारे पिताका

आचरण जैनियोंके सदृश हो गया था। रात्रि भोजन मेरे
नहीं करते थे।

जब मैं १० वर्षका था तबकी बात है। सामने मन्दिरज
चबूतरे पर प्रति दिन पुराण प्रवचन होता था। एक दिन त्य
का प्रकरण आया। इसमें रावणके परस्त्री त्यागव्रत लेने
उल्लेख किया गया था। बहुतसे भाईयोंने प्रतिज्ञा ली, मैंने भ
उसी दिन आजन्म रात्रि भोजन त्याग दिया। इसी त्याग
मुझे जैनी बना दिया।

एक दिनकी बात है, मैं शालाके मन्दिरमें गया। दैवयोगसे
उस दिन वहाँ प्रसादमें पेड़ा बाँटे गये। मुझे भी मिलने लगे तब
मैंने कहा—'मैंने तो रात्रिका भोजन त्याग दिया है।' यह सुन
मेरे गुरुजी बहुत नाराज हुए, बोले, छोड़नेका क्या कारण है?
मैंने कहा, 'गुरु महाराज! मेरे घरके सामने जिन मन्दिर है, वहाँ पर
पुराण-प्रवचन होता है उसको श्रवण कर मेरी श्रद्धा उसी धर्ममें हो
गई है। पद्मपुराणमें पुरातन रामचन्द्रजीका चरित्र चित्रण किया है।
वही मुझे सत्य भासता है। रामायणमें रावणको राक्षस और हनुमान
को बन्दर बतलाया है। इसमें मेरी श्रद्धा नहीं है। अब मैं इस मन्दिरमें
नहीं आऊंगा, आप मेरे विद्यागुरु हैं, मेरी श्रद्धाको अन्यथा करनेका
आग्रह न करें।

गुरुजी बहुत ही भद्र प्रकृतिके थे अतः वे मेरे श्रद्धानके
साधक हो गये। एक दिनका जिकर है—मैं उनका हुक्का भर रहा
ा. मैंने हुक्का भरनेके समय तमाखू पीनेके लिये चिलमको
पड़ा, हाथ जल गया। मैंने हुक्का जमीन पर पटक दिया और
जीसे कहा, 'महाराज! जिसमें ऐसा दुर्गन्धित पानी रहता है उ
प पीते हैं?' मैंने तो इसे पीना छोड़ दिया, अब जो करना हो सो करो।
गुरुजी प्रसन्न होकर कहने लगे 'तुमने इस

फोड़ दिया, अच्छा किया, अब न पियेंगे, एक बला टली।' मेरी प्रकृति बहुत भीरु थी, मैं डर गया परन्तु उन्होंने सान्त्वना दी 'कहा—भयकी बात नहीं।'

मेरे कुलमें यज्ञोपवीत संस्कार होता था १२ वर्षकी अवस्था में। बुड़ेरा गांवसे मेरे कुल पुरोहित आये, उन्होंने मेरा यज्ञोपवीत संस्कार कराया, मन्त्रका उपदेश दिया। साथमें यह भी कहा कि यह मन्त्र किसीको न बताना अन्यथा अपराधी होगे।

मैंने कहा—'महाराज! आपके तो हजारों शिष्य हैं। आपको सबसे अधिक अपराधी होना चाहिये। आपने मुझे दीक्षा दी यह ठीक नहीं किया, क्योंकि आप स्वयं सदोष हैं।'

इस पर पुरोहितजी मेरे ऊपर बहुत नाराज हुए। माँने भी बहुत तिरस्कार किया, यहाँ तक कहा कि ऐसे पुत्रसे तो अपुत्रवती ही मैं अच्छी थी। मैंने कहा—'माँजी! आपका कहना सर्वथा उचित है, मैं अब इस धर्ममें नहीं रहना चाहता। आजसे मैं श्री जिनेन्द्रदेवको छोड़कर अन्यको न मानूंगा। मेरा पहलेसे यही भाव था। जैन धर्म ही मेरा कल्याण करेगा। बाल्यावस्थासे ही मेरी रुचि इसी धर्मकी ओर थी।'

मिडिल क्लासमें पढ़ते समय मेरे एक मित्र थे जिनका नाम तुलसीदास था। ये ब्राह्मण पुत्र थे। मुझे दो रुपया मासिक वजीफा मिलता था। यह रुपया मैं इन्हींको दे देता था। जब मैं मिडिल पास कर चुका तब मेरे गांवमें पढ़नेके साधन न थे अतः अधिक विद्याभ्याससे मुझे वञ्चित रहना पड़ा। ४ वर्ष मेरे खेल कूदमें गये। पिताजी ने बहुत कुछ कहा—'कुछ धंधा करो', परन्तु मेरेसे कुछ नहीं हुआ।

मेरे दो भाई और थे एक का विवाह हो गया था, दूसरा [illegible]। वे दोनों ही परलोक सिधार गये। मेरा विवाह १८

प्रात: कालतक ही जीवित रहेगा। दुःख इस बात का है कि मेरी अपकीर्ति होगी—'बुड्ढा तो बैठा रहा पर लड़का मर गया।' इतना कह कर वे सो गये। प्रातःकाल मैं दादाको जगाने गया पर कौन जागे ? दादाका स्वर्गवास हो चुका था। उनका दाह कर आये ही थे कि मेरे पिता का भी वियोग हो गया। हम सब रोने लगे, अनेक वेदनाएँ हुईं पर अन्तमें सन्तोष कर बैठ गये।

मेरे पिता ही व्यापार करते थे, मैं तो बुद्धू था ही—कुछ नहीं जानता था। अतः पिताके मरनेके बाद मेरी माँ बहुत व्यथित हुईं। इससे मैंने मदनपुर गाँवमें मास्टरी कर ली। वहाँ चार मास रहकर नार्मल स्कूलमें शिक्षा लेने के अर्थ आगरा चला गया परन्तु वहाँ दो मास ही रह सका। इसके बाद अपने मित्र ठाकुरदासके साथ जयपुरकी तरफ चला गया। एक मास बाद इन्दौर पहुँचा, शिक्षा विभागमें नौकरी कर ली। देहातमें रहना पड़ा। वहाँ भी उपयोग की स्थिरता न हुई अतः फिर देश चला आया।

मार्गदर्शक कड़ोरेलालजी भायजी

दो मासके बाद द्विरागमन हो गया। मेरी स्त्री भी [illegible]-लाके में आ गई और कहने लगी 'तुमने धर्म परिवर्तन कर बड़ी भूल की, अब फिर अपने सनातन धर्ममें आ जाओ और सानन्द जीवन बिताओ।' ये विचार सुनकर मेरा उससे प्रेम हट गया। मुझे आपत्तिसी दीखने लगी, परन्तु उसे छोड़नेमें असमर्थ था। थोड़े दिन बाद मैंने कारीटोरन गाँवकी पाठशालामें अध्यापकी करली और वहीं उसे बुला लिया। दो माह आमोद प्रमोदमें अच्छी तरह निकल गये। इतनेमें मेरे चचेरे भाई लक्ष्मणका विवाह आ गया। उसमें वह गई, मेरी माँ भी गई, और मैं भी गया। वहाँ पंक्तिभोजनमें मुझसे भोजन करनेके लिए आग्रह किया गया। मैंने कार्यकर्तासे कहा कि 'यहाँ तो अशुद्ध भोजन बना है। मैं पंक्तिभोजन में सम्मिलित नहीं हो सकता।' इससे मेरी जातिवाले बहुत क्रोधित हो उठे, नाना अवाच्य शब्दोंसे मैं कोसा गया। उन्होंने कहा—'ऐसा आदमी जाति बहिष्कृत क्यों न किया जाय, जो हमारे साथ भोजन नहीं करता किन्तु जैनियोंके चौकोंमें खा आता है।'

मैंने उन सबसे हाथ जोड़कर कहा कि 'आपकी बात स्वीकार है।' और दो दिन रहकर टीकमगढ़ चला आया। वहाँ आकर मैं श्रीराम मास्टरसे मिला। उन्होंने मुझे जतारा स्कूल का अध्यापक बना दिया। यहाँ आनेसे मेरा पं. मोतीलालजी वर्णी, श्रीमान् बड़े[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] से परिचय हो गया।

इससे मेरी जैनधर्ममें और अधिक श्रद्धा बढ़ने लगी। दिन रात धर्मश्रवणमें समय जाने लगा। संसारकी असारतापर निरन्तर परामर्श होता था। हम लोगोंमें कड़ोरेलालजी भायजी अच्छे तत्त्वज्ञानी थे। उनका कहना था—'किसी कार्यमें शीघ्रता मत करो, पहले तत्त्वज्ञानका सम्पादन करो पश्चात् त्याग धर्म की ओर दृष्टि डालो।'

परन्तु हम और मोतीलाल वर्णी तो रंगरूट थे ही अतः जो मनमें आता सो त्याग कर बैठते। वर्णीजी पूजनके बड़े रसिक थे। वे प्रतिदिन श्री जिनेन्द्रदेव की पूजन करनेमें अपना समय लगाते थे। मैं कुछ कुछ स्वाध्याय करने लगा था और खाने पीने के पदार्थोंके छोड़नेमें ही अपना धर्म समझने लगा था। चित्त तो संसार से भयभीत था ही।

एक दिन हम लोग मरावरापर भ्रमण करने के लिये गये। वहाँ मैंने भाईजी साहबसे कहा 'कुछ ऐसा उपाय बतलाइये जिस कारण संसारबन्धन से मुक्त हो सकूँ।'

उन्होंने कहा - 'उतावला करनेसे संसार बन्धनसे छुटकारा न मिलेगा, [illegible] कुछ कुछ अभ्यास करो [illegible] तत्त्वज्ञान हो [illegible] [illegible] [illegible] करना उचित है।'

मैंने कहा 'आपका कहना ठीक है परन्तु मेरी स्त्री और माँ हैं [illegible] कि वैष्णवधर्मको पालनेवाली हैं। मैंने बहुत कुछ उनसे आग्रह किया कि यदि आप जैनधर्म स्वीकार करें तो मैं आपके साथ सम्बन्ध रहूँगा अन्यथा मेरा आपसे कोई सम्बन्ध नहीं।'

[illegible]— [illegible] 'इतना कठोर वर्ताव करना अच्छा नहीं। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] उनको [illegible]

[illegible]

और झुक गई थी। उस समय विवेक था ही नहीं, अतः म
यहाँ तक कह दिया—'यदि तुम जैनधर्म अंगीकार न करोगी
माँ ! मैं आपके हाथ का भोजन तक न करूँगा।' मेरी माँ स
थी, रह गई और रोने लगी।

उनकी यह धारणा थी कि अभी छोकरा है भले ही इस समय
मुझसे उदास हो जाय कुछ हानि नहीं, परन्तु स्त्रीका मोह न छोड़
सकेगा। उसके मोहवश झक मारकर घर रहेगा। परन्तु मेरे
हृदयमें जैनधर्म की श्रद्धा होनेसे अज्ञानतावश ऐसी धारणा हो
गई थी कि 'जितने जैनी होते हैं वे सब ही उत्तम प्रकृति के मनुष्य
होते हैं। इनके सिवा दूसरोंसे सम्बन्ध रखना अच्छा नहीं।'
अतः मैंने माँ से कह दिया 'अब न तो हम तुम्हारे पुत्र ही हैं और
न तुम हमारी माता हो।' यही बात स्त्रीसे भी कह दी। जब ऐसे
कठोर वचन मेरे मुखसे निकले तब मेरी माता और स्त्री अत्यन्त
दुखी होकर रोने लगी पर मैं निष्ठुर होकर वहाँ चला गया।

यह बात जब भायजी ने सुनी तब उन्होंने बड़ा डांटा और
कहा—'तुम बड़ी गलती पर हो। तुम्हें अपनी माँ और स्त्रीका
सम्पर्क नहीं छोड़ना चाहिये। तुम्हारी उम्र ही कितनी है, अभी
तुम संयम के पात्र नहीं हो, एक पत्र डालकर उन दोनों को बुला
लो। यहाँ आनेसे उनकी प्रवृत्ति जैनधर्ममें हो जावेगी। धर्म क्या
है ? यह अभी तुम नहीं जानते।' धर्म आत्मा की वह परिणति है

३

धर्ममाता श्री चिरोंजाबाईजी

एक दिन श्रीबाबाजी व वर्णीजी ने कहा सिमरामें चिरोंजाबाई बहुत सज्जन और त्यागकी मूर्ति हैं, उनके पास चलो।'

मैंने कहा—'आपकी आज्ञा शिरोधार्य है परन्तु मेरा उनसे परिचय नहीं, उनके पास कैसे चलूँ ?'

तब उन्होंने कहा—वहाँ पर एक क्षुल्लक रहते हैं उनके दर्शन के निमित्त चलो, अनायास बाईजीका भी परिचय हो जायगा।'

मैं उन दोनों महाशयोंके साथ सिमरा गया। यह गाँव जतारा से चार मील पूर्व है। उस समय वहाँ पर २ जिनालय और जैनियों के २० घर थे। वे सब सम्पन्न थे। जिनालयोंके दर्शन कर चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। एक मन्दिर बाईजीके श्वसुरका बनवाया हुआ है। इसमें संगमर्मर की वेदी और चार फुटकी एक सुन्दर मूर्ति है, जिसके दर्शन करनेसे बहुत आनन्द आया। दर्शन करनेके बाद शास्त्र पढ़नेका प्रसङ्ग आया। भायजी ने मुझसे शास्त्र पढ़नेको कहा। मैं डर गया। मैंने कहा—'मुझे तो ऐसा बोध नहीं जो सभा में शास्त्र पढ़ सकूँ।' फिर क्षुल्लक महाराज आदि अच्छे अच्छे विज्ञ पुरुष विराजमान हैं इनके सामने मेरी हिम्मत नहीं होती।' परन्तु भाई साहबके आग्रहसे शास्त्र गद्दी पर बैठ गया। यद्यपि चित्त कम्पित था तो भी साहस कर बाँचने का उद्यम किया। दैवयोगसे शास्त्र पद्मपुराण था। इसलिये विशेष कठिनाई नहीं हुई। दस पत्र बाँच गया। शास्त्र सुनकर जनता प्रसन्न हुई क्षुल्लक महाराज भी प्रसन्न हुए।

बोली—'बेटा ! घर पर चलो' मैं उनके साथ घर चला गया।

घर पहुंचने पर सान्त्वना देते हुए उन्होंने कहा—'बेटा ! चिन्ता मत करो, मैं तुम्हारा पुत्रवत् पालन करूंगी। तुम निःशल्य होकर धर्मसाधन करो और दश लक्षण पर्वमें यहीं आ जाओ; किसीके चक्करमें मत आओ, क्षुल्लक महाराज स्वयं पढ़े नहीं है तुम्हें वे क्या पढ़ावेंगे ? यदि तुम्हें विद्याभ्यास करना ही इष्ट है तो जयपुर चले जाना।'

यह बात आजसे ५० वर्ष पहलेकी है। उस समय इस प्रान्तमें कहीं भी विद्याका प्रचार न था। ऐसा सुननेमें आता था कि जयपुरमें बड़े बड़े विद्वान् हैं। मैं बाईजीकी सम्मतिसे सन्तुष्ट हो मध्याह्नोपरान्त जतारा चला आया।

भाद्रमास था, संयमसे दिन बिताने लगा, पर संयम क्या वस्तु है ? यह नहीं जानता था। संयम समझ कर भाद्रमास भरके लिये छहों रस छोड़ दिये थे। रस छोड़नेका अभ्यास तो था नहीं इससे महान् कष्टका सामना करना पड़ा। अन्नकी खुराक कम हो गई और शरीर शक्तिहीन हो गया।

व्रतोंमें बाईजीके यहाँ आने पर उन्होंने व्रतका पालन सम्यक् प्रकारसे कराया और अन्तमें यह उपदेश दिया—'तुम पहले ज्ञानार्जन करो पश्चात् व्रतोंका पालना, शीघ्रता मत करो, जैनधर्म संसारसे पार करनेकी नौका है, इसे पाकर प्रमादी मत होना, कोई भी काम करो समझके करो। जिस कार्यमें आकुलता हो उसे मत करो।'

मैंने उनकी आज्ञा शिरोधार्य की और भाद्र मासके बीतने पर निवेदन किया कि 'मुझे जयपुर भेज दो।'

बाईजीने कहा—'अभी जल्दी मत करो, भेज देंगे।'

मैंने पुनः कहा—'मैं तो जयपुर जाकर विद्याभ्यास करूँगा।'

बाईजी बोलीं—'अच्छा बेटा, जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो।'

केवल बिस्तर बच गया था। इसके सिवा अंटीमें पांच आना पैसे एक लोटा, छन्ना, डोरी, एक छतरी और एक धोती जो बाहर ले गया था इतना सामान शेष बचा था। चित्त बहुत खिन्न हुआ। 'जयपुर जाकर अध्ययन करूंगा' यह विचार अब वर्षोंके लिये टल गया। शोक-सागरमें डूब गया। किस प्रकार सिमरा जाऊं ? इस चिन्तामें-पड़ गया।

शामको भूखने सताया अतः बाजारसे एक पैसेके चने और एक छदामका नमक लेकर डेरेमें आया और आनन्दसे चने चाबकर सायंकाल जिन भगवान्‌के दर्शन किये तथा अपने भाग्यकी निन्दा करता हुआ कोठेमें सो गया। प्रातःकाल सोनागिरिके लिये प्रस्थान कर दिया। पासमें न तो रोटी बनानेको बर्तन थे और न सामान ही था। एक गांवमें जो ग्वालियरसे १२ मील होगा वहां आकर दो पैसेके चने और थोड़ासा नमक लेकर एक कुएपर आया और उन्हें आनन्दसे चाबकर विश्रामके बाद सायंकालको फिर चल दिया। १२ मील चल कर फिर दो पैसेके चने लेकर बियालू की। फिर पञ्च परमेष्ठीका ध्यान कर सो गया। यहीं विचार आया कि जन्मान्तरमें जो कमाया था उसे भोगनेमें अब आनाकानीसे क्या लाभ ?

इस प्रकार ३ या ४ दिन बाद सोनागिरि आ गया। फिरसे सिद्धक्षेत्रकी वन्दना की। पुजारीके बर्तनोंमें भोजन बनाकर फिर पैदल चल दतिया आया। मार्गमें चने खाकर ही निर्वाह करता था। दतियामें एक पैसा भी पास न रहा, बाजारमें गया, पासमें कुछ न था केवल छतरी थी। दुकानदारसे कहा 'भैया' इस छतरीको ले लो।' उसने कहा 'चोरी की तो नहीं है, मैं चुप रह गया। आंखोंमें अश्रु आ गये परन्तु उसने उन अश्रुओंको देख कर कुछ भी समवेदना प्रकट न की। कहने लगा—'जो छह

४

जयपुरकी असफल यात्रा

जाते समय बाईजीने कहा—'भैया ! तुम सरल हो, मार्गमें सावधानीसे जाना, ऐसा न हो कि सब सामान खोकर फिर वापिस आ जाओ।' मैं श्री बाईजीके चरणोंमें प्रणाम कर सिमरासे श्री सोनागिरिकी यात्राको चल पड़ा। यहांसे १६ मील मऊ रानीपुर है। वहां आया और वहांके जिनालयोंके दर्शन कर आनन्दमें मग्न हो गया। यहांसे रेलगाड़ीमें बैठकर श्रीसोनागिरि पहुंच गया। वहांकी वन्दना व परिक्रमा की। दो दिन वहांपर रहा पश्चात् लश्कर-ग्वालियरके लिये स्टेशनपर गया। टिकिट लेकर ग्वालियर पहुंचा। चम्पाबागकी धर्मशालामें ठहर गया। वहांके मन्दिरोंकी रचना देखकर आश्चर्यमें डूब गया। चूंकि ग्रामीण मनुष्योंको बड़े बड़े शहरोंके देखनेका अवसर नहीं आता, अतः उन्हें इन रचनाओंको देख महान् आश्चर्य होना स्वाभाविक ही है। श्रीजिनालय और जिन बिम्बोंके दर्शन कर मुझे जो आनन्द हुआ वह वर्णनातीत है। दो दिन इसी तरह निकल गये। तीसरे दिन दो बजे दिनके शौचकी बाधा होनेपर आदतके अनुसार गांवके बाहर दो मील तक चला गया। लौटकर शहरके बाहर कुआपर हाथ पांव धोए, स्नान किया और बड़ी प्रसन्नतासे धर्मशालामें लौट आया। आकर देखता हूं कि जिस कोठरीमें ठहरा था उसका ताला टूटा पड़ा है और पासमें जो कुछ सामान था वह सब नदारद है।

पर पलाशके पत्ते लपेट कर जमीन खोद कर एक खड्डेमें उसे रख दिया। ऊपर अण्डे कण्डा रख दिए। उनकी आग तयार होने पर शेष आटेकी ४ बाटिया बनाई और उन्हें सेंक कर घीसे चुपड़ दिया। उन दिनों दो पैसेमें एक छटाक घी मिलता था। इसलिये बाटियां अच्छी तरह चुपड़ी गईं। पश्चात् आगको हटाकर नीचेका गोला निकाल लिया। धीरे धीरे उसके ठण्डा होने पर इसके ऊपरसे अधजले पत्तोंको दूर कर दिया। फिर गोलेको फोड़कर छेवलेके पत्तेमें दालको निकाल लिया। दाल पक गई थी। उसको खाया। मैंने आजतक बहुत जगह भोजन किया है परन्तु उस दालका जो स्वाद था वैसी दाल आजतक भोजनमें नहीं आई। इस प्रकार चार दिनके बाद भोजन कर जो तृप्ति हुई उसे मैं ही जानता हूं। अब पासमें एक आना रह गया। यहांसे चलकर फिर वहां चाल अर्थात् दो पैसेके चने लेकर चाबे और वहांसे चलकर पारके गांव पहुंच गया।

यहांसे सिमरा नौ मील दूर था परन्तु लज्जावश वहां न जाकर यहीं पर रहने लगा। और यहीं एक जैनी भाईके घर आनन्दसे भोजन करता था और गांवके जैन बालकोंको प्राथमिक शिक्षा देने लगा।

दैव का प्रबल प्रकोप तो था ही—मुझे मलेरिया आने लगा। ऐसे वेगसे मलेरिया आया कि शरीर पीला पड़ गया। औषधि रोग को दूर न कर सकी। एक वैद्य ने कहा—'प्रातः काल वायु सेवन करो और आसमें आध घंटा टहलो।'

मैंने यही किया। पन्द्रह दिनमें ज्वर चला गया। फिर वहां से आठ मील चल कर जतारा आगया। यहां पर भाईजी साहब और वर्णीजीसे भेट हो गई और उनके सहवासमें पूर्ववत् धर्म साधन करने लगा।

५

श्री स्वरूपचन्द्र जी बनपुरया और खुरई यात्रा

बाईजीने बहुत बुलाया परन्तु मैं लज्जाके कारण नहीं गया। उस समय वहां पर स्वरूपचन्द्र बनपुरया रहते थे। उनके साथ उनके गांव भाची चला गया जो जतारासे तीन मील दूर है। वह बहुत ही सज्जन व्यक्ति थे। इनकी धर्मपत्नी इनके अनुकूल तो थी ही साथ ही अतिथि सत्कारमें भी अत्यन्त पटु थी। इनके चौकेमें प्रायः प्रतिदिन तीन या चार अतिथि (श्रावक) भोजन करते थे। ये बड़े उत्साहसे मेरा अतिथि सत्कार करने लगे। इनके समागमसे स्वाध्यायमें मेरा विशेष काल जाने लगा। श्री मोनोटालजी वर्णी भी यहीं आगये। उनके आदेशानुसार मैंने बुधजन छहढाला कण्ठस्थ कर लिया। अन्तरङ्गसे जैनधर्मका मर्म कुछ नहीं समझता था। इसका मूल कारण यह था कि इस प्रान्तमें पद्धतिसे धर्मकी शिक्षा देनेवाला कोई गुरु न था। यों मन्दकषायी जीव बहुत थे, व्रत उपवास करनेमें श्रद्धा थी, घर घर शुद्ध भोजन की पद्धति चालू थी, श्री जीके विमान निकालनेका पुष्कल प्रचार था, विमानोत्सवके समय चारसौ पांचसौ साधर्मियों को भोजन कराया जाता था, जिसमें श्री जिनेन्द्रदेव का अभिषेक पूजन समारोहके साथ होता था, गान तान विशेष आनन्द [illegible] थे। [illegible] नगाड़ा ढोल आदि बाजोंके साथ था। जिनेन्द्रदेव

लुरईमें तीन दिन

तीन या चार दिनमें मैं लुरई पहुंच गया। वे सब श्रीमन्तके यहां ठहर गये। उनके साथ मैं भी वहीं ठहर गया। यहां श्रीमन्तसे तात्पर्य श्रीमान् श्रीमन्त सेठ मोहनलालजीसे है। आप करोड़पति थे। करोड़पति तो बहुत होते हैं परन्तु आपकी प्रतिभा बृहस्पतिके सदृश थी। आप जैन शास्त्रके मर्मज्ञ विद्वान् थे। आप प्रतिदिन पूजा करते थे। आप जैन शास्त्रके ही मर्मज्ञ विद्वान् न थे किन्तु राजकीय कानूनके भी प्रखर पण्डित थे। सरकारमें आपकी प्रतिष्ठा अच्छे रईसोंके समान होती थी। लुरईके तो आप राजा कहलाते थे। आपके सब ठाट राजाओंके समान थे। जैन जातिके आप भूषण थे। आपके यहां तीन माह बाद एक कमेटी होती थी जिसमें लुरई-सागर प्रान्तकी जैन जनता सम्मिलित होती थी। उसका कुल व्यय आप ही करते थे। आपके यहां पण्डित पन्नालालजी न्यायदिवाकर व श्रीमान् शान्तिलालजी साहब आगरावाले आते रहते थे। उनके आप अत्यन्त भक्त थे। उस समय आप दिगम्बर जैन महासभाके मन्त्री भी थे।

सायंकालको सब लोग श्री जिनालय गये। श्रीजिनालयकी रचना देखकर चित्त प्रसन्न हुआ किन्तु सबसे अधिक प्रसन्नता श्री १००८ देवाधिदेव पार्श्वनाथके प्रतिबिम्बको देखकर हुई। वह सातिशय प्रतिमा है। देखकर हृदयमें जो प्रमोद हुआ वह अवर्णनीय है। नासाग्रदृष्टि देखकर यही प्रतीत होता था कि [illegible]

७

सेठ लक्ष्मीचन्द्र जी

मुझे आया हुआ देख माँ बड़ी प्रसन्न हुई। बोलीं 'बेटा! आ गये ?'

मैंने कहा—'हाँ माँ! आ गया।'

माँ ने उपदेश दिया—'बेटा! आनन्द से रहो, क्यों इधर उधर भटकते हो? अपना कौलिक धर्म पालन करो, और कुछ व्यापार करो, तुम्हारे काका समर्थ हैं। वे तुम्हें व्यापारकी पद्धति सिखा देंगे।'

मैं माँ की शिक्षा सुनता रहा परन्तु जैसे चिकने घड़े मे पानी का प्रवेश नहीं होता वैसे ही मेरे ऊपर उस शिक्षाका कोई भी असर नहीं हुआ। मैं तीन दिन वहाँ रहा पश्चात् माँ की आज्ञा से बमराना चला गया।

यहाँ श्री सेठ ब्रजलाल, चन्द्रभान व श्री लक्ष्मीचन्द्रजी साहब रहते थे। तीनों भाई धर्मात्मा थे। निरन्तर पूजा करना, स्वाध्याय करना व आये हुए जैनी को सद्भोजन कराना आपका प्रति दिनका काम था। तब आपके चौका में प्रति दिन ५० से कम जैनी भोजन नहीं करते थे। कोई विद्वान् व त्यागी आपके यहाँ सदा रहता ही था। मन्दिर इतना सुन्दर था मानों स्वर्ग का चैत्यालय ही हो। जिस समय तीनों भाई पूजा के लिये खड़े होते थे उस समय ऐसा मालूम होता था मानो इन्द्र ही स्वर्गसे

आये हों। तीनों भाईयों में परस्पर राम लक्ष्मणकी तरह प्रेम था। मन्दिर में पूजा आदि महोत्सव होते समय चतुर्थ कालका स्मरण हो आता था। स्वाध्याय में तीनों भाई बराबर तत्व चर्चा कर एक घण्टा समय लगाते थे। साथ ही अन्य श्रोता गण भी उपस्थित रहते थे। इन तीनों में लक्ष्मीचन्द्रजी सेठ प्रखरबुद्धि थे। आपको शास्त्र प्रवचनका एक प्रकार से व्यसन ही था। आपकी चित्तवृत्ति भी निरन्तर परोपकार में रत रहती थी।

उन्होंने मुझसे कहा 'आपका शुभागमन कैसा हुआ?'

मैंने कहा—'क्या कहूं? मेरी दशा अत्यन्त करुणामयी है उसका दिग्दर्शन कराने से आपके चित्त में खिन्नता ही बढ़ेगी। प्राणियों ने जो अर्जन किया है उसका फल कौन भोगे? मेरी कथा सुननेकी इच्छा छोड़ दीजिये। कुछ जैन धर्मका वर्णन कीजिये जिससे शान्तिका लाभ हो।'

आपने एक घण्टा आत्मधर्मका समीचीन रीतिसे विवेचन कर मेरे खिन्न चित्तको सन्तोष लाभ कराया। अनन्तर पूछा—अब तो अपनी आत्म कहानी सुना दो। मैं किंकर्तव्यविमूढ़ था अतः सारी बातें तो न बता सका। केवल जानेकी इच्छा जाहिर की। यह सुन श्री सेठ लक्ष्मीचन्द्रजीने बिना मांगे ही दस रुपया मुझे दिये और कहा आनन्दसे जाइये। साथ ही यह आश्वासन भी दिया कि यदि कुछ व्यापार करने की इच्छा हो तो सौ या दो सौ की पूंजी लगा देंगे।

पाठकगण, इतनी छोटी सी रकमसे क्या व्यापार होगा ऐसी आशंका न करें क्योंकि उन दिनों दो सौ में बारह मन घी और पांच मन कपड़ा आता था। तथा एक रुपये [illegible] मन [illegible] मन चना, डेढ़ मन जुवारी और दो म[illegible] उस समय अन्नादि की न्यूनता किसी के [illegible] और घी का भरपूर संग्रह रहता था।

८

रेशन्दीगिरि और कुण्डलपुर

मैं दस रुपया लेकर बमराना से मड़ावरा आ गया। पाँच दिन रहकर माँ तथा स्त्री की अनुमति के बिना ही कुण्डलपुरकी यात्राके लिये प्रस्थान कर दिया। मेरी यात्रा निरुद्देश्य थी। क्या करना कुछ भी नहीं समझता था! 'हे प्रभो! आप ही संरक्षक हैं' ऐसा विचारता हुआ मड़ावरासे चलकर चौदह मील बरायठा नगरमें आया।

यहाँ जैनियों के साठ घर हैं। सुन्दर उच्च स्थान पर जिनेन्द्र-देवका मन्दिर है। मन्दिरके चारों तरफ कोट है। कोटके बीचमें ही छोटीसी धर्मशाला है। उसी में रात्रिको ठहर गया। यहाँ सेठ कमलापति जी बहुत ही प्रखरबुद्धिके मनुष्य हैं। आपका

[illegible]

को बुला लो। साथ ही यह भी कहा कि मेरे सहवाससे आपको शीघ्र ही जैनधर्मका बोध हो जायगा।

मैंने कहा — अभी श्री कुण्डलपुरकी यात्राको जा रहा हूँ। यात्रा करके आ जाऊंगा।'

[illegible] — [illegible] परन्तु — निरुद्देश्य

मैं उनको धन्यवाद देता हुआ श्री सिद्धक्षेत्र नैनागिरि के लिये चल पड़ा। मार्गमें महती अटवी थी, जहां पर वनके हिंसक पशुओं का संचार था। मैं एकाकी चला जाता था। कोई सहायी न था। केवल आयु कर्म सहायी था।

चलकर हरावन पहुंचा। यहां भी एक जैन मन्दिर है। दस घर जैनियोंके हैं। रात्रि भर यहीं रहा। प्रातःकाल श्री नैनागिरि के लिये प्रस्थान कर दिया और दिनके दस बजे पहुंच गया। स्नानादिसे निवृत्त हो श्री जिन मन्दिरोंके दर्शनके लिये उद्यमी हुआ। प्रथम तो सरोवर के दर्शन हुए जो अत्यन्त रम्य था। चारों ओर सारस आदि पक्षीगण शब्द कर रहे थे। चकवा आदि अनेक प्रकारके पक्षीगणोंके कलरव हो रहे थे। कमलोंके फूलोंसे वह ऐसा सुशोभित था मानों गुलाबका बाग ही हो। सरोवरका बँधान चंदेल राजाका बंधाया हुआ है। इसी पर से पर्वत पर जानेका मार्ग था। पर्वत बहुत उन्नत न था। दस मिनट में ही मुख्य द्वार पर पहुंच गया।

यहां पर एक अत्यन्त मनोहर देवीका प्रतिबिम्ब देखा जिसे देखकर प्राचीन सिलावटोंकी कर कुशलताका अनुमान सहजमें हो जाता था। ऐसी अनुपम मूर्ति इस समयके शिल्पकार निर्माण करनेमें समर्थ नहीं। पश्चात् मन्दिरोंके बिम्बोंकी भक्ति पूर्वक पूजा की।

यह वही पर्वतराज है जहां श्री १००८ देवाधिदेव पार्श्वनाथ प्रभुका समवसरण आया था और वरदत्तादि पांच ऋषि राजोंने निर्वाण प्राप्त किया था। नैनागिरि इसीका नाम है। यहां पर चार या पांच मन्दिरोंको छोड़ शेष सब मन्दिर छोटे हैं। जिन्होंने निर्माण कराये वे अत्यन्त धनवान् थे, जो मन्दिर नये न नूतन बनवाये पर प्रतिष्ठा करानेके पचासों हजार रुपये खर्च के

दिये। यहां अगहन सुदी ग्यारससे पूर्णिमा तक मेला भरता है। जिसमें प्रान्त भरके जैनियोंका समारोह होता है। दस हजार तक जैनसमुदाय हो जाता है। यह साधारण मेलाकी बात है। रथके समय तो पचास हजार तककी सङ्ख्या एकत्रित हो जाती है। एक नाला भी है जिसमें सदा स्वच्छ जल बहता रहता है। चारों तरफ सघन वन है। एक धर्मशाला है जिसमें पांच सौ आदमी ठहर सकते हैं। यह प्रान्त धर्मशाला बनानेमें द्रव्य नहीं लगाता। प्रतिष्ठामें लाखों रुपये व्यय हो जाते हैं। जो कराता है उसके पचीस हजारसे कम खर्च नहीं होते। आगन्तुक महाशयोंके आठ रुपया प्रति आदमीके हिसाबसे चार लाख रुपये हो जाते हैं। परन्तु इन लोगोंकी दृष्टि धर्मशालाके निर्माण करानेकी ओर नहीं जाती। मेला या प्रतिष्ठाके समय यात्री अपने अपने घरसे डेरा या भुग्गी आदि लाते हैं और उन्हींमें निवास कर पुण्यका सञ्चय करते हैं। यहां पर अगहन मासमें इतनी सरदी पड़ती है कि पानी जम जाता है। प्रातःकाल कँपकँपी लगने लगती है। ये सब कष्ट सहकर भी हजारों नर नारी धर्म साधन करनेमें कायरता नहीं करते। ऐसा निर्मल स्थान भाग्य भाग्यसे ही मिलता है।

यहां मैं तीन दिन रहा। चित्त जानेको नहीं चाहता था। चित्तमें यही आता था कि 'सर्व विकल्पोंको त्यागो और धर्म साधन करो। परन्तु साधनोंके अभावमें दरिद्रोंके मनोरथोंके समान कुछ न कर सका।' चार दिनके बाद श्री अतिशय क्षेत्र-कुण्डलपुरके लिये प्रस्थान किया। प्रस्थानके समय आंखोंमें अश्रुधारा आगई। चलनेमें गतिका वेग न था, पीछे पीछे देखता जाता था और आगे आगे चला जाता था। बलात्कार जाना ही पड़ा। सायंकाल होते होते एक गांवमें पहुंच गया। थकावटके कारण एक अहीरके

घरमें ठहर गया। उसने रात्रिको आग जलाई और कहा 'भोजन बना लो। मेरे यहां भूखे पड़े रहना अच्छा नहीं। आप तो भूखे रहो और हम लोग भोजन कर लें यह अच्छा नहीं लगता।'

मैंने कहा—'भैया! मैं रात्रिको भोजन नहीं करता।'

उसने कहा—'अच्छा भैंसका दूध ही पी लो जिससे मुझे तसल्ली हो जाय।'

मैंने कहा—'मैं पानीके सिवा और कुछ नहीं लेता।'

वह बहुत दुखी हुआ। उसकी स्त्रीने तो यहां तक कहा—'भला, जिसके दरवाजे पर मेहमान भूखा पड़े उसको कहां तक संतोष होगा।' मैंने कहा—'मां जी! लाचार हूँ।' तब उस गृहिणीने कहा—'प्रातःकाल भोजन करके जाना अन्यथा आप दूसरे स्थान पर जाकर सोवें।' मैंने कहा—'अब आपका सुन्दर घर पाकर कहां जाऊं? प्रातःकाल होनेपर आपकी आज्ञाका पालन होगा।

किसी प्रकार उन्हें संतोष कराके सोगया। बाहर दहलानमें सोता था अतः प्रातः काल मालिकके बिना पूछे ही ५ बजे चल दिया और १० मील चलकर एक ग्राममें ठहर गया। वहीं पर श्री जिनालयके दर्शन कर पश्चात् भोजन किया और सायंकाल फिर १० मील चलकर एक ग्राममें रात्रिको सो गया पश्चात् प्रातःकाल वहाँसे चल दिया। इसीप्रकार मार्गको तय करता हुआ ३ दिन बाद कुण्डलपुर पहुंच गया।

अवर्णनीय क्षेत्र है। यहाँ पर कई सरोवर तथा आमके बगीचे हैं। एक सरोवर अत्यन्त सुन्दर है। उसके तटपर अनेक जैन मन्दिर गगनचुम्बी शिखरोंसे सुशोभित तथा चारों तरफ आमके वृक्षोंसे वेष्टित भव्य पुरुषोंके मनको विशुद्ध परिणामोंके

कारण बन रहे हैं। उनके दर्शन कर चित्त अत्यन्त प्रसन्न हुआ। प्रतिमाओंके दर्शन करनेसे जो आनन्द होता है उसे प्रायः सब ही आस्तिक जनलोग जानते हैं और नित्य प्रति उसका अनुभव भी करते हैं। अनन्तर पर्वतके ऊपर श्री महावीर स्वामीके पद्मासन प्रतिबिम्बको देखकर तो साक्षात् श्री वीरदर्शनका ही आनन्द आगया। ऐसी सुभग पद्मासन प्रतिमा मैंने तो आज तक नहीं देखी। ३ दिन इस क्षेत्र पर रहा और तीनों ही दिन श्री वीर प्रभुके दर्शन किये। मैंने वीर प्रभुसे जो प्रार्थना की थी उसे आज के शब्दोंमें निम्न प्रकार व्यक्त कर सकते हैं—

'हे प्रभो! यद्यपि आप वीतराग सर्वज्ञ हैं, सब जानते हैं, परन्तु वीतराग होनेसे चाहे आपका भक्त हो चाहे भक्त न हो उस पर आपको न राग होता है और न द्वेष। जो जीव आपके गुणोंमें अनुरागी हैं उनके स्वयमेव शुभ परिणामोंका संचार हो जाता है और वे परिणाम ही पुण्य बन्धमें कारण हो जाते हैं।' तदुक्तम्—

> 'इति स्तुतिं देव! विधाय दैन्याद्
> वरं न याचे त्वमुपेक्षकोऽसि।
> छायातरुं संश्रयतः स्वतः स्यात्
> कश्छायया याचितयात्मलाभः॥'

यह श्लोक धनञ्जय सेठने श्री आदिनाथ प्रभुके स्तवनके अन्तमें कहा है। इस प्रकार आपका स्तवन कर हे देव! मैं दीनतासे कुछ वर की याचना नहीं करता क्योंकि आप उपेक्षक हैं। 'रागद्वेषयोरप्रणिधानमुपेक्षा' यह उपेक्षा जिसके हो उसको उपेक्षक कहते हैं। श्री भगवान उपेक्षक हैं क्योंकि उनके राग द्वेष नहीं हैं। जब यह बात है तब विचारो जिनके राग द्वेष नहीं

उनको अपने भक्त में भलाई करने की बुद्धि ही नहीं हो सकती। वह देवेंगे ही क्या ? फिर यह प्रश्न हो सकता है कि उनकी भक्ति करनेसे क्या लाभ ? उसका उत्तर यह है कि जो मनुष्य छाया वृक्ष के नीचे बैठ गया उसको इसकी आवश्यकता नहीं कि वृक्षसे याचना करे—हमें छाया दीजिये। वह तो स्वयं ही वृक्षके नीचे बैठनेसे छाया का लाभ ले रहा है। एवं जो रुचि पूर्वक श्री अरिहन्त देवके गुणों का स्मरण करता है उसके मन्द कषाय होनेसे स्वयं शुभोपयोग होता है और उसके प्रभावसे स्वयं शान्ति का लाभ होने लगता है। ऐसा निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध बन रहा है। परन्तु व्यवहार ऐसा होता है जो वृक्षकी छाया। वास्तवमें छाया तो वृक्ष की नहीं, सूर्यकी किरणों का वृक्षके द्वारा रोध होनेसे वृक्षतलमें स्वयमेव छाया हो जाती है। एवं श्री भगवान्‌के गुणों का रुचि पूर्वक स्मरण करनेसे स्वयमेव जीवोंके शुभ परिणामों की उत्पत्ति होती है फिर भी व्यवहारमें ऐसा कथन होता है कि भगवान्‌ने शुभ परिणाम कर दिये। भगवान् को पतितपावन कहते हैं अर्थात् जो पापियों का उद्धार करें उनका नाम पतितपावन है....यह कथन भी निमित्त कारण की अपेक्षा है। निमित्त कारणोंमें भी उदासीन निमित्त है प्रेरक नहीं, जैसे मछली गमन करे तो जल सहकारी कारण हो जाता है। एवं जो जीव पतित है वह यदि शुभ परिणाम करे तो भगवान् निमित्त हैं। यदि वह शुभ परिणाम न करे तो निमित्त नहीं। वस्तु की मर्यादा यही है परन्तु उपचारसे कथन शैली नाना प्रकार की है 'यथा कुलदीपकोऽयं बालक। माणवकः सिंहः।' विशेष कहां तक लिखें ? आत्मा की अचिन्त्य शक्ति है वह मोह कर्मके [illegible] विकास को प्राप्त नहीं होता [illegible] कर्मके उदयमें यह जीव नाना प्रकार की कल्पना [illegible] पर्यायके [illegible] वर्तमान पर्याय का अंश [illegible]

त्वरके अपगमकी भावनासे श्री अरिहन्तादि देवकी भक्ति करता है। श्री अरिहन्तके गुणोंमें अनुराग होना यही तो भक्ति है। अरिहन्तके गुण हैं—वीतरागता, सर्वज्ञता तथा मोक्ष मार्गका नेतापना। इनमें अनुराग होनेसे कौन सा विषय पुष्ट हुआ? यदि इन गुणोंमें प्रेम हुआ तो इन्हीं की प्राप्ति के अर्थ तो प्रयास है। सम्यग्दर्शन होने के बाद चारित्र मोहका चाहे तीव्र उदय हो चाहे मन्द उदय हो, उसको जो प्रवृत्ति होती है उसमें कर्तृत्व बुद्धि नहीं रहती। अतएव श्री दौलतरामजी ने एक भजन में लिखा है कि—

'जे भव हेतु अबुधि के ते तव करत बन्ध की छुटाछुटी'

अभिप्राय के बिना जो क्रिया होती है वह बन्धकी जनक नहीं। यदि अभिप्रायके अभाव में भी क्रिया बन्ध जनक होने लगे तब यथाख्यात चारित्र होकर भी अबन्ध नहीं हो सकता अतः यह सिद्ध हुआ कि कषायके सद्भाव में ही क्रिया बन्धका उत्पादक है। इसलिये प्रथम तो हमें अनात्मीय पदार्थों में जो आत्मीयता का अभिप्राय है और जिसके सद्भावमें हमारा ज्ञान तथा चारित्र मिथ्या हो रहा है उसे दूर करने का प्रयास करना चाहिये। उस विपरीत अभिप्रायके अभाव में आत्मा की जो अवस्था होती है वह रोग जानेके बाद रोगी के जो हल्कापन आता है तत्सदृश हो जाती है। अथवा भारावगम के बाद जो दशा भारवाही की होती है वही [illegible] अभिप्राय के जानेके बाद [illegible] है और उस समय उसके अनुभवका प्रमाण [illegible]

[illegible]

६

रामटेक

श्री कुण्डलपुरसे यात्रा करनेके पश्चात् श्री रामटेकके वास्ते प्रयाण किया। हिंडोरिया आया। यहां तालाब पर प्राचीन काल का एक जिनविम्ब है। यहां पर कोई जैनी नहीं। यहांसे चलकर दमोह आया, यहाँ पर २०० घर जैनियोंके बडे बड़े धनाढ्य हैं। मन्दिरोंकी रचना अति सुदृढ और सुन्दर है। मूर्ति समुदाय पुष्कल है। अनेक मन्दिर हैं। मेरा किसीसे परिचय न था और न करनेका प्रयास ही किया क्योंकि जैनधर्मका कुछ विशेष ज्ञान न था और न त्यागी ही था जो किसीसे कुछ कहता अतः दो दिन यहाँ निवास कर जबलपुरकी सड़क द्वारा जबलपुरको प्रयाण कर दिया।

मार्गमें अनेक जैन मन्दिरोंके दर्शन किये चार दिनमें जबलपुर पहुंच गया। यहांके जैन मन्दिरोंकी अवर्णनीय शोभा देखकर जो प्रमोद हुआ उसे कहनेमें असमर्थ हूं। यहांसे रामटेकके लिये चल दिया। ६ दिनमें सिवनी पहुंचा। यहां भी मन्दिरोंके दर्शन किये। दर्शन करनेसे मार्गका श्रम एकदम चला गया। २ दिन बाद श्री रामटेकके लिये चल दिया। कई दिवसोंके बाद रामटेक क्षेत्रपर पहुंच गया।

यहांके मन्दिरोंकी शोभा अवर्णनीय है। यहां पर श्री शान्तिनाथ स्वामीके दर्शन कर बहुत आनन्द हुआ। यह स्थान अति रमणीय है ग्रामसे २।३ फर्लांग होगा निर्जन स्थान है यहांसे

चारों तरफ बस्ती नहीं। २ मील पर १ पर्वत है जहां श्री रामचन्द्र जी महाराजका मन्दिर है। वहां पर मैं नहीं गया। जैन मन्दिरोंके पास ही जो धर्मशाला थी उसमें निवास कर लिया। क्षेत्रपर पुजारी, माली, जमादार मुनीम आदि कर्मचारी थे। मन्दिरोंकी स्वच्छता पर कर्मचारी गणोंका पूर्ण ध्यान था। ये सब साधन यहां पर अच्छे हैं—कोष भी क्षेत्रका अच्छा है, धर्मशाला आदि का प्रबन्ध उत्तम है परन्तु जिससे यात्रियोंको आत्मलाभ हो उसका साधन कुछ नहीं, उस समय मेरे मनमें जो आया उसे कुछ विस्तारके साथ आज इस प्रकार कह सकते हैं—

ऐसे क्षेत्रोंपर तो आवश्यकता एक विद्वान्की थी जो प्रतिदिन शास्त्र प्रवचन करता और लोगोंको मौलिक जैन सिद्धान्तका अवबोध कराता जो। जनता यहां पर निवास करती है उसे यह बोध हो जाता कि जैनधर्म इसे कहते हैं। हमलोग मेलेके अवसर पर हजारों रुपये व्यय कर देते हैं परन्तु लोगोंको यह पता नहीं चलता कि मेला करनेका उद्देश्य क्या है? समयकी बलवत्ता है जो हमलोग बाह्य कार्योंमें द्रव्यका व्ययकर ही अपनेको कृतार्थ मान लेते हैं। मन्दिरके चांदीके किवाड़ोंकी जोड़ी, चांदीकी चौकी, चांदीका रथ, सुवर्णके चमर, चांदीकी पालकी, आदि बनवाने में ही व्यय करना पुण्य समझते हैं। जब इन चांदीके सामानको अन्य लोग देखते हैं तब यही अनुमान करते हैं कि जैनीलोग बड़े धनाढ्य हैं किन्तु यह नहीं समझते कि जिस धर्मका यह पालन करनेवाले हैं उस धर्मका मर्म क्या है? यदि उसको यह लोग समझ जावे तो अनायास ही जैनधर्मसे प्रेम करने लगें। श्री अमृतचन्द्र सूरि ने तो प्रभावनाका यह लक्षण लिखा है कि—

[illegible]

[illegible]

चारों तरफ बस्ती नहीं। २ मील पर १ पर्वत है जहाँ श्री रामचन्द्र जी महाराजका मन्दिर है। वहां पर मैं नहीं गया। जैन मन्दिरोंके पास ही जो धर्मशाला थी उसमें निवास कर लिया। क्षेत्रपर पुजारी, माली, जमादार मुनीम आदि कर्मचारी थे। मन्दिरोंकी स्वच्छता पर कर्मचारी गणोंका पूर्ण ध्यान था। ये सब साधन वहां पर अच्छे हैं—और भी क्षेत्रका अच्छा है, धर्मशाला आदि का प्रबन्ध उत्तम है परन्तु जिससे यात्रियोंको आत्मलाभ हो उसका साधन कुछ नहीं, उस समय मेरे मनमें जो आया उसे कुछ विस्तारके साथ आज इस प्रकार कह सकते हैं—

ऐसे क्षेत्रोंपर तो आवश्यकता एक विद्वानकी थी जो प्रतिदिन शास्त्र प्रवचन करता और लोगोंको मौलिक जैन सिद्धान्तका अव-बोध कराता जो। जनता वहां पर निवास करती है उसे यह बोध हो जाता कि जैनधर्म इसे कहते हैं। हमलोग मेलेके अवसर पर हजारों रुपये व्यय कर देते हैं परन्तु लोगोंको यह पता नहीं चलता कि मेला करनेका उद्देश्य क्या है? सबकी धारणा है जो हमलोग पांच चार दिन द्रव्यका व्ययकर ही अपनेको कृतार्थ मान लेते हैं। मन्दिरके चांदीके किवाड़ोंकी जोड़ी, चांदीकी चौकी, चांदीका रथ, सुवर्णके चमर, चांदीकी पालकी, आदि बनवाने में ही व्यय करना पुण्य समझते हैं। जब इन चांदीके सामानको अन्य लोग देखते हैं तब यही अनुमान करते हैं कि जैनीलोग बड़े धनाढ्य हैं परन्तु यह नहीं समझते कि जिस धर्मका यह पालन करते हैं [illegible]

[illegible]

थे। अत्यन्त उदार थे। हजारों रुपये मासिक अर्जन करते थे। कृपणता का तो उनके पास अंश ही नहीं था। अस्तु, यहांसे श्री सिद्ध क्षेत्र मुक्तागिरिके लिये उत्सुकता पूर्वक चल पड़ा।

बीचमें एलचपुर मिला। यहां जिन मन्दिरोंके दर्शन कर दूसरे दिन मुक्तागिरि पहुंच गया। क्षेत्रकी शोभा अवर्णनीय है। सर्वतः वनोंसे वेष्टित पर्वत है। पर्वतके ऊपर अनेक जिनालय हैं। नीचे भी कई मन्दिर और धर्मशालाएं हैं। तपोभूमि है। परन्तु अब तो न यहां कोई त्यागी है और न साधु। जो अन्य क्षेत्रों की व्यवस्था है वही व्यवस्था यहां की है। सानन्द वन्दना की।

११
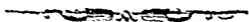
कर्म-चक्र

पास में पांच रुपये मात्र रह गये। कपड़े विवर्ण हो गये। शरीरमें खाज हो गई। एक दिन बाद ज्वर आने लगा। सहायी कोई नहीं। केवल दैव ही सहायी था। क्या करूं ? कुछ समझ में नहीं आता था – कर्तव्यविमूढ़ हो गया। कहां जाऊं ? यह भी निश्चय नहीं कर सका। किससे अपनी व्यथा कहूं ? यह भी समझमें नहीं आया। कहता भी तो सुननेवाला कौन था ? खिन्न होकर पड़ गया। रात्रिको स्वप्न आया—'दुःख करनेसे क्या लाभ ?' कोई कहता है—'श्री गिरिनारको चले जाओ।' 'कैसे जावें ? साधन तो कुछ हैं नहीं.' मैंने कहा। वही उत्तर मिला—'नारकी जीवोंकी अपेक्षा तो अच्छे हो।'

प्रातःकाल हुआ। श्री सिद्धक्षेत्रकी वन्दना कर बैतूल नगरके लिये चल दिया। तीन कोश चलकर एक हाट मिली। वहां एक स्थानपर पत्तेका जुआ हो रहा था। १) के ५) मिलते थे। हमने विचार किया—'चलो ५) लगा दो २५) मिल जावेंगे, फिर आनन्दसे रेलमें बैठकर श्री गिरिनारकी यात्रा सहजमें हो जावेगी। इत्यादि।' १) के ५) मिलेंगे इस लोभसे ३) लगा दिये। पत्ता हमारा नहीं आया। ३) चले गये। अब बचे दो रुपया सो विचार किया कि अब गलती न करो अन्यथा आपत्ति में फँस जाओगे। मनको सन्तोष कर वहांसे चल दिया। किसी तरह कष्टोंको सहते हुए बैतूल पहुंचे।

ककरी शाक थी। घी क्या कहलाता है? कौन जाने उसके दो माससे दर्शन भी न हुए थे। दो माससे दालका भी दर्शन न था। किसी दिन रूखी रोटी बनाकर रक्खी और खानेकी चेष्टा की कि तिजारी महाराणीने दर्शन देकर कहा—'सो जाओ, अनधिकार चेष्टा न करो, अभी तुम्हारे पाप कर्मका उदय है, समतासे सहन करो।'

पापके उदयकी पराकाष्ठाका उदय यदि देखा तो मैंने देखा। एक दिनकी बात है—सघन जगलमें जहाँ पर मनुष्योंका सचार न था, एक छायादार वृक्ष के नीचे बैठ गया। वहीं बाजरे के चूनकी लिट्टी लगाई, खाकर सो गया। निद्रा भग हुई, चलनेको उद्यमी हुआ इतने मे भयकर ज्वर आ गया। वे होश पड़ गया। रात्रिके नौ बजे होश आया। भयानक वनमें था। सुध बुध भूल गया। रात्रि भर भयभीत अवस्थामें रहा। किसी तरह प्रातःकाल हुआ। श्री भगवान् का स्मरण कर मार्गमें अनेक कष्टोंकी अनुभूति करता हुआ श्री गजपन्था जी में पहुच गया और आनन्दसे धर्मशालामें ठहर गया।

गजपन्थासे बम्बई

वहीं पर एक आरवी के सेठ ठहरे थे। प्रातःकाल उनके [illegible]
पर्वतको वन्दनाको चला। आनन्दसे यात्रा समाप्त हुई। धर्म-
चर्चा भी अच्छी तरह से हुई। आपने कहा—'कहाँ जाओगे?'
मैंने कहा—'श्री गिरिनारजी की यात्राको जाऊंगा।' 'कै[illegible]
जाओगे?' 'पैदल जाऊंगा।' उन्होंने मेरे शरीरकी अवस्था देख-
कर बहुत ही दयाभावसे कहा—'तुम्हारा शरीर इस योग्य नहीं।'
मैंने कहा—'शरीर तो नश्वर है एक दिन जावेगा ही, कुछ
धर्मका कार्य इससे लिया जावे।'

वह हँस पड़े और बोले 'अभी बालक हो' 'शरीरमाद्यं खलु
धर्मसाधनम्' शरीर धर्म साधनका आद्य कारण है, अतः इसको
धर्म साधनके लिये सुरक्षित रखना चाहिये।'

मैंने कहा—'रखने से क्या होता है? भावना हो तब तो वह
साध कारण हो सकता है इसके बिना वह किस काम का?'

परन्तु वह तो अनुभवी थे, हँस गये, बोले—'अच्छा इस
विषयमें फिर बातचीत होगी अब तो चलो भोजन करें, आज
आपको मेरे ही डेरे में भोजन करना होगा।' मैंने उनसे ना [illegible]
[illegible]

जबसे माँ और स्त्री को छोड़ा मड़ावरा से लेकर मार्गमें आज वैसा भोजन किया। दरिद्रको निधि मिलने में जितना हर्ष होता है उससे भी अधिक मुझे भोजन करने में हुआ।

भोजनके अनन्तर वह मन्दिरके भाण्डारमें द्रव्य देनेके लिये गये। पांच रुपये मुनीम को देकर उन्होंने जब रसीद ली तब मैं भी वहीं बैठा था। मेरे पास केवल एक आना था और वह इस लिये बच गया था कि आज के दिन आरवीके सेठके यहां भोजन किया था। मैंने विचार किया कि यदि आज अपना निजका भोजन करता तो यह एक आना खर्च हो जाता और ऐसा मधुर

[illegible]
हो गया परन्तु मैंने अन्तरङ्गसे दिया था अतः उस एक आनाके दानने मेरा जीवन पलट दिया।

सेठजी कपड़ा खरीदने बम्बई जारहे थे। आरवीमें उनकी दुकान थी। उन्होंने मुझसे कहा—'बम्बई चलो वहांसे गिरनारजी चले जाना।' मैंने कहा—'मैं तो पैदल यात्रा करूंगा।' यद्यपि साधन कुछ भी न था—साधनके नाम पर एक पैसा भी पास न था फिर भी अपनी दरिद्र अवस्था वचनों द्वारा सेठके सामने व्यक्त न होने दी—मनमें याचना का भाव नहीं आया।

सेठजी को मेरे ऊपर अन्तरङ्गसे प्रेम होगया—प्रेमके साथ ही मेरे प्रति दया की भावना भी होगई। बोले—'तुम आग्रह मत करो, हमारे साथ बम्बई चलो, हम आपके हितैषी हैं।' उनके आग्रह करने पर मैंने भी उन्हींके साथ बम्बईके लिये प्रस्थान कर दिया। नासिक होता हुआ रात्रिके नौ बजे बम्बई की स्टेशन पर रोशनी आदि की प्रचुरता देख कर आश्चर्यमें पड़ गया।

यह चिन्ता हुई कि पासमें तो पैसा नहीं क्या करूँगा ? नाना विकल्पोंके जालमें पड़ गया, कुछ भी निर्णय न कर सका। सेठजीके साथ घोड़ागाड़ीमें बैठकर जहाँ सेठ साहब ठहरे उसी मकानमें ठहर गया। मकान क्या था स्वर्ग का एक खण्ड था। देखकर आनन्दके बदले खेद सागरमें डूब गया। क्या करूँ ? कुछ भी निश्चय न कर सका। रात भर नींद नहीं आई।

प्रातःकाल शौचादि क्रियासे निवृत्त होकर बैठा था कि सेठजीने कहा—'चलो मन्दिर चलें और आपका जो भी सामान हो वह भी लेते चलें। वहीं मन्दिरके नीचे धर्मशालामें ठहर जाना।' मैंने कहा—'अच्छा।'

सामान लेकर मन्दिर गया, नीचे धर्मशालामें सामान रखकर ऊपर दर्शन करने गया। उल्लासके साथ दर्शन किये क्योंकि शरीर क्षीण था। सब नवीन थे। हृदय दीनताके कारण विह्वल था। शान्ति दर्शन कर एक पुस्तक उठा ली और धर्मशालामें स्वाध्याय करने लगा। सेठजी आठ आने देकर चले गये।

मैं किंकर्तव्यविमूढ़की तरह स्वाध्याय करने लगा। इतनेमें ही एक बाबा गुरुदयालसिंह जो खुरजाके रहनेवाले थे मेरे पास आये और पूछने लगे—'कहाँसे आये हो ? और बम्बई आकर क्या करोगे ?' मुझसे कुछ नहीं कहा गया प्रत्युत गद्गद हो गया। श्रीयुत बाबा गुरुदयालसिंहजीने कहा—'हम आध घंटा बाद आवेंगे तुम यहीं मिलना।' मैं शान्तिपूर्वक स्वाध्याय करने लगा।

उनकी अनुकम्पामयी बातोंसे इतनी तृप्ति हुई कि सब दुःख भूल गया। आध घण्टे बाद बाबाजी आ गये और दो धोती, [illegible] दुपट्टे, [illegible] [illegible]

न्दसे भोजन बनाओ कोई चिन्ता न करना हम तुम्हारी सब तरह से रक्षा करेंगे। अशुभ कर्मके विपाकमें मनुष्यों को अनेक विपत्तियोंका सामना करना पड़ता है और जब शुभ कर्मका विपाक आता है तब अनायास जीवोंको सुख सामग्री का लाभ हो जाता है। कोई न कर्ता है न हर्ता है, देखो, हम मुरारके निवासी हैं। आजीविकाके निमित्त बम्बई रहते हैं। दलाली करते हैं तुम्हें मन्दिरमें देख स्वयमेव हमारे यह परिणाम हो गये कि इस जीव की रक्षा करना चाहिये। आप न तो हमारे सम्बन्धी हैं। और न हम तुमको जानते ही हैं। तुम्हारे आचारादि से भी अभिज्ञ नहीं हैं फिर भी हमारे परिणामोंमें तुम्हारी रक्षा के भाव हो गये। इससे अब तुम्हें सब तरह की चिन्ता छोड़ देना चाहिये तथा ऊपर भी जिनेन्द्र देवके प्रतिदिन दर्शनादि कर स्वाध्यायमें उपयोग लगाना चाहिये। तुम्हारी जो आवश्यकता होगी हम उसकी पूर्ति करेंगे। इत्यादि वाक्यों द्वारा मुझे संतोष कराके चले गये।

उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर कातन्त्र व्याकरण श्रीयुत शास्त्री जीवारामजीसे पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। और रत्नकरण्ड श्रावकाचार जी पण्डित पन्नालालजीसे पढ़ने लगा। मैं पण्डित जीसे गुरुजी कहता था।

बाबा गुरुदयालजीसे मैंने कहा—'बाबाजी! मेरे पास ३१।≈) कापियोंके आगये। १०) आप दे गये थे। अब मैं भाद्रमास तक के लिये निश्चिन्त हो गया। आपकी आज्ञा हो तो मैं संस्कृत अध्ययन करने लगूं।' उन्होंने हर्ष पूर्वक कहा—'बहुत अच्छा विचार है, कोई चिन्ता मत करो, सब प्रबन्ध कर दूंगा, जिस किसी पुस्तककी आवश्यकता हो हमसे कहना।'

मैं आनन्दसे अध्ययन करने लगा और भाद्रमासमें रत्नकरण्ड श्रावकाचार तथा कातन्त्र व्याकरणकी पञ्चसन्धिमें परीक्षा दी। उसी वर्ष बम्बई परीक्षालय खुला था। रिजल्ट निकला। मैं दोनों विषयमें उत्तीर्ण हुआ साथमें पचीस रुपये इनाम भी मिला। समाज प्रसन्न हुई।

श्रीमान् स्वर्गीय पण्डित गोपालदास जी वरैया उस समय वहीं पर रहते थे। आप बहुत ही सरल तथा जैनधर्मके मार्मिक पण्डित थे साथमें अत्यन्त दयालु भी थे। वह मुझसे बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे कि 'तुम आनन्दसे विद्याध्ययन करो, कोई चिन्ता मत करो।' वह एक साहबके आफिसमें काम करते थे। साहब इनसे अत्यन्त प्रसन्न था। पण्डितजीने मुझसे कहा 'तुम शामको मुझे विथल् आफिसमें ले आया करो तुम्हारा जो मासिक खर्च होगा मैं दूंगा। यह न समझना कि मैं तुम्हें नौकर समझूंगा।' मैं उनके समक्ष कुछ नहीं कह सका।

परीक्षाफल देख कर देहलीके एक जौहरी लक्ष्मीचन्द्रजीने कहा कि 'दस रुपया मासिक हम बराबर देंगे तुम आनन्दसे अध्ययन करो।' मैं अध्ययन करने लगा किन्तु दुर्भाग्यका उदय इतना

प्रबल था कि बम्बईका पानी मुझे अनुकूल न पड़ा। शरीर रोगी हो गया। गुरुजी और श्री स्वर्गीय पं० गोपालदास जीने बहुत ही समवेदना प्रकट की। तथा यह आदेश दिया कि तुम पूना जाओ, तुम्हारा सब प्रबन्ध हो जावेगा। एक पत्र भी लिख दिया।

मैं उनका पत्र लेकर पूना चला गया। धर्मशालामें ठहरा। एक जैनीके यहां भोजन करने लगा। वहां की जलवायु सेवन करनेसे मुझे आराम हो गया। पश्चात् एक मास बाद मैं बम्बई आ गया। वहां कुछ दिन ठहरा कि फिरसे ज्वर आने लगा।

श्री गुरुजीने मुझे अजमेरके पास केकड़ी है, वहां भेज दिया। केकड़ीमें पं० धन्नालालजी साहब रहते थे। योग्य पुरुष थे। आप बहुत ही दयालु और सदाचारी थे। आपके सहवाससे मुझे बहुत ही लाभ हुआ। आपका कहना था कि 'जिसे आत्म-कल्याण करना हो वह जगत्‌के प्रपञ्चोंसे दूर रहे।' आपके द्वारा वहां पर एक पाठशाला चलती थी।

मैं श्रीमान् रानीवालोंकी दुकान पर ठहर गया। उनके मुनीम बहुत योग्य थे। उन्होंने मेरा सब प्रबन्ध कर दिया। वहां पर औषधालयमें जो वैद्यराज दौलतरामजी थे वह बहुत ही सुयोग्य थे। मैंने कहा—'महाराज मैं तिजारीसे बहुत दुखी हूं। कोई ऐसी औषधि दीजिये जिससे मेरी बीमारी चली जावे।' वैद्यराजने मूंगके बराबर गोली दी और कहा 'आज इसे खाओ तथा दुग्धको ५—पावला डालकर खीर बनाओ और जितनी खाई जावे खाओ। कोई विकल्प न करना।' मैंने दिन भर खीर खाई पेट खूब भर गया। रात्रिको आठ बजे वमन हो गया। ज्वर उसमें [illegible] चला गया। [illegible] दिन केकड़ीमें रहा और स्वस्थ [illegible]।

१४

चिरकांक्षित जयपुर

जयपुरमें ठोलियाकी धर्मशालामें ठहर गया। यहांपर जमुनाप्रसादजी कालासे मेरी मैत्री हो गई। उन्होंने श्रीवीरेश्वर शास्त्रीके पास जो कि राज्यके मुख्य विद्वान् थे मेरा पढ़नेका प्रबन्ध कर दिया। मैं आनन्दसे जयपुरमें रहने लगा। यहांपर सब प्रकारकी आपत्तियोंसे मुक्त हो गया।

एक दिन श्री जैन मन्दिरके दर्शन करनेके लिये गया। मन्दिरके पास श्रीनेकरजीकी दूकान थी। उनका कलाकन्द भारतमें प्रसिद्ध था। मैंने एक पाव कलाकन्द लेकर खाया। अत्यन्त स्वाद आया। फिर दूसरे दिन भी एक पाव खाया। कहनेका तात्पर्य यह है कि मैं बारह मास जयपुरमें रहा परन्तु एक दिन भी उसका त्याग न कर सका। अतः मनुष्योंको उचित है कि ऐसी प्रकृति न बनावें जो कष्ट उठानेपर भी उसे त्याग न सकें। जयपुर छोड़नेके बाद ही वह आदत छूट सकी।

एक बात यहां और लिखनेकी है कि अभ्याससे सब कार्य हो सकते हैं। यहांपर पानीके गिलासको मुखसे नहीं लगाते, ऊपरसे ही धार डाल कर पानी पीनेका रिवाज है। मुझे उस तरह पीनेका अभ्यास न था अतः लोग बहुत लज्जित करते थे। कहते थे कि तुम जूठा गिलास कर देते हो। मैं कहता था कि आपका कहना ठीक है पर मैं बहुत कोशिश करता हूं तो भी

इस कार्यमें उत्तीर्ण नहीं हो पाता। कहनेका तात्पर्य यह है कि मैंने बारह वर्ष जलपानिका अभ्यास किया। अन्तमें उस कार्यमें उत्तीर्ण हो गया। अतः मनुष्यको उचित है कि वह जिस कार्यकी सिद्धि करना चाहे उसे आमरणान्त न त्यागे।

यहांपर मैंने १८ मास रहकर श्रीवीरेश्वरजी शास्त्रीसे कातन्त्र व्याकरणका अभ्यास किया और श्रीचन्द्रप्रभ चरित भी पांच सर्ग पढ़ा। श्रीतत्त्वार्थसूत्रजीका अभ्यास किया और एक अध्याय श्री सर्वार्थसिद्धिका भी अध्ययन किया। इतना पढ़ बम्बईकी परीक्षामें बैठ गया।

जब कातन्त्र व्याकरणका प्रश्नपत्र लिख रहा था तब एक पत्र मेरे सामने आया। उसमें लिखा था कि तुम्हारी स्त्रीका देहावसान हो गया। मुझे अपार आनन्द हुआ। मैंने मन ही मन कहा—हे प्रभो! आज मैं बन्धनसे मुक्त हुआ। यद्यपि अनेक बन्धनोंका पात्र था परन्तु यह बन्धन ऐसा था जिससे मनुष्यकी सर्व सुध बुध भूल जाती है।' पत्रको पढ़ते देखकर श्री जमुनालालजी मन्त्रीने कहा—'प्रश्नपत्र छोड़कर पत्र क्यों पढ़ने लगे?' मैंने उत्तर दिया कि 'पत्रपर लिखा था—'जरूरी पत्र है।' उन्होंने पत्रको मांगा, मैंने दे दिया। पत्र पढ़कर उन्होंने समवेदना प्रकट की और कहा कि 'चिन्ता मत करना, प्रश्नपत्र सावधानीसे लिखना, हम तुम्हारी फिरसे शादी कर देवेंगे।' मैंने कहा—'अभी तो प्रश्नपत्र लिख रहा हूँ बादमें सर्व व्यवस्था आपको श्रवण कराऊंगा।'

अन्तमें सब व्यवस्था उन्हें सुना दी और उसी दिन श्रीबाईजीको एक पत्र लिखा दिया एवं सब व्यवस्था लिख दी। यह भी लिख दिया कि 'अब मैं निःशल्य होकर अध्ययन करूंगा। इतने दिनसे पत्र नहीं दिया सो क्षमा करना।'

— · —

यह जयपुर है।

जयपुर एक महान् नगर है, मैंने ३ दिन पर्यन्त श्री जैन मन्दिरोंके दर्शन किये तथा ३ दिन पर्यन्त शहरके बाह्य उद्यानोंमें जो जिन मन्दिर थे उनके दर्शन किये। बहुत शान्त भाव रहे।

यहां पर बड़े बड़े दिग्गज विद्वान् उन दिनों थे—श्रीमान् पं० मोतीलालजी तथा श्रीमान् पण्डित गुलजोकाठ जो ७० वर्ष के होंगे। श्रीमान् पण्डित चिम्मनलालजी भी उस समय थे जो कि वक्ता थे और सभामें संस्कृत ग्रन्थोंका ही प्रवचन करते थे। आपकी कथनशैली इतनी आकर्षक थी कि जो श्रोता आपका एक बार शास्त्र श्रवण कर लेता था उसे स्वाध्याय की रुचि हो जाती थी। आपके प्रवचन को जो बराबर श्रवण करता था वह २ या ३ वर्षमें जैन धर्मका धार्मिक वस्तु समझने का पात्र हो जाता था। आपके शास्त्रमें प्रायः मन्दिर भरा जाता था। कहां तक आपके गुणों की प्रशंसा करें? आपसे वक्ता जैनियोंमें आप ही थे। आप वक्ता ही न थे सन्तोषी भी थे। आपके पक्के गोटे की दुकान होती थी। आप भोजनोपरान्त ही दुकान पर जाते थे।

जयपुरमें इन दिनों विद्वानों का ही समागम न था किन्तु बड़े बड़े गृहस्थों का भी समागम था जो अष्टमी चतुर्दशी को

१

महान् मेला

उन दिनों जयपुरमें एक महान् मेला हुआ था। जिसमें भारतवर्षके सभी प्रान्तके विद्वान् और धनिक वर्ग तथा सामान्य जनताका वृहत्समारोह हुआ था। गायक भी अच्छे अच्छे आये थे। मेलाको भरानेवाले श्री स्वर्गीय मूलचन्द्रजी सोनी अजमेरवाले थे। यह बहुत ही धनाढ्य और सद्गृहस्थ थे। आपके द्वारा ही तेरापन्थ का विशेष उत्थान हुआ—शिखर जीमें तेरापन्थी कोठीका विशेष उत्थान आपके ही सत्प्रयत्नसे हुआ। अजमेरमें आपके मन्दिर और नसियां जी देखकर आपके वैभवका अनुमान होता है।

आप केवल मन्दिरों के ही उपासक न थे पण्डितोंके भी बड़े प्रेमी थे। श्रीमान् स्वर्गीय पण्डित बलदेवदासजी आपहीके मुख्य पण्डित थे। जब पण्डित जी अजमेर जाते और आपकी दुकान पर पहुंचते तब आप आदरपूर्वक उन्हें अपने स्थान पर बैठाते थे। पण्डितजी महाराज जब यह कहते कि आप हमारे मालिक हैं अतः दूकान पर यह व्यवहार योग्य नहीं तब सेठजी साहब उत्तर देते कि 'महाराज! यह तो पुण्योदयकी देन है परन्तु आपके द्वारा वह लक्ष्मी मिल सकती है जिसका कभी नाश नहीं। आपकी सौम्य मुद्रा और सदाचारको देखकर बिना ही उपदेशके जीवोंका कल्याण हो जाता है। हम तो आपके द्वारा उस मार्ग पर हैं

को आजतक नहीं पाया।" इस प्रकार सेठ जी और पण्डितजीका परस्पर सद्व्यवहार था। कहां तक उनका शिष्टाचार लिखा जावे ? पण्डितजीकी सम्मतिके विना कोई भी धार्मिक कार्य सेठजी नहीं करते थे। जो जयपुरमेंसे मेला हुआ था वह पण्डित जीकी सम्मतिसे ही हुआ था।

मेला इतना भव्य था कि मैंने अपनी पर्यायमें वैसा अन्यत्र नहीं देखा। इस मेलामें श्रीमान् पण्डित पन्नालालजी न्याय दिवाकर, श्रीमान् स्वर्गीय पण्डित गोपालदास जी बरैया तथा श्रीमान् स्वर्गीय पण्डित प्यारेलाल जी अलीगढ़वाले आदि विद्वानोंका तथा सेठोंमें प्रमुख सेठ जो आज विद्यमान हैं तथा श्रीमान् स्वर्गीय उग्रसेन जी रईस, उनके भ्राता श्री स्वरूपचन्द्रजी रईस, श्रीमान् लाला जम्बूप्रसादजी रईस सहारनपुर वाले, श्री चौधरी कुन्नामल्ल जी दिल्ली आदि अनेक महाशय, एवं बुन्देलखण्ड प्रान्तके श्रीमन्त स्वर्गीय मोहनलालजी साहब खुरई, जबलपुरके महाशय सिंघई गरीबदासजी साहब, तथा श्रीमन्त स्वर्गीय गुपाली साहु आदि प्रमुख व्यक्तियोंका सद्भाव था।

श्री शिवलालजी भोजक तथा ताण्डवनृत्य करनेवाले श्री सिंघई धर्मदास जी आदि भी प्रस्तुत थे। ये ऐसे गवैया थे कि जिनके गानका श्रवण कर मनुष्य मुग्ध हो जाता था। जब वह भगवान्के गुणोंका वर्णन कर अदा दिखाते थे तो दर्शकोंको ऐसा मालूम होता था कि वह भगवान्को हृदयमें ही धारण किये हों। कहनेका तात्पर्य यह है कि इस मेलेमें अनेक भव्य लोगोंने पुण्यबन्ध किया था।

मेलामें श्री महाराजाधिराज जयपुर नरेश भी पधारे थे। आपने मेलाकी सुन्दरता देख बहुत ही प्रसन्नता व्यक्त की थी।

तथा श्रीजिन बिम्बको देख कर स्पष्ट शब्दोंमें यह कहा था कि—

'शुभ ध्यानकी मुद्रा तो इससे उत्तम संसारमें नहीं हो सकती। जिसे आत्म कल्याण करना हो वह इस प्रकारकी मुद्रा बनानेका प्रयत्न करे। इस मुद्रामें बाह्याडम्बर छू भी नहीं गया है साथ ही इसकी सौम्यता भी इतनी अधिक है कि इसे देखते ही निश्चय हो जाता है कि जिनकी यह मुद्रा है उनके अन्तरङ्गमें कोई कलुषता नहीं थी। मैं यही भावना भाता हूँ कि मैं भी इसी पदको प्राप्त होऊं। इस मुद्राके देखनेसे जब इतनी शान्ति होती है तब जिनके हृदयमें कलुषता नहीं उनकी शान्तिका अनुमान होना भी दुर्लभ है।'

इस प्रकार मेलामें जो जैनधर्मकी अपूर्व प्रभावना हुई उसका श्रेय श्रीमान् स्वर्गीय सेठ मूलचन्द्रजी सोनी अजमेरवालोंके ही भाग्यमें था।

द्रव्यका होना तो पूर्वोपार्जित पुण्योदयसे होता है परन्तु उसका सदुपयोग विरले ही पुण्यात्माओंके भाग्यमें होता है। जो वर्तमानमें पुण्यात्मा हैं वही मोक्षमार्गके अधिकारी हैं। सम्पत्ति पाकर मोक्षमार्गका लाभ जिसने लिया उसी नररत्नने मनुष्य जन्मका लाभ लिया। अस्तु, यह मेलाका वर्णन हुआ।

१७

पं० गोपालदासजी वरैयाके सम्पर्कमें

बम्बई परीक्षाफल निकला। श्री जीके चरणोंके प्रसादसे मैं परीक्षामें उत्तीर्ण होगया। बहुत प्रसन्नता हुई। श्रीमान् स्वर्गीय पण्डित गोपालदासजी का पत्र आया कि मथुरामें दिगम्बर जैन महाविद्यालय खुलनेवाला है यदि तुम्हें आना हो तो आ सकते हो। मुझे बहुत प्रसन्नता हुई।

मैं श्री पण्डितजी की आज्ञा पाते ही आगरा चला गया और मोतीकटरा की धर्मशालामें ठहर गया। यहीं श्री गुरु पन्नालाल जी बाकलीवाल भी आगये। आप बहुत ही उत्तम लेखक तथा संस्कृतके ज्ञाता थे। आपकी प्रकृति अत्यन्त सरल और परोपकाररत थी। मेरे तो प्राण ही थे—इनके द्वारा जो मेरा उपकार हुआ उसे इस जन्ममें नहीं भूल सकता।

आप श्रीमान् स्वर्गीय पं० बलदेवदासजीसे सर्वार्थसिद्धिका अभ्यास करने लगे। मैं भी आपके साथमें जाने लगा।

उन दिनों छापेका प्रचार जैनियोंमें न था। मुद्रित पुस्तक का लेना महान् अनर्थ का कारण माना जाता था अतः हाथसे लिखे हुए ग्रन्थों का पठन पाठन होता था। हम भी हाथ की लिखी सर्वार्थसिद्धि पर ही अभ्यास करते थे।

पण्डित जी महाराज को सर्वार्थसिद्धिपर भी अध्ययन करानेका अवसर मिलता था। गर्मीके दिन थे पण्डितजी पर

जानेमें प्रायः पत्थरोंसे पटी हुई सड़क मिलती थी। मोतीकटरासे पण्डितजीका मकान एक मीलसे अधिक दूर था अतः मैं जूता पहिने ही हस्त लिखित पुस्तक लेकर पण्डितजीके घर पर जाता था। यद्यपि इसमें अविनय थी और हृदयसे ऐसा करना नहीं चाहता था परन्तु निरुपाय था। दुपहरीमें यदि पत्थरों पर चलूं तो पैरोंमें कष्ट हो न जाऊँ तो अध्ययनसे वञ्चित रहूं—मैं दुविधामें पड़ गया।

लाचार, अन्तरात्माने यही उत्तर दिया कि अभी तुम्हारी छात्रावस्था है। अध्ययनकी मुख्यता रक्खो अध्ययनके बाद कदापि ऐसी अविनय नहीं करना . इत्यादि तर्क वितर्कके बाद मैं पढ़नेके लिये चला जाता था।

यहां पर श्रीमान प० नन्दरामजी रहते थे जो कि अद्वितीय हकीम थे। हकीम जी जैनधर्मके विद्वान् ही न थे सदाचारी भी थे। भोजनादि की भी उनके घरमें पूर्ण शुद्धता थी। आप इतने दयालु थे कि आगरामें रहकर भी नाली आदिमें मूत्र क्षेपण नहीं करते थे।

एक दिन मैं पण्डितजीके पास पढ़नेको जा रहा था। दैवयोगसे आप मिल गये। कहने लगे—'कहां जाते हो ?' मैंने कहा—'महाराज ! पण्डितजीके पास पढ़नेको जा रहा हूँ।' 'बगलमें क्या है ?' मैंने कहा—'पाठ्य पुस्तक सर्वार्थसिद्धि है।' आपने मेरा वाक्य श्रवण कर कहा—'पञ्चम काल है, ऐसा ही होगा, तुमसे धर्मोन्नतिकी क्या आशा हो सकती है ? और पण्डितजीसे क्या कहूं ?' मैंने कहा—'महाराज निरुपाय हूं।' उन्होंने कहा—'इससे तो निरक्षर रहना अच्छा।' मैंने कहा—'महाराज ! अभी गर्मीका प्रकोप है, पश्चात् यह अविनय न होगा।' उन्होंने एक न सुनी और कहा—'अज्ञानीको उपदेश देनेसे क्या लाभ ?' मैंने कहा—

'महाराज! जब कि भगवान् पतितपावन हैं और आप उनके सिद्धान्तोंके अनुगामी हैं तब मुझ जैसे अज्ञानियोंका भी उद्धार कीजिये। हम आपके बालक हैं अतः आप ही बतलाइये कि ऐसी परिस्थितिमें मैं क्या करूं?' उन्होंने कहा—'बातोंके बनानेमें तो अज्ञानी नहीं पर आचारके पालनेमें अज्ञान बनते हो।' ऐसी ही एक गलती और भी हो गई वह यह कि—मथुरा विद्यालयमें पढ़ानेके लिये श्रीमान् पं० ठाकुरप्रसादजी शर्मा उन्हीं दिनों वहां पर आये थे, और मोतीकटराकी धर्मशालामें ठहरे थे। आप व्याकरण और वेदान्तके आचार्य थे साथमें साहित्य और न्यायके भी प्रखर विद्वान् थे। आपके पाण्डित्यके समक्ष अच्छे अच्छे विद्वान् नत मस्तक हो जाते थे। हमारे श्रीमान् स्वर्गीय पं० बलदेवदासजीने भी आपसे भाष्यान्त व्याकरणका अभ्यास किया था।

आपके भोजनादिकी व्यवस्था श्रीमान् वरैयाजीने मेरे जिम्मे कर दी। चतुर्दशीका दिन था। पण्डितजीने कहा—'बाजारसे पूड़ी शाक लाओ।' मैं बाजार गया और हलवाई के यहांसे पूड़ी तथा शाक ले आ रहा था कि मार्गमें दैवयोगसे वही श्रीमान् पं० नन्दरामजी साहब पुनः मिल गये। मैंने प्रणाम किया। पण्डितजीने देखते ही पूछा—'कहां गये थे?'

मैंने कहा—'पण्डितजीके लिये बाजारसे पूड़ी शाक लेने गया था।' उन्होंने कहा किस पण्डितके लिये? मैंने उत्तर दिया—हरिपुर-जिला इलाहाबादके पण्डित श्री ठाकुर [illegible] [illegible] जो [illegible] [illegible] महाविद्यालय मथुरामें पढ़ाने [illegible] [illegible] हैं [illegible]

[illegible] हैं [illegible] मैंने कहा, [illegible] साहब [illegible]

१८

महासभाका वैभव

मेरी प्रकृति बहुत ही डरपोक थी। जो कुछ कोई कहता था चुपचाप सुन लेता था किन्तु इतना सुयोग अवश्य था कि श्रीमान् पं० गोपालदासजी वरैया मुझसे प्रसन्न थे।

आप जैसे स्वाभिमानी एवं प्राचीन पद्धतिके संरक्षक आप ही थे। आप ही के प्रभावसे बम्बई परीक्षालयकी स्थापना हुई, आपके ही सदुपदेशसे महा विद्यालयकी स्थापना हुई तथा आपके ही प्रयत्न और पूर्ण हस्तदानके द्वारा ही महासभा स्थापित एवं पल्लवित हुई।

आपके सिवाय महासभाकी स्थापनामें श्रीमान् स्वर्गीय मुकुन्दरामजी मुंशी मुरादाबाद, श्रीमान् पं० चुन्नीलालजी और स्वर्गीय पं० प्यारेलालजी अलीगढ़वालोंका भी विशेष हाथ था। महासभाके प्रधान मन्त्री स्वर्गीय डिप्टी चम्पतरायजी थे और सभापति थे स्वर्गीय नररत्न राजा लक्ष्मणदासजी साहब मथुरा। [illegible]

उस समय जैनगजटके सम्पादक श्री सूरजभानुजी वकील थे और श्री करोड़ीमल्लजी महासभाके मुनीम थे। महासभाके अधिवेशनोंमें प्रायः बड़े-बड़े श्रीमानों और पण्डितोंका समुदाय

उपस्थित रहता था। कार्तिक वदिमें मथुराका मेला होता था। राजा साहबकी ओरसे मेलाका प्रबन्ध रहता था। किसी यात्रीको कोई प्रकारका कष्ट नहीं उठाना पड़ता था। राजा साहब स्वयं डेरे डेरेपर जाकर लोगोंको तसल्ली देते थे और बड़ी नम्रताके साथ कहा करते थे कि 'यदि कुछ कष्ट हुआ हो तो क्षमा करना। मेले ठेले हैं। हम लोग कहां तक प्रबन्ध कर सकते हैं?' आपकी सरलता और सौम्यतासे आपके प्रति जनताके हृदयमें जो अनुराग उत्पन्न होता था उसका वर्णन कौन कर सकता है?

मेलामें शास्त्र प्रवचनका उत्तम प्रबन्ध रहता था। प्रायः बड़े-बड़े पण्डित जनताको शास्त्र प्रवचनके द्वारा जैनधर्मका मर्म समझाते थे। जिसे श्रवण कर जनता की जैनधर्ममें गाढ़ श्रद्धा हो जाती थी। नाना प्रकारके प्रश्नों का उत्तर अनायास हो जाता था। वक्ताओंमें श्रीमान् स्वर्गीय पण्डित गोपालदासजी वरैया, श्रीमान् स्वर्गीय पण्डित प्यारेलालजी अलीगढ़, श्रीमान् पण्डित शान्तिलालजी आगरा और शान्तिमूर्ति, संस्कृतके पूर्णज्ञाता एवं अलौकिक प्रतिभाशाली स्वर्गीय पण्डित बलदेवदासजी प्रमुख थे। इनके सिवाय अन्य अनेक गण्यमान्य पण्डित वर्गके द्वारा भी मेला की अपूर्व शोभा होती थी। साथमें भाषाके धुरंधर विद्वानों का भी समुदाय रहता था। जैसे कि लश्करनिवासी श्रीमान् स्वर्गीय पण्डित लक्ष्मीचन्द्रजी साहब। इनकी व्याख्यान शैली को सुनकर श्रोताओं को चकाचौंध आजाती थी। जिस वस्तु का आप वर्णन करते थे उसे पूर्ण कर ही श्वास लेते थे। जब आप स्वर्ग का वर्णन करने लगते थे तब एक एक विमान, उनके चैत्यालय और वहांके देवोंकी विभूति को सुनकर यह अनुमान होता था कि इनकी धारणा शक्ति की महिमा विलक्षण है

इसी प्रकार श्रीमान [illegible] लालजी साहब [illegible]
[illegible] कलकत्ता [illegible] में [illegible]

आपकी तर्कशैली इतनी उत्तम थी कि अन्तरङ्ग कमेटीमें आपका ही पक्ष प्रधान रहता था। आपको शिक्षा खातेसे इतना गाढ़ प्रेम था कि आगरा रहकर भी विद्यालयका कार्य सुचारुरूपसे चलाते थे। यद्यपि आप उस समय अधिकांश बम्बईमें रहते थे फिर भी जब कभी आगरा आनेका अवसर आता तब मथुरा विद्यालयमें अवश्य पदार्पण करते थे। स्पष्ट शब्दोंमें यह कहा जा सकता है कि मथुरा विद्यालयकी स्थापना आपके ही प्रयत्नसे हुई थी।

आप धर्मशास्त्रके अपूर्व विद्वान् थे। केवल धर्मशास्त्रके ही नहीं, द्रव्यानुयोगके भी अपूर्व विद्वान् थे। पञ्चाध्यायीके पठन पाठनका प्रचार आप ही के प्रयत्नका फल है। इस ग्रन्थके मूल अन्वेषक श्रीमान् प० बलदेवदासजी हैं। उन्होंने अजमेरके शास्त्र भण्डारमें इसे देखा और श्रीमान् प० गोपालदासको अध्ययन कराया। अनन्तर उसका प्रचार श्री पण्डितजीने अपने शिष्योंमें किया। इसकी जो भाषा टीकाएं हैं वे आपके ही शिष्य श्री पं० मक्खनलालजी सिद्धान्तालङ्कार और पं० देवकीनन्दनजी व्याख्यानवाचस्पति की कृतियां हैं।

आप विद्वान ही न थे, लेखक भी थे। आपकी भाषामय गद्य पद्यकी रचना अनुपम होती थी। आपने श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका और जैन सिद्धान्तदर्पणकी रचना के द्वारा जैन सिद्धान्तमें प्रवेशका मार्ग खोल दिया था। आपका सुशीला उपन्यास सर्वथा बेजोड़ है। उसमें आपने धार्मिक सिद्धान्तोंका रहस्य कथा द्वारा इस उत्तम शैलीसे विद्वानोंके सामने रक्खा है जिसे अवगत कर [illegible] होता है। आपका [illegible] [illegible]

जो कष्ट हो हमसे कहो हम निवारण करेंगे। जितने छात्र हैं हम उन्हें पुत्रसे भी अधिक समझते हैं। यदि अब जैनधर्मका विकास होगा तो इन्हीं छात्रोंके द्वारा होगा, इन्हींके द्वारा धर्मशास्त्र तथा सदाचारकी परिपाटी चलेगी। मैं तुम्हें दो रुपया मासिक अपनी ओरसे दुग्ध पान के लिये देता हूं।'

मैं मथुरा चला गया।

आज जो जयधवलादि ग्रन्थोंकी भाषा टीका हो रही है वह आपके द्वारा व्युत्पन्न-शिक्षित विद्वानोंके द्वारा ही हो रही है। इसके प्रधान कार्यकर्ता या तो आपके अन्यतम शिष्य हैं या आपके शिष्योंके शिष्य हैं। वह आपका ही भगीरथ प्रयत्न था जो आज भारतवर्षके जैनियोंमें करणानुयोगका प्रचार हो रहा है।

आप केवल विद्वान् ही नहीं थे सदाचारी भी अद्वितीय थे। आपका मकान आगरामें था। म्युनिसिपल जमादारने शौचगृहके बनानेमें बहुत बाधा दी। यदि आप उसे १०) की घूस दे देते तो मुकदमा न चलता परन्तु पण्डितजीके घूस देनेका त्याग था। मुकदमा चला। बड़ी परेशानी उठानी पड़ी। सैकड़ों रुपयों का व्यय हुआ परन्तु श्री पण्डितजीने घूस नहीं दी। अन्तमें आप विजयी हुए।

आपके ही प्रयत्नके फलस्वरूप मुरैना विद्यालय की स्थापना हुई थी। यह वह विद्यालय है जिसके द्वारा आज भारतवर्षमें गोम्मटसारादि ग्रन्थोंके मर्मज्ञ विद्वानोंका सद्भाव हो रहा है।

आपके सहवासमें श्रीमान् पं. ठाकुरदासजी ब्रह्मचारी सर्वदा मुरैना रहते थे।

२१
शिखरजीके लिये प्रस्थान

एक दिनकी बात है—मैंने एक ज्योतिषीसे पूछा—'बतलाइये, मैंने न्याय मध्यमाके प्रथम खण्डमें परीक्षा दी है, पास हो जाऊंगा ?' ज्योतिषीने कहा—'पास हो जाओगे पर यह निश्चित है कि तुम वैशाख सुदी १३ के ९ बजेके बाद खुरजा नहीं रह सकोगे—चले जाओगे।' मैंने कहा—'आपने कैसे जान लिया ?' 'ज्योतिर्विद्यासे जान लिया'...उन्होंने गर्वके साथ उत्तर दिया। 'मैं आपके निर्णयको मिथ्या कर दूंगा'...मैंने हंसते हुए कहा। 'कर देना' .यह कहकर ज्योतिषीजी चले गये।

उस दिनसे मुझे निरन्तर यह चिन्ता रहने लगी कि वैशाख सुदि १३ की कथाको मिथ्या करना है।

वैशाख सुदि १२ के दोपहरका समय था, कुछ कुछ लू चल रही थी। सब ओर सन्नाटा था। मैं कमराके भीतर सो रहा था। अचानक बहुत ही भयानक स्वप्न आया। निद्रा भंग होते ही मनमें चिन्ता हुई कि यदि अकस्मात् मरण हो जावेगा तो शिखर जी की यात्रा रह जावेगी अतः शिखरजी अवश्य ही जाना चाहिये। कुछ देर बाद विचार आया कि कैसे जाऊं ? गर्मीके दिन हैं, एकाकी जानेमें अनेक आपत्तियां हैं।

मैं विचारमें मग्न था [illegible] आ गये। आपने सरल स्वभावसे [illegible]

आपत्ति आ गई? हमारे विद्यमान होते हुए चिन्ता करनेकी क्या आवश्यकता है? हम सब प्रकारकी सहायता करनेको सन्नद्ध हैं।'

मैंने कहा—'यह तो आपकी सज्जनता है, आपकी सहायतासे ही तो हमारा संस्कृत विद्यामें प्रवेश हुआ तथा अन्य सब प्रकारके सुभीते प्राप्त हैं। परन्तु आज रात्रिके बाद ऐसा स्वप्न आया कि उसका फल मैंने मृत्यु समझ रक्खा है। पर्यायका कुछ भरोसा नहीं अतः मनमें यह भावना होती है कि एक बार गिरिराज-शिखरजीकी वन्दना अवश्य कर आऊं। परन्तु पराधीन होनेसे असमर्थ हूँ—कैसे जाऊं?'

आपने कहा—'चिन्ता मत करो, हम लोग शीघ्र ही गिरिराजकी यात्राके निमित्त चलेंगे; पूर्णी सब प्रबन्ध करेंगे, आप भी आनन्दसे सभी यात्रा करना; हमारे समागममें कष्ट न होगा।'

मैंने कहा—'आपका कहना अक्षरशः सत्य है परन्तु इतने दिनके अन्दर यदि मेरी आयु पूर्ण हो जावेगी तो मनकी बात मनमें ही रह जावेगी। किसी नीतिकारने कहा है कि—

काल करे सो आज कर आज करे सो अब।
पलमें परलय होयगा बहुरि करेगा कब॥'

अथवा यह भी उक्ति है कि—

'करले सो काम भजले सो राम'

मुझे बहुत ही अधीरता हो रही है अब मैं शिखरजीको जाऊंगा ही।'

श्रीमान् सेठजी बोले—'हम तो आपके [illegible] गमनके दिन है, १८ मीलकी यात्रा कैसे करोगे [illegible]

करो जितना रुपया आने जानेमें खर्च हो दुकान से ले लो।'

यह चर्चा होनेके बाद सेठजी तो दुकान पर चले गये। मैंने उस जैनी भाईसे कहा कि कल ९ बजे ही गाड़ी जाती है अतः मार्गके लिये कुछ मिठाई बना लो। 'अच्छा जाते हैं .' यह कह कर वह चला गया। प्रसन्नतासे रात बीती।

प्रातःकाल हमने श्रीजिनेन्द्रदेवके दर्शन पूजन कर भोजन किया और साढ़े आठ बजे दोनों स्टेशन पर पहुंच गये। इलाहाबादका टिकिट खरीदा, गाड़ीमें बैठ गये और ९ बजे जब गाड़ी छूटने लगी तब याद आई कि ज्योतिषीने कहा था कि 'तुम वैशाख सुदि १३ को ६ बजेके बाद खुरजा न रह सकोगे तथा साथमें यह भी कहा था कि फिर खुर्जा नहीं आओगे।'

मनमें बड़ा हर्ष हुआ कि अब भी ऐसे ऐसे निमित्तज्ञानी हैं।

२२

मार्गमें गङ्गायमुनासंगम

दूसरे दिन इलाहाबाद पहुंच गये। स्टेशनसे तांगा कर जैन धर्मशाला पहुंचे। यहां पर बड़े बड़े जिनालय हैं जिनमें प्राचीन जिन बिम्ब भी हैं। यहांसे अक्षयवट देखनेके लिये किलेमें गये। किलेके अन्दर एक मकान है, उसमें एक कल्पित सूखा पेड़ बना रक्खा है, वह जो भी हो परन्तु हजारों यात्री उसके दर्शनार्थ जाते हैं। हम भी इस अभिप्राय से गये थे कि भगवान् आदिनाथने वट वृक्षके नीचे दैगम्बरी दीक्षा धारण की थी।

यहांसे दो मील पर गंगा यमुनाका सगम देखने के लिये गये। यहां सहस्रों यात्री स्नानार्थ आते हैं, सैकड़ों पण्डोंके स्थान किनारे पर हैं जो यात्रियोंको अच्छा सुभीता देते हैं तथा उनसे द्रव्य भी उपार्जन करते हैं। वास्तवमें यही उनकी आजीविका है। तीर्थयात्रा धर्मसाधनका उत्तम निमित्त है परन्तु अब उन स्थानों पर आजीविकाके निमित्त लोगोंने अनेक असत्य कल्पनाओंके द्वारा पुण्य सचय करनेका लेश भी नहीं रहने दिया है। कहीं नाई, कहीं पिण्ड सामग्रीवाले और कहीं टैक्स वसूल करनेवाले पण्डे ही नजर आते हैं। इन सबकी खींचतान से बेचारे यात्रीगण दुखी हो जाते हैं। जो हो भारतवर्षके जीवोंमें अब भी धर्मका श्रद्धा नष्कपट रूपमें विद्यमान है

हमारा जो साथी था उसने कहा— चलो हम तुम भी स्नान

कर लें, मार्गकी थकावट मिट जावगी।' मैंने कहा—'आपकी इच्छा।' अन्तमें हम दोनोंने गङ्गास्नान किया। घाटके पण्डेके पास वस्त्रादि रख दिये। जब स्नान कर चुका तब पंडा महाराजने दक्षिणा मांगी। हमने कहा—'महाराज! हम तो जैनी हैं।' पंडाने डांट दिखाते हुए कहा कि 'क्या जैनी दान नहीं देते?' मैंने कहा—'देते क्यों नहीं? परन्तु आप ही बतलाइये—आपको कौन सा दान दिया जाय? आप त्यागी तो हैं नहीं जिससे कि पात्र दान दिया जावे। करुणा दानके पात्र मालूम नहीं होते क्योंकि आपके शरीरसे रईसोंका प्रत्यय होता है फिर भी यदि आप नाराज होते हैं तो लीजिये यह एक रुपया है।' पण्डाने कहा—'बात तो ठीक है परन्तु हमारा यही धंधा है तुम लोग खुश रहो, तुमने हमारे वचनको व्यर्थ नहीं जाने दिया। यदि तुमको दुख हो तो यह रुपया ले जाओ। यहां ·) या ४) की कोई बात ही नहीं है। पनपियाईमें चले जाते हैं।'

'नहीं, महाराज! क्लेशकी कोई बात नहीं परन्तु यह आजीविका आप जैसे मनुष्योंको शोभाप्रद नहीं है। आगे आपकी इच्छा'...यह मैंने कहा।

पण्डाजी बोले—'भाई यह कलिकाल है, यहां तो यही कहावत चरितार्थ होती है कि 'कुछ देवो ऊँट दुबरी'

यहां जो दान देनेवाले आते हैं वे सात्त्विकवृत्ति के तो आते नहीं। जो महापातकी होते हैं वे ही अपने पापको दूर करनेके लिये आते हैं। अब तुम्हीं बताओ [illegible]

[illegible]

है ? संसारमें यही चलता है। जो अत्यन्त निर्मल परिणामी हैं उन्हें तीर्थों पर भटकनेकी आवश्यकता नहीं। जिसके मल नहीं वह स्नान क्यों करे ? जिसने पाप नहीं किया वह क्यों किसीके आरण्यमें अपना काल लगावे ? चूँकि भगवान्‌को पतितपावन कहते हैं अतः जरा सोचो जिसने पाप ही नहीं किया वह पतितपावनके पास भक्ति आदि करनेकी चेष्टा क्यों करेगा ? तुम जो गिरिराजकी यात्राके लिये जा रहे हो सो इसी लिये न कि हमारे पातक दूर हों और आगामी कालमें सद्गति हो। कल्पना करो—यदि जैनियोंमें पापका परिणाम न होता तो वे भगवान् अर्हन्तकी उपासना क्यों करते ? अतः बेटा ! तुम अभी बालक हो, किसीकी निन्दा मत करना, अपने धर्मको पालो, अपनी वृत्ति निर्मल करो, वही तुमको पार लगावेगी। हमारे सिद्धान्तमें भी कहा है—'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'—ज्ञानके बिना मुक्ति नहीं हो सकती फिर भी इस राड़ आजीविकाके लिये ब्राह्मणोंको नाना वेष रखना पड़ते हैं। विशेष कुछ नहीं तुम जाओ, हम तुम्हें आशीर्वाद देते हैं तुम्हारी यात्रा सानन्द होगी।'

२३

दर्शन और परिक्रमा

हम दोनों वहांसे चले और सायंकालकी गाड़ी पर सवार होकर पटना—सुदर्शन सेठके निर्वाणस्थान पर पहुँच गये। धर्मशालामें ठहरे, प्रातःकाल स्नान कर श्री सुदर्शन निर्वाण क्षेत्रकी वन्दना की। मध्याह्नमें भोजनादिसे निवृत्त होकर गिरिडीके लिये चल दिया। बीचमें मधुपुर गाड़ी बदलते हुए गिरिडी पहुँचे। मन्दिरोंके दर्शन कर अपूर्व आनन्द पाया। यहां पर श्री किशोरीलाल घनचन्द्र जी सरावगी बड़े सज्जन व्यक्ति हैं। यहांसे चलकर बराकर आये फिर श्री शिखरजी पहुँच गये।

श्री पार्श्वप्रभुकी निर्वाणभूमिका साधारण दर्शन तो गिरिडीसे ही हो गया था पर बराकर पहुँचने पर विशेष दर्शन होने लगा। ज्यों ज्यों आगे बढ़ने लगे त्यों त्यों स्पष्ट दर्शन होने लगे थे। [illegible] पार्श्वप्रभुके मन्दिर पर [illegible] [illegible]

अन्तमें मधुवन पहुँच गये, तेरापंथी धर्मशालामें आश्रय लिया। प्रातःकाल शौचादि क्रियासे निवृत्त होकर श्री पार्श्वप्रभुके दर्शन कर परम आनन्दका अनुभव किया। बादमें बीसपन्थी कोठीके दर्शन कर स्थान पर आये और भोजनादिसे निवृत्त हो सो गये।

तीन बजे उठकर सामग्री तैयार की और वस्त्र प्रक्षालन कर सूखनेके लिये डाल दिये। सायंकाल भोजनोपरान्त बाहर-चबूतराके ऊपर सामायिक क्रिया करके सो गये। रात्रिके ९ बजेसे लेकर १० बजे तक अखण्ड वर्षा हुई। मन आह्लादसे भर गया और हम दोनों पार्श्वप्रभुके गुण गाने लगे। हृदयमें इस बातकी दृढ़ श्रद्धा हो गई कि 'अब तो पार्श्व प्रभुकी वन्दना सुख पूर्वक होगी। निद्रा नहीं आई, हम दोनों ही श्री पार्श्वके चरित्रकी चर्चा करते रहे। चर्चा करते करते ही एक बज गया उसी समय शौचादि क्रियासे निवृत्त होकर स्वच्छ वस्त्र पहिने और एक आदमी साथ लेकर श्रीगिरिराजकी वन्दनाके लिये प्रस्थान कर दिया। मार्गमें स्तुति पाठ किया।

स्तुतिपाठके अनन्तर मैं मन ही मन कहने लगा कि 'हे प्रभो! यह हमारी वन्दना निर्विघ्न हो जावे इसके उपलक्ष्यमें हम आपका पञ्चकल्याणक पाठ करेंगे। ऐसा सुनते हैं कि अधम जीवोंको वन्दना नहीं होती। यदि हमारी वन्दना नहीं हुई तो हम अधम पुरुषोंकी श्रेणीमें गिने जावेंगे, अतः हे प्रभो! हम और कुछ नहीं मांगते केवल यही मांगते हैं कि आपके स्मरणप्रसादसे हमारी यात्रा हो जावे, हे प्रभो! आपकी महिमा अवर्णनीय है। यदि न हुई तो हमारा जीवन निष्फल है आशा है हमारी प्रार्थना विफल न जावेगी। प्रभो! मेरी प्रार्थना पर प्रथम ध्यान दीजिये, मैं बड़े कष्टसे आया हूं. इस भीषण गर्मीमें यात्राके लिये कौन आता है? आपके जो अनन्य भक्त हैं वे ही इस भीषण समयमें आपके

गुणगान करते हुए गिरिराज पर आते हैं' इत्यादि—कहते कहते श्री कुन्थुनाथ स्वामीको शिखर पर पहुंच गये। उसी समय आदमीने कहा कि सावधान हो जाओ श्रीकुन्थुनाथ स्वामीकी टोंक आ गई। दर्शन करो और मानवजन्मकी सफलताका लाभ लो।

हम दोनों ने बड़े ही उत्साह के साथ श्री कुन्थुनाथ स्वामीकी टोंक पर देव, शास्त्र, गुरुका पूजन किया और वहांसे अन्य टोंकोंकी वन्दना करते हुए श्री चन्द्रप्रभकी टोंक पर पहुँचे। अपूर्व दृश्य था, मन में आया कि धन्य है उन महानुभावों को जिन्होंने इन दुर्गम स्थानों से मोक्ष लाभ लिया।

श्री चन्द्रप्रभ स्वामीकी पूजन कर शेष तीर्थंकरोंकी वन्दना करते हुए जलमन्दिर आये। यहां बीचमें श्रीपार्श्वनाथ स्वामीकी प्रतिमा के जो कि श्वेताम्बर आम्नायके अनुकूल थी—नेत्र आदि जड़े थे। बगलमें दो मन्दिर और भी थे जिनमें दिगम्बर सम्प्रदायके अनुकूल प्रतिबिम्ब थे। वहांसे वन्दना कर श्रीपार्श्वनाथकी टोंकपर पहुँच गये। पहुँचते ही ऐसी मन्द मन्द सुगन्धित वायु आई कि मार्गका परिश्रम एकदम चला गया। आनन्दसे पूजा की पश्चात् मनमें अनेक विचार आये परन्तु शक्तिकी दुर्बलतासे सब मनोरथ विफल हुए।

वन्दना निर्विघ्न होनेसे अनुपम आनन्द आया और मनमें जो यह भय था कि यदि वन्दना न हुई तो अधम पुरुषोंमें गणना की जावेगी वह मिट गया। फिर वहांसे चल कर ग्यारह बजे श्री मधुवनकी तेरापन्थी कोठीमें आ गये। भूखकी वेदना व्याकुल कर रही थी अतः शीघ्र ही भोजन बना कर सो गये।

[illegible] थकान बहुत थी परन्तु वन्दनाके अपूर्व [illegible] समक्ष [illegible] स्मृति भूल गये एका[illegible] आराम किया [illegible]

तो यहां तक उपदेश है कि यदि मोक्षको चाहना है तो मेरी भक्ति को भी उपेक्षा कर दो क्योंकि वह संसार बन्धनका कारण है। जो कार्य निष्काम किया जाता है वही बन्धनसे मुक्त करनेवाला है। जो भी कार्य करो उसमें कर्तृत्व बुद्धिको त्यागो.... इत्यादि चिन्तना करते करते बहुत समय बीत गया।

साथके आदमीने कहा—'शीघ्रता करो अभी मधुवन यहांसे चार मील है।' हमने कहा—'जिस प्रभुने इस भयानक अटवीमें जलकुण्ड का दर्शन कराया वही अब मधुवन पहुँचावेगा। अब हम तो आनन्द से विचालू कर जब पार्श्वप्रभुकी माला जप चुकेंगे तब चलेंगे।' आदमी बोला—'हठ मत करो अगम्य अरण्य है, इसमें भयानक हिंसक पशुओंकी बहुलता है अतः दिनमें ही यहांसे चला जाना अच्छा है।' हमने एक न सुनी और आनन्दसे कुण्डके किनारे आराम में तीन घण्टे बिता दिये। पश्चात् भोजन कर श्री णमोकार मन्त्रकी माला फेरी। दिन अस्त हो गया। तीनों आदमी वहांसे मधुवनको चल दिये और डेढ़ घंटेमें मधुवन पहुँच गये। चार मील मार्ग डेढ़ घंटेमें कैसे तय होगया यह नहीं कह सकते। यह क्षेत्रका अतिशय था, हमको तो उस दिनसे धर्ममें ऐसी श्रद्धा हो गई जो कि बड़े बड़े उपदेशों और शास्त्रोंसे भी बहु परिश्रम साध्य थी।

आत्माकी अचिन्त्य महिमा है, वह मिथ्यात्वके द्वारा प्रकट नहीं हो पाती। यदि एक मिथ्याभाव चला जावे तो आत्मामें आज ही वह स्फूर्ति आ जावे जो अनन्त संसारके बन्धनको क्षणमात्रमें ध्वस्त कर देवे परन्तु चूंकि अनादि कालसे अनात्मीय पदार्थोंमें इसको आत्मीय बुद्धि हो रही है अतः आपादमस्तक विकार नहीं हो पाता। हम [illegible] इस निजदर्शनके प्रभावसे [illegible]
[illegible] रहे हैं। अस्तु सुमधुर वन्दना और परिक्रमा [illegible]

से बताइये, यदि मैं एक सुई आपके अंगमें छेदूं तो आपको क्या दशा होगी ? जरा उसका अनुभव कीजिये पश्चात् बलि प्रथाकी पुष्टि कीजिये । चूंकि संसार भोला है अतः लोगोंने उसकी वंचनाके लिये ऐसे ऐसे अनर्थक वाक्यों द्वारा अनर्थकारी-पापपोषक शास्त्रोंकी रचना की है । लोगोंका यह प्रयत्न केवल अपना आजीविका सिद्ध करनेके लिये रहा है । देखिये उन्हीं शास्त्रोंमें यह वाक्य भी तो मिलता है 'मा हिंस्यात् सर्वभूतानि' क्या 'सर्व'के अन्दर बकरा नहीं आता ! इस संसारमें अनादिकालसे अनेक प्रकारके दुःख भोगते भोगते बड़ा दुर्लभतासे यह मनुष्य जन्म प्राप्त हो सका है । इसे यों ही हिंसादि कार्योंमें लगा देना आप जैसे महान् विद्वान्को क्या उचित है ? मैं तो आपके सामने तुच्छ बुद्धिवाला बालक हूं । आप ही के प्रसादसे मेरी न्यायशास्त्रमें पढ़नेकी रुचि और आपकी पाठनशैलीको देखकर आपमें मेरी अत्यन्त श्रद्धा हो गई परन्तु आपकी प्रवृत्ति देख मेरा हृदय कम्पित हो उठता है और हृदयमें यह भाव आता है कि मूर्ख रहना अच्छा किन्तु हिंसाको पुष्ट करनेवाले अध्यापकसे विद्यार्जन करना उत्कृष्ट नहीं । यद्यपि विद्याका अर्जन करना श्रेष्ठ है क्योंकि विद्याके द्वारा ही ज्ञानका लाभ होता है और ज्ञानसे ही सब पदार्थोंका परिचय होता है—यह सब कुछ है परन्तु आपका श्रद्धा देख आपमें मेरी श्रद्धा नहीं रही । आप इन वाक्यों का श्रवणकर मेरे प्रति कुपित होंगे पर कुपित होनेकी बात नहीं । आप मेरे विद्यागुरु हैं आपके द्वारा मेरा उपकार हुआ है । मेरा कर्तव्य है कि मैं आपकी विपरीत श्रद्धाको पलट दूं, यद्यपि मेरे पास वह तर्क व प्रमाण नहीं है जिसके द्वारा आपको यथार्थ उत्तर दे सकूं परन्तु मेरी श्रद्धा इतनी सरल और विशुद्ध है कि हिंसा द्वारा कालत्रयमें भी धर्म नहीं हो सकता । आप हिंसा विधायक आगमोंको पुस्तक भण्डारों में ही रहने दीजिये और अपने अन्तरंग हृदयसे

ही है साथ ही हमें शामको भोजन न मिल सकेगा। माँजीने बड़े प्रेमसे उत्तर दिया—जिसप्रकार तुम कहोगे उसी प्रकार भोजन बना दूंगी और हम लोग भी रात्रिका भोजन शामको ही कर लिया करेंगे अतः तुम्हें शामका भोजन मिलनेमें कठिनाई न होगी। लाचार, मैंने उनके यहां भोजन करना स्वीकार कर लिया।

एक दिनकी बात है—पण्डितजीका एक शिष्य भङ्ग पीता था, उसने मुझसे कहा कि महादेवजीके साक्षात् दर्शन करना हो तो तुम भी एक गोली खा लो। मैं उसकी बातोंमें आ गया। वह बोला कि

. . . . . .

. .

एक घण्टा बाद जब भांगका नशा आ गया तब पुस्तक लेकर पण्डितजीके पास पढ़नेके लिये गया। वहां जाकर पण्डितजीसे बोला 'महाराज! आज तो पढ़नेको चित्त नहीं चाहता, सोना मांगता हूं।' पण्डितजी महाराजने ऐसे असमंजस वचन सुन कर निश्चय कर लिया कि आज यह भी उस भंगेड़ीके चक्करमें आ गया है। उन्होंने कहा—'सो जाओ।' मैंने कहा—'अच्छा जाता हूँ सोनेकी चेष्टा करूंगा।'

जाकर खाटपर लेट गया। पण्डितजीने माँजीसे कहा—'देखो, आज इसने भंग पी ली है अतः इसे दही और खटाई खिला दो।' मैंने उस नशाकी दशामें भी विचार किया कि मैं तो रात्रिके समय पानीके सिवाय कुछ लेता नहीं पर आज प्रतिज्ञा भंग होती दिखती है। उक्त विचार मनमें आया था कि पण्डितजी महाराज दही और खटाई लेकर पहुँच गये तथा कहने लगे—'लो, यह खटाई व दही खाओ, तुम्हारा नशा उतर जावेगा।' मैंने कहा—'महाराज! मैं तो रात्रिके समय पानीके सिवाय कुछ भी नहीं

लेता, यह दही-खटाई कैसे ले लूं ?' पण्डितजीने डांटते हुए कहा—'भंग पीनेको जैनी न थे।' मैंने कहा—'महाराज मैं शास्त्रार्थ नहीं करना चाहता, कृपा कर मुझे शयन करने दीजिये।' पण्डितजी विवश होकर चले गये, मैं पछताता हुआ पड़ा रहा—बड़ी गलती की जो भंग पीकर पण्डितजीकी अविनय की। किसी तरह रात्रि बीत गई प्रातःकाल सोकर उठा। पण्डितजीके चरणोंमें पड़ गया और बड़े दुःखके साथ कहा कि महाराज! मुझसे बड़ी गलती हुई।

ही है साथ ही हमें शामको भोजन न मिल सकेगा। माजीने बड़े प्रेमसे उत्तर दिया—जिसप्रकार तुम कहोगे उसी प्रकार भोजन बना दूंगी और हम लोग भी रात्रिका भोजन शामको ही कर लिया करेंगे अतः तुम्हें शामको भोजन मिलनेमें कठिनाई न होगी। लाचार, मैंने उनके यहां भोजन करना स्वीकार कर लिया।

एक दिनकी बात है—पण्डितजीका एक शिष्य भङ्ग पीता था, उसने मुझसे कहा कि महादेवजीके साक्षात् दर्शन करना हो तो तुम भी एक गोली खा लो। मैं उसकी बातोंमें आ गया। वह बोला कि भांगका नशा आनेके बाद ही महादेवजीका साक्षात् दर्शन होने लगेगा। मैंने विचार किया कि मुझे भी श्रीजिनेन्द्रदेवके साक्षात् दर्शन होने लगेंगे ऐसा विचार कर मैंने भांगकी एक गोली खा ली।

एक घण्टा बाद जब भांगका नशा आ गया तब पुस्तक लेकर पण्डितजीके पास पढ़नेके लिये गया। वहां जाकर पण्डितजीसे बोला 'महाराज! आज तो पढ़नेको चित्त नहीं चाहता, सोना मांगता हूं।' पण्डितजी महाराजने ऐसे असमञ्जस वचन सुन कर निश्चय कर लिया कि आज यह भी इस भंगड़ीके चक्करमें आ गया है। उन्होंने कहा—'सो जाओ।' मैंने कहा—'अच्छा जाता हूँ, सोनेकी चेष्टा करूंगा।'

जाकर खाटपर लेट गया। पण्डितजीने माजीसे कहा—'देखो, आज इसने भंग पी ली है अतः इसे दही और खटाई खिला दो।' मैंने उस नशाकी दशामें भी विचार किया कि मैं तो रात्रिके समय पानीके सिवाय कुछ लेता नहीं पर आज न नशा भंग होती दिखती है। उक्त विचार मनमें आया था कि पण्डितजी महाराज दही और खटाई लेकर पहुंच गये तथा कहने लगे—'लो, यह खटाई व दही खा लो, तुम्हारा नशा उतर जावेगा।' मैंने कहा—'महाराज! मैं तो रात्रिके समय पानीके सिवाय कुछ भी नहीं

लेता, यह दही-खटाई कैसे ले लूं ?' पण्डितजीने डांटते हुए कहा—'भंग पीनेको जैनी न थे।' मैंने कहा—'महाराज मैं शास्त्रार्थ नहीं करना चाहता, कृपा कर मुझे शयन करने दीजिये।' पण्डितजी विवश होकर चल गये, मैं पछतावा हुआ पड़ा रहा—बड़ी गलती की जो भंग पीकर पण्डितजीकी अविनय की। किसी तरह रात्रि बीत गई प्रातःकाल सोकर उठा। पण्डितजीके चरणोंमें पड़ गया और बड़े दुःखके साथ कहा कि महाराज! मुझसे बड़ी गलती हुई।

२६
जैनत्वका अपमान

वहांपर कुछ दिन रहकर सम्वत् १९६? मे बनारस चला गया, यहांपर धर्मशालामें ठहरा। विना कार्यके कुछ उपयोग स्थिर नहीं रख सका—यों ही भ्रमण करता रहा। कभी गङ्गाके किनारे चला जाता था और कभी मन्दाकिनी (मैदागिनी)। परन्तु फिर भी चित्तको शान्ति नहीं मिलती थी।

उस समय क्वीन्स कालेजमे न्यायके मुख्य अध्यापक जीवनाथ मिश्र थे। बहुत ही प्रतिभाशाली विद्वान् थे। आपकी शिष्य मण्डलीमें अनेक शिष्य प्रखर बुद्धिके धारक थे। एक दिन मैं उनके निवास स्थानपर गया और प्रणाम कर महाराजसे निवेदन किया कि महाराज! मुझे न्यायशास्त्र पढ़ना है यदि आपकी आज्ञा हो तो आपके बतावे हुए समयसे आपके पास आया करूं। मैंने एक रुपया भी उनके चरणोंमें भेंट किया।

पण्डितजीने पूछा-'कौन ब्राह्मण हो?' सुनते ही अन्तरङ्गमे चोट पहुँची। मनमें आया—'हे प्रभो! यह कहांकी आपत्ति आगई?' अवाक् रह गया कुछ उत्तर नहीं सूझा। अन्तमे निर्भीक होकर कहा—'महाराज! मैं ब्राह्मण नहीं हूं और न क्षत्रिय हूं वैश्य हू यद्यपि मेरा कौटिम्ब मत श्रीरामका उपासक था-सृष्टिकर्ता परमात्मा मे मेरे वंशके लोगोंकी श्रद्धा थी और आजतक चली भी आ रही

है परन्तु मेरे पिताकी श्रद्धा जैनधर्ममें दृढ़ हो गई तथा मेरा विश्वास भी जैनधर्ममें दृढ़ हो गया। अब आपकी जो इच्छा हो सो कीजिये।'

श्रीमान् नैयायिकजी एकदम आवेगमें आगये और क्रमश: कहते हुए बोले—'चले जाओ, हम नास्तिक लोगोंको नहीं पढ़ाते। तुम लोग ईश्वरको नहीं मानते हो और न वेदमें ही तुम लोगोंकी श्रद्धा है। तुम्हारे साथ सम्भाषण करना भी प्रायश्चित्तका कारण है, जाओ यहां से।'

मैंने कहा—'महाराज ! इतना कुपित होनेकी बात नहीं। आखिर हम भी तो मनुष्य हैं, इतना आवेग क्यों ? आप तो विद्वान् हैं साथ ही प्रधान श्रेणीके माननीय विद्वानोंमें मुख्यतम हैं। आप ही इसका निर्णय कीजिये—जब कि सृष्टिकर्ता ईश्वर है तब उसने ही तो हमको बनाया है तथा हमारी जो श्रद्धा है उसका भी निमित्त कारण वही है। कार्यान्तर्गत हमारी श्रद्धा भी तो एक कार्य है। जब कार्यमात्रके प्रति ईश्वर निमित्त कारण है तब आप हमको क्यों घूरते हो ? ईश्वरके प्रति कुपित होना चाहिये। आखिर उसने ही तो अपने विरुद्ध पुरुषोंकी सृष्टि की है या फिर यो कहिये कि हम जैनों को छोड़कर अन्यका कर्ता है और यथार्थ में यदि ऐसा है तो कार्यत्व हेतु व्यभिचारी हुआ। यदि मेरा कहना सत्य है तो आपका हम पर कुपित होना न्यायसंगत नहीं।'

तो नास्तिक जी महाराज बोले—'शास्त्रार्थ करने आये हो ?'
मैंने कहा—'महाराज ... शास्त्रार्थ करते ..., [illegible]
[illegible]

असंगत हैं। वही मनुष्यता आदरणीय होती है जिसमें शान्ति-मार्गकी अवहेलना न हो। आप तर्कशास्त्रमें अद्वितीय विद्वान् हैं, फिर मेरे साथ इतना निष्ठुर व्यवहार क्यों करते हैं?'

नैयायिकजी तेवरी चढ़ाते हुए बोले—'तुम बड़े धीठ हो, जो कुछ भी भाषण करते हो उसमें ईश्वरके अस्तित्वका लोप कर एक नास्तिक मतकी ही पुष्टि करते हो। मैंने ठीक ही तो कहा है कि तुम नास्तिक हो—वेद-निन्दक हो, तुमको विद्या पढ़ाना सर्पको दुग्ध और मिश्री खिलानेके सदृश होगा। गुड़ और दुग्ध पिलानेसे क्या सर्प निर्विष हो सकता है? तुम जैसे हठग्राही मनुष्योंको न्यायशास्त्रका पण्डित बनाना नास्तिकमतकी पुष्टि करना है। जानते हो—ईश्वरकी महिमा अचिन्त्य है उसीके प्रभावसे यह सब व्यवहार चल रहा है। यदि यह न होता तो आज संसारमें नास्तिक मतकी ही प्रभुता हो जाती।'

नैयायिकजी यह कह कर ही सन्तुष्ट नहीं हुए, डेस्क पर हाथ पटकते हुए जोरसे बोले—'हमारे स्थानसे निकल जाओ।'

मैंने कहा—'महाराज! आखिर, जब आपको मुझसे संभाषण करनेकी इच्छा नहीं तब अगत्या जाना ही श्रेयस्कर होगा। किन्तु खेद होता है कि आप अद्वितीय तार्किक विद्वान् हो कर भी मेरे साथ ऐसा व्यवहार करते हैं। मेरी समझमें तो यही आता है कि आप स्वयं ईश्वरको नहीं मानते और हमसे कहते हो कि तुम नास्तिक हो। जब [illegible] ईश्वरकी इच्छा [illegible] बिना कोई कार्य नहीं होता तब हम क्या ईश्वरकी इच्छाके बिना ही हो गये?

[illegible] तब आप [illegible] कि आपने हमसे [illegible] का स्वीकार नहीं [illegible] तुम [illegible] निन्दक हो

अतः नास्तिक हो परन्तु अन्तर दृष्टिसे परामर्श करने पर मालूम हो सकता है कि हम वेदके निन्दक हैं या आप? वेदमें लिखा है—'मा हिंस्यात्सर्वभूतानि' अर्थात् यावन्तः प्राणिनः सन्ति ते न हिंस्याः—जितने प्राणी हैं वे अहिंस्य हैं। अब आप ही बतलाइये कि जो मत्स्य मांसादिका भक्षण करें, देवताको बलिप्रदान करें और अपने पितृतृप्तिके लिये मांस पिण्डका दान करें वे वेदको न माननेवाले हैं या हम लोग जो कि जलादि जीवोंकी भी रक्षा करनेकी चेष्टा करते हैं? ईश्वरकी सृष्टिमें सभी जीव हैं तब आपको क्या अधिकार है कि सृष्टिकर्ताकी रची हुई सृष्टिका घात करें और ऐसे ऐसे निम्नाङ्कित वाक्य वेदमें प्रक्षिप्त कर जगत्को उन्मार्गमें प्रवृत्त करें—

> 'यज्ञार्थं पशवः सृष्टा यज्ञार्थं पशुघातनम्।
> अतस्त्वां घातयिष्यामि तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः॥'

और इस 'मा हिंस्यात् सर्वभूतानि' वाक्यको अपनी इन्द्रिय-तृप्तिके लिये अपवाद वाक्य कहें? खेदके साथ कहना पड़ता है कि आप स्वयं तो वेदको मानते नहीं और हमपर लाञ्छन देते हैं कि जैन लोग वेदके निन्दक हैं।'

पण्डितजी फिर बोले—'आज कैसे नादानके साथ संभाषण करनेका अवसर आया? क्यों जी तुमसे यह दिया न कि यहांसे चले जाओ, तुम महान् [illegible] हो, आज तक तुममें [illegible] करने [illegible] न आई [illegible] मनुष्योंके साथ तुम्हारा [illegible]

[illegible]

करते हो निकाल दिये जाओगे। महाराज ! मैं तो आपके पास इस अभिप्रायसे आया था कि दूसरे ही दिन उषःकालसे न्यायशास्त्रका अध्ययन करूंगा पर फल यह हुआ कि कान पकड़ने तककी नौबत आ गई। अपराध क्षमा हो, आप ही बताइये कि असभ्य किसे कहते हैं ? और महाराज ! क्या यह व्याप्ति है कि जो जो ग्रामवासी हों वे वे असभ्य ही हों और जो नगरनिवासी हों वे वे सभ्य ही हों ऐसा कुछ नियम तो नहीं जान पड़ता अन्यथा इस बनारस नगरमें जो कि भारतवर्षमें संस्कृत भाषाके विद्वानोंका प्रमुख केन्द्र है गुण्डाग्रज नहीं होना चाहिये था और यहांपर जो बाहरसे ग्रामनिवासी बड़े बड़े धुरन्धर विद्वान् काशीवास करनेके लिये आते हैं उन्हें सभ्य कोटिमें नहीं आना चाहिये था। साथ ही महाराज ! आप भी तो ग्रामनिवासी ही होंगे। तथा कृपा कर यह तो समझा दीजिये कि सभ्यका क्या लक्षण है ? केवल विद्याका पाण्डित्य ही तो सभ्यताका नियामक नहीं है साथमें सदाचारादि गुण भी तो होना चाहिये। मैं तो बारम्बार नत मस्तक होकर आपके साथ व्यवहार कर रहा हूँ और आप मेरे लिये उसी नास्तिक शब्दका प्रयोग कर रहे हैं ! महाराज ! संसारमें उसीका मनुष्य जन्म प्रशंसनीय है जो राग द्वेषसे परे हो। जिसके राग द्वेषकी कलुषता है वह चाहे बृहस्पतितुल्य भी विद्वान् क्यों न हो ईश्वराज्ञाके प्रतिकूल होनेसे अधोमार्गको ही जानेवाला है। आपकी मान्यताके अनुसार ईश्वर चाहे जो हो परन्तु उसकी यह आज्ञा कदापि नहीं हो सकती कि किसी प्राणीके चित्तको खेद पहुँचाओ। अन्यकी कथा छोड़ो नीतिकारका भी कहना है कि—

'अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥'

परन्तु आपने मेरे साथ पशु सदृश व्यवहार किया कि मेरी आत्मा जानती है। मेरा तो निजका विश्वास है कि मनुष्य वहाँ

है जो अपने हृदयको पाप पङ्कसे अलिप्त रक्खे आत्महितमें प्रवृत्ति करे। केवल शास्त्रका अध्ययन संसार बन्धनसे मुक्त करनेका मार्ग नहीं। तोता राम राम उच्चारण करता है परन्तु रामके मर्मसे अनभिज्ञ ही रहता है। इसी तरह बहुत शास्त्रोंका बोध होनेपर भी जिसने अपने हृदयको निर्मल नहीं बनाया उससे जगत्‌का क्या उपकार होगा? उपकार तो दूर रहा अनुपकार ही होगा। किसी नीतिकारने ठीक ही कहा है—

'विद्या विवादाय धनं मदाय
शक्तिः परेषां परिपीडनाय।
खलस्य, साधोर्विपरीतमेतद्
ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय॥'

यद्यपि मैं आपके समक्ष बोलनेमें असमर्थ हूँ क्योंकि आप विद्वान् हैं, राजमान्य हैं, ब्राह्मन हैं तथा इस देशके हैं जहां मान मानमें विद्वान् हैं फिर भी प्रार्थना करता हूँ कि आप शयन समय विचार कीजियेगा कि मनुष्यके साथ ऐसा अनुचित व्यवहार करना क्या सभ्यताके अनुकूल था। समयकी बलवत्ता है कि जिस धर्मके प्रवर्तक वीतराग सर्वज्ञ थे और जिस नगरीमें श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकरका जन्म हुआ था आज उसी नगरीमें जैनधर्मके माननेवालोंका इतना तिरस्कार।'

उनके साथ जहां तक बातचीत हुई लिखना बेकार है। अन्तमें उन्होंने यही उत्तर दिया कि यहांसे चले जाओ इसीमें तुम्हारी भलाई है। मैं चुपचाप वहांसे चल दिया और मार्गमें भाग्यकी निन्दा तथा पञ्चम कालके दुष्प्रभावकी महिमाका स्मरण करता हुआ श्री मन्दिरमें आकर कोठरीमें रुदन करने लगा पर सुनने वाला कौन था?

२७

गुरुदेवकी खोजमें

सायंकालका समय था, कुछ जलपान किया अनन्तर श्री पार्श्वनाथ स्वामीके मन्दिरमें जाकर सायंकालकी वन्दनासे निवृत्त हो कोठरीमें आकर सो गया। सो तो गया पर निद्राका अश भी नहीं। सामने वही नैयायिकजी महाराजके स्थानका दृश्य अन्धकार होते हुए भी दृश्य हो रहा था। नाना विकल्पोंकी लहरी मनमें आती थी और विलय जाती थी।

[illegible]

[illegible] होता था। इस तरह छह मास गर्भसे प्राक् और नौ मास जब तक आप गर्भमें रहते थे इसी प्रकार रत्नधारा बरसती थी। आज उसी नगरीमें आपके सिद्धान्त पथपर चलनेवालोंपर यह वाग्वज्रवर्षा हो रही है। हे प्रभो! क्या करें? कहां जावें? कोई उपाय नहीं सूझता। क्या आपकी जन्म नगरीसे मैं विफल मनोरथ ही देशको चला जाऊं? इस तरहके विचार करते करते कुछ निद्रा आगई। स्वप्नमें क्या देखता हूँ कि—

एक सुन्दर मनुष्य सामने खड़ा है, कहता है—'क्यों भाई! उदास क्यों हो?' मैंने कहा—'आपको क्या प्रयोजन? न आपसे

इतने में निद्रा भंग हो गई, देखा तो कहीं कुछ नहीं। प्रातःकाल के ५ बजे होंगे, हाथ पैर धोकर श्रीपार्श्वप्रभुकी भक्तिके लिये बैठ गया और इसीमें सूर्योदय होगया। पक्षीगण कलरव करने लगे, मनुष्यगण जयध्वनि करते हुए मन्दिरमें आने लगे। मैं भी स्नानादि क्रियासे निवृत्त हो श्रीपार्श्वनाथ स्वामीके पूजनादि कार्य कर पश्चात्‌ग्रामके मन्दिरमें वन्दनाके निमित्त चला गया। वहांसे बाजार भ्रमण करता हुआ चला आया। भोजनादिसे निवृत्त होकर गङ्गाजीके घाट पर चला गया। सहस्रों नर-नारी स्नान कर रहे थे, जय गङ्गे! जय विश्वनाथ के शब्दसे घाट गूंज रहा था। वहां से चलकर विश्वनाथजीके मन्दिरका दृश्य देखनेके लिये चला गया।

वहां पर एक महानुभाव मिल गये 'बोले-कहां आये हो?' मैंने कहा—'विश्वनाथजीका मन्दिर देखने आये हैं।' 'क्या देखा?' उन्होंने पूछा। मैंने उत्तर दिया— जो आपने देखा सो हमने देखा, देखना काम तो आंखका है सबकी आंख देखनेका ही कार्य करती है। हां, आप महादेवके उपासक हैं—आपने देखनेके साथ मनमें यह विचार किया होगा कि हे प्रभो! मुझे सांसारिक यातनाओंसे मुक्त करो। मैं जैनी हूं, अतः यह भावना मेरे हृदयमें नहीं आई प्रत्युत यह स्मरण आया कि महादेव तो भगवान् आदिदेव-नाभिनन्दन ऋषभदेव हैं जिन्होंने स्वयं आत्मकल्याण किया और जगत्‌के प्राणियोंको कल्याणका मार्ग दर्शाया। इस मन्दिरमें जो मूर्ति है, उसकी आकृतिसे तो आत्मशुद्धिका कुछ भी भाव नहीं होता। उन महाशयने कहा—'विशेष बात मत करो अन्यथा कोई पण्डा आगया तो सर्वनाश हो जावेगा। यहांसे शीघ्र ही चले जाओ।' मैंने कहा—'अच्छा जाता हूं।'

जाते जाते मार्गमें एक श्वेताम्बर विद्यालय मिल गया, मैं उसमें चला गया। वहां देखा कि अनेक छात्र संस्कृत अध्ययन कर रहे

न्यायशास्त्रका अध्ययन किया जावे तो अनायास ही महती व्युत्पत्ति हो जावे।

एक घण्टाके बाद श्री शास्त्रीजी के साथ पीछे पीछे चलता हुआ उनके घर पहुंच गया। उन्होंने बड़े स्नेहके साथ बातचीत की और कहा कि तुम हमारे यहां आओ हम तुम्हें पढ़ावेंगे। उनके प्रेमसे ओतप्रोत वचन श्रवणकर मेरा समस्त क्लेश एकसाथ चला गया।

वहांसे चलकर मंदाकिनी आया, वहांसे शास्त्रीजीका मकान दो मील पड़ता था प्रतिदिन पैदल जानेमें कष्ट होता था अतः वहां से डेरा उठा कर श्री भदैनीके मन्दिर में जो अस्सीघाटके ऊपर है चला आया। वहां पर श्री बद्रीदास पुजारी रहते थे जो बहुत ही उच्च प्रकृति के जीव थे उनके सहवास में रहने लगा और एक पत्र श्री बाबाजी को डाल दिया उस समय आप आगरा में रहते थे। बनारसके सब समाचार उसमें लिख दिये साथ ही यह भी लिख दिया कि महाराज! आपके शुभागमनसे सब ही कार्य सम्पन्न होगा अतः आप पत्र देखते ही चले आइये।

महाराज पत्र पाते ही बनारस आ गये।

पारावार न रहा। रात्रि दिन इसी विषयकी चर्चा और इसी विषयका आन्दोलन प्रायः समस्त दिगम्बर जैन पत्रोंमें कर दिया कि काशीमें एक जैन विद्यालय की महती आवश्यकता है।

कितने ही स्थानोंसे इस आशयके भी पत्र आये कि आप लोगोंने यह क्या आन्दोलन मचा रक्खा है। काशी जैसे स्थानमें दिगम्बर जैन विद्यालयका होना अत्यन्त कठिन है। वहांपर कोई सहायक नहीं, जैनधर्मके प्रेमी विद्वान् नहीं यहां क्या आप लोग हमारी प्रतिष्ठा भंग कराओगे। परन्तु हम लोग अपने प्रयत्नसे विचलित नहीं हुए।

श्रीमान् स्वर्गीय बाबु देवकुमारजी रईस आराको भी एक पत्र इस आशयका दिया कि आपकी अनुकम्पासे यह कार्य अनायास हो सकता है। आप चाहें तो स्वयं एक विद्यालय खोल सकते हैं। भदैनीघाट पर गङ्गाजीके किनारे आपके जो विशाल मन्दिर हैं उन्हें देखकर आपके पूर्वजोंके विशाल द्रव्य तथा भावोंकी विशुद्धताका स्मरण होता है उसमें ५० छात्र सानन्द अध्ययन कर सकते हैं ऊपर रसोईघर भी है। आशा है आपका विशाल हृदय हम की प्रार्थना पर अवश्य लक्ष्य होगा कि यह कार्य अवश्य करणीय है। आठ दिनके बाद ही उत्तर आया कि चिन्ता मत करो श्री पार्श्वप्रभुके चरण प्रसादसे सब होगा।

एक पत्र श्रीमान् स्वर्गीय सेठ माणिकचन्द्रजी जे० पी० बम्बई को भी लिखा कि जैनधर्मका मर्म जाननेके लिये संस्कृत विद्याकी महती आवश्यकता है। इस विद्याके लिये बनारस जैसा स्थान अन्यत्र उपयुक्त नहीं। इस समय आप ही एक ऐसे महापुरुष हैं जो स्याद्वाद धर्मका उद्योत करनेमें दत्तचित्त हैं। आप तीर्थ क्षेत्रों तथा पाठशालाओंकी व्यवस्था कर दिगम्बरोंका उपकार कर

अब यही विचार हुआ कि बनारस चलें और इसके खुलनेका मुहूर्त निकलवावें। दो दिन बाद बनारस पहुंच गये और पञ्चाङ्गमें मुहूर्त देखने लगे। अन्तमें यही निश्चय किया कि ज्येष्ठ सुदी पञ्चमीको स्याद्वाद विद्यालयका उद्घाटन किया जावे। कुङ्कुम-पत्रिका बनाई और लाल रंगमें छपवाकर सर्वत्र वितरण कर दी।

बनारसके गण्यमान्य महाशयोंका पूर्ण सहयोग था, श्रीमान् रायसाहब नानकचन्द्रजीकी पूर्ण सहानुभूति थी। ज्यों ज्यों मुहूर्त निकट आया अनुकूल कारणकूट मिलते गये। महरौनीसे श्रीयुत वंशीधरजी, श्रीयुत गोविन्दरायजी तथा एक और छात्रके आनेकी सूचना आ गई। बम्बईसे सेठजी साहबके आनेका तार आ गया, आरासे बाबू देवकुमारजीका भी पत्र आ गया, देहलीसे श्रीमान् लाला मोतीलालजीका तार आ गया कि हम आते हैं तथा श्रीमान् एडवोकेट अजितप्रसादजीको भी सूचना आ गई कि हम आते हैं। जेठ सुदि ५ के दिन ये सब नेतागण आ गये और मैदागिनीमें ठहर गये।

(२) स्याद्वाद विद्यालयका उद्घाटन

पञ्चमीको प्रातःकाल विद्यालयका उद्घाटन होना है। 'पण्डितों का क्या प्रबन्ध है?' उपस्थित लोगोंने पूछा। मैंने कहा—'मैं श्रीशास्त्री अम्बादासजीसे न्यायशास्त्रका अध्ययन करता हूं, १५) मासिक स्कालर्शिप मुझे बम्बईसे श्रीसेठजी साहबके पाससे मिलती है वही उनके चरणोंमें अर्पित कर देता हूँ। अब २५) मासिक उन्हें देना चाहिये वे ३ घण्टाको आ जावेंगे।' सबने स्वीकार किया। 'एक अध्यापक व्याकरणको भी चाहिये?' मैंने कहा— 'शास्त्रीजीसे जाकर कहता हूँ।' 'अच्छा शीघ्रता करो..' सबने कहा। मैं शास्त्रीजीके पास गया २०) मासिक पर एक व्याकरणाचार्य और इतनेपर ही एक साहित्याध्यापक भी मिल गया। सुपरिन्टेन्डेन्ट पदके लिये वर्णी दीपचन्द्रजी नियत हुए। एक रसोइया, एक ढीमर, एक चपरासी इस तरह तीन कर्मचारी, तीन पण्डित, एक सुपरिन्टेन्डेन्ट इस प्रकार व्यवस्था हुई। उस समय मुझे मिलाकर केवल चार छात्र थे।

जेठ सुदि ५ को बड़े समारोहके साथ विद्यालयका उद्घाटन हुआ। २५) मासिक श्रीमान् सेठ माणिकचन्द्रजी बम्बईने और इतना ही बाबू देवकुमारजी आराने देना स्वीकृत किया। इसी प्रकार बहुतसा स्थायी द्रव्य तथा मासिक सहायता बनारसवाले

अपना पक्ष छोड़ उसी पक्षका समर्थन किया और जहां तक मुझसे बनेगा इस कार्यमें पूर्ण प्रयत्न करूगा।'

आपके बाद बाबू शीतलप्रसादजीने विशद व्याख्यान द्वारा सेठजीके अभिप्रायकी पुष्टि की। यहां आपको बाबू लिखनेका यह तात्पर्य है कि उस समय आप बाबू ही थे। जैनधर्मके प्रसारमें आपको अद्वितीय लगन थी। आपने प्रतिज्ञा की थी कि मैं आजीवन हर तरहसे इस विद्यालयकी सहायता करूंगा और वर्षमें दो चार बार यहां आकर निरीक्षण द्वारा इसकी उन्नतिमें पूर्ण सहयोग दूंगा। यह लिखते हुए प्रसन्नता होती है कि आपने अपनी उक्त प्रतिज्ञाका आजीवन निर्वाह किया। आप जहां जाते थे विद्यालयको एक मुश्त तथा मासिक चन्दा भिजवाते थे। जहांपर चतुर्मास करते थे वहांसे हजारों रुपये विद्यालयको भिजवाते थे। कुछ दिन बाद आप ब्रह्मचारी हो गये परन्तु विद्यालयको न भूले—उसकी सहायता निरन्तर करते रहे। वर्षोंतक आप विद्यालयके अधिष्ठाता रहे। समयकी बलिहारी है कि ऐसा उदार महानुभाव कुछ समय बाद विधवा विवाहका पोषक हो गया। अस्तु, यहां उसकी कथा करना मैं उचित नहीं समझता। यद्यपि इस एक बातके पीछे जैन [illegible]
[illegible]
[illegible]
प्रचार किया।

इसी उद्घाटनके समय श्रीमोतीलालजी देहलीवालोंने भी विद्यालयके प्रारम्भमें सहायता प्रदान करनेका आश्वासन दिया। इसतरह विद्यालयका उद्घाटन सानन्द सम्पन्न हो गया। पठनक्रम क्वीन्स कालेज बनारसका रहा। विद्यालयको सहायता भी अच्छी मिलने लगी, भारतवर्षके प्रत्येक प्रान्तसे छात्र आने लगे।

३०

अधिष्ठाता बाबा भागीरथजी

कुछ दिन बाद पं० दीपचन्द्रजी वर्णी जो कि यहां के सुपरिन्टेन्डेन्ट थे कारण पाकर मुझसे रुष्ट हो गये। यद्यपि मैं उनकी आज्ञामें चलता था परन्तु मूर्खतावश कभी कभी गलती कर बैठता था। फल उसका यह हुआ कि आप विद्यालय को छोड़ कर इलाहाबाद चले गये। उनके बाद वैसा श्रम करनेवाला सुपरिन्टेन्डेन्ट वहां पर आज तक नहीं आया।

उनके अनन्तर श्रीमान् बाबा भागीरथजी अधिष्ठाता हो गये। आप विलक्षण त्यागी थे, आपका आजन्म नमक और मीठाका त्याग था। आप निरन्तर स्वाध्यायमें रत रहते थे, कोई हो आप सत्य बात कहनेमें कभी नहीं चूकते थे। आपने मेरठ प्रान्तसे विद्यालयके लिये हजारों रुपये भेजे। मैं तो आपका अनन्य भक्त प्रारम्भसे ही था।

आपका शासन इतना कठोर था कि अपराधके अनुकूल दण्ड देनेमें आप स्नेहको तिलाञ्जलि दे देते थे। एकबारकी कथा है कि—

सिरसी जिला ललितपुरके एक छात्रने होलीके दिन एक छात्रके गालपर गुलाल लगा दी। लगाते हुए बाबाजीने आखसे

बनारस रहते हैं। गङ्गाके तट पर आपका महल है, आपके राम नगरमें आश्विन मास भर रामलीला होती है और उसमें १००००) रुपया खर्च होता है अयोध्या आदिसे बड़ी बड़ी साधुमण्डली आती है। आश्विन सुदि ९ को मेरे मन मे आया कि रामलीला देखनेके लिये रामनगर जाऊँ। सैकड़ों नौकाएं गङ्गामें रामनगरको जा रही थीं, मैंने भी जानेका विचार कर लिया। ५ या ६ छात्रोंको भी साथमें ले लिया। उचित तो यह था कि बाबाजी महाराजसे आज्ञा लेकर जाता परन्तु महाराज सामायिकके लिये बैठ गये, बोल नहीं सकते थे अतः मैंने सामने खड़े होकर प्रणाम किया और निवेदन किया कि महाराज! आज रामलीला देखनेके लिये रामनगर जाते हैं, आप सामायिकमें बैठ चुके अतः आज्ञा न ले सके।

वहाँसे शनैः शनैः गङ्गा घाट पर पहुँचे और नौकामें बैठ गये। नौका गंगाजीमें मल्लाह द्वारा चलने लगी। नौका घाटसे कुछ ही दूर पहुँची थी कि इतनेमें वायुका वेग आया और नौका डगमगाने लगी। बाबाजी की दृष्टि नौका पर गई और उनके निर्मल मनमें एकदम यह विकल्प उठा कि अब नौका डूबी। बड़ा अनर्थ हुआ, इस नादान को क्या सूझी? जो आज इसने अपना सर्वनाश किया और छात्रोंका भी। हे भगवन्! आप ही इस विघ्नसे इन छात्रोंकी रक्षा कीजिये। माला भूल गये, सामायिकका यही एक विषय रह गया कि ये छात्र निर्विघ्न यहाँ लौट आवें जिससे पाठशाला कलङ्कित न हो...इत्यादि विकल्पोंको पूरा करते करते सामायिकका काल पूर्ण किया। पश्चात् सुपरिन्टेन्डेन्टसे कहा कि तुमने क्यों जाने दिया? उन्होंने कहा कि महाराज! हमे पता नहीं कब चले गये? इस प्रकार बाबाजीकी जितने कर्मचारी वहाँ थे सबसे झड़प होती रही। इतनेमें रात्रिके १० बज गये, हम लोग

तो कहा कि मैं क्या जानूं ? मैं मनःपर्ययज्ञानी तो नहीं कि आपके हृदय की बात बता सकूं। हां, मेरे मनमें जो विकल्प हुआ है उसे बता सकता हूँ क्योंकि वह मेरे मानस प्रत्यक्षका विषय है और आपके मनमें जो है वह आपकी बाह्य चेष्टासे अनुमित हो रहा है यदि आज्ञा हो तो कह दूं।' 'अच्छा कहो', बाबाजीने शान्त होकर कहा।

मैं कहने लगा—'मेरे मनमें तो यह विकल्प आया कि आज तुमने महान् अपराध किया है जो बाबाजीकी आज्ञाके बिना रामलीला देखनेके लिये रामनगर गये। यदि आज नौका डूब जाती तो पाठशालाध्यक्षोंकी कितनी निन्दा होती ? अतः इस अपराधमें बाबाजी तुम्हें पाठशालासे निकाल देवेंगे। तुम धोबीके कुत्ते जैसे हुए 'न घरके न घाटके।' फिर भी विचार किया कि एकबार बाबाजीसे अपराध क्षमाकी प्रार्थना करो, संभव है, दयालु हैं अत. अपराधका दण्ड देकर क्षमा कर देवें..यह विकल्प तो मेरे मनमें आया और आपकी आकृति देखनेसे यह निश्चय होता है कि इस अपराधका मूल कारण यही छात्र है इसे इस पाठशालासे पृथक् कर दिया जावे। शेष छात्रोंका उतना अपराध नहीं, वे तो इसीके बहकाये चले गये अतः उन छात्रोंका केवल एक मासका घी जुर्माना किया जावे। परन्तु यह बहुत बातें बनावेगा अतः सुपरिन्टेन्डेन्टसाहब अभी दवात-कलम-कागज लाओ और प० जैनेन्द्रकिशोर जी मंत्री आराको एक पत्र लिखो कि आज गणेशप्रसाद छात्रने महती गलती की अर्थात् गङ्गामें रामनगर गया, बीचमें पहुंचते ही नौका डगमगाने लगी, दैवयोगसे बचकर आया अतः ऐसे उद्दण्ड छात्रको रखना पाठशालाको कलङ्कित करना है यह सब सोचकर आज रात्रिके ११ बजे इसे पृथक् करते हैं। आपके मनमें यह है..ऐसा मुझे भान होता है।

बाबाजीने कुछ विस्मयके साथ कहा कि 'अकस्मात् मन्द पड़ने दो।'

उन्होंने सुपरिन्टेन्डेन्ट साहबको अतिशयता और शीघ्र ही जैसा मैंने कहा था वैसा ही आनुपूर्वी पत्र लिख कर उसी समय लिफाफेमें बन्द किया और उसके ऊपर सर्विस लगाकर चपरासीके हाथमें देते हुए कहा कि तुम इसे इसी समय डाक आफिसमें डाल आओ। मैंने बहुत ही विनयके साथ प्रार्थना की कि महाराज! अबकी बार माफी दी जावे आइन्दा जन्ममें अब ऐसा अपराध न होगा। यहांसे पृथक् होने पर मेरा पढ़ना लिखना सब चला जावेगा। अनजान मनुष्यसे अपराध होता है और महाराज! आपसे ज्ञानी महात्मा उसे क्षमा करते हैं। आप महात्मा हैं हम क्षुद्र छात्र हैं। यदि क्षुद्र प्रकृतिके न होते तो आपकी शरणमें न आते। हमने कोई अनाचार तो किया नहीं, रासलीला ही तो देखने गये थे। यदि अपराध न करते तो यह नौबत न आती।

महाराजने यही उत्तर दिया कि अपील कर लेना। मैंने कहा—'न मुझे अपील करना है और न सपील। जो कुछ कहना था आपसे निवेदन कर दिया। यदि आपके दयाका संचार हो तो हमारा काम बन जावे अन्यथा जो श्री वीरप्रभुने देखा होगा वही...'

बाबाजीने बीचमें ही रोकते हुए कहा—'चुप रहो, न्यायमें अनुचित दया नहीं होती। यदि अनुचित दयाका प्रयोग किया जावे तो संसार कुमार्गरत हो जावे, समाजका बन्धन टूट जावे। प्रबन्धकर्ताओंको बड़े बड़े अवसर आते हैं यदि वे दयावश न्याय-मार्गका उल्लंघन करने लग जावें तो कोई भी कार्य व्यवस्थित नहीं चल सके।'

मैंने कहा—'महाराज ! अब तो एक बार क्षमा कर दीजिये, क्या अपवाद शास्त्र नहीं होता ?'

बाबाजी एकदम गरम हो गये—जोरसे बोले—'तुम बड़े नालायक हो, यदि अब बहुत बकवक किया तो बेत लगाके निकलवा दूंगा। तुम नहीं जानते मेरा नाम भागीरथ है और मैं व्रजका रहनेवाला हूँ। अब तुम्हारी इसीमें भलाई है कि यहांसे चले जाओ।'

मैंने कुछ तने हुए स्वरमें कहा—'महाराज ! जितनी न्यायकी व्यवस्था है वह मेरे ही वास्ते थी ? अच्छा, जो आपकी इच्छा। मैं जाता हूँ किन्तु एक बात कहता हूं कि आप पीछे पछतावेंगे।'

बाबाजीने पुनः बीचमें ही बात काट कर कहा 'चुप रहो, उपदेश देने आया है।'

'अच्छा महाराज ! जाता हूँ' कह कर शीघ्र ही बाहर आया और चपरासीसे, जो कि बाबाजीकी चिट्ठी डाकमें डालनेके लिये जा रहा था, मैंने कहा—भाई क्यों चिट्ठी डालते हो, बाबाजी महाराज तो क्षणिक रुष्ट हैं, अभी प्रसन्न हो जावेंगे, यह एक रुपया मिठाई खाने को लो और चिट्ठी हमें दे दो। वह भला आदमी था चिट्ठी हमें दे दी और दस मिनट बाद आकर बाबा जीसे कह गया कि चिट्ठी डाल आया हूँ। बाबा जी बोले—'अच्छा किया पाप कटा।' मैं इन विरुद्ध वाक्योंको श्रवण कर सहम गया। हे भगवन् ! क्या आपत्ति आई जो मुझे हार्दिक स्नेह करते थे आज उन्हींके श्रीमुखसे यह निकले कि पाप कटा, अर्थात् यह इस स्थानसे चला जावेगा तो पाठशाला शान्तिसे चलेगी।

३१

छात्रसभामें मेरा भाषण

मैंने कहा—'महाराज ! प्रणाम, अब जाता हूं। क्या मैं छात्रगणोंसे अन्तिम क्षमा मांग सकता हूँ। यदि आज्ञा हो तो छात्रसमुदायमें कुछ भाषण करूं और चला जाऊं।' बाबाजीने कुछ उदासीनतासे कहा—'अच्छा जो कहना हो शीघ्रतासे कह कर १५ मिनटमें चले जाना।'

घण्टी बजी, सब छात्र एकत्र हो गये, एक छात्रने मङ्गलाचरण किया। मैंने कहा—'सनियम सभा होनेकी आवश्यकता है अतः एक सभापति अवश्य होना चाहिये अन्यथा हुल्लड़बाजी होनेकी सम्भावना है। एक छात्रने प्रस्ताव किया कि सभापतिका आसन श्रीयुत पूज्य बाबाजी ग्रहण करें, एकने समर्थन किया, सबने अनुमोदना की, मैं विरोधमें रहा परन्तु मेरी कौन सुनता था ? क्योंकि मैं अपराधी था।

मैंने बाबाजी महाराजसे अनुमति मांगी, उन्होंने कहा—'१५ मिनट भाषण करके चले जाओ।' 'चले जाओ' शब्द सुनकर बहुत खिन्न हुआ। अन्तमें साहस बटोर कर भाषण करनेके लिये खड़ा हुआ। प्रथम ही मङ्गलाचरणका पाठ किया—

'जन्मान्तरेषु मम भवभवे यच्च यादृक् च दुःखं
प्राप्तं यस्य स्मरणमपि मे शस्त्रवन्निष्पिनष्टि ।
त्वं सर्वेशः सकृप इति च त्वामुपेतोऽस्मि भक्त्या
यत्कर्तव्यं तदिह विषये देव एव प्रमाणम् ॥'

'हे भगवन् ! हमको भव भवमें जो और जिस प्रकारके दुःख हुए हैं उन्हें आप जानते हैं क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं यदि उन दुःखोंका स्मरण किया जावे तो शस्त्रके घाव सदृश पीड़ा देते हैं अतः इस विषयमें क्या करना चाहिये ? यह आप ही के ऊपर छोड़ते हैं क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं, सर्वज्ञ ही नहीं सबके ईश हैं, ईश ही नहीं दयावान भी हैं। यदि केवल जाननेवाले होते तो हम प्रार्थना न करते। आप जाननेवाले भी हैं और तीर्थंकर प्रकृतिके उदयसे मोक्षमार्गके नेता भी। आशा है मेरी प्रार्थना निष्फल न होगी।'

महानुभाव बाबाजी महोदय ! श्रीसुपरिन्टेन्डेन्ट महाशय ! तथा छात्रगण ! मैं आपके समक्ष भव्य भावनासे प्रेरित होकर कुछ कहनेका साहस करता हूँ। यद्यपि सम्भव है कि मेरा कहना आपको यथार्थ प्रतीत न हो क्योंकि मैं अपराधी हूँ परन्तु यह कोई नियम नहीं कि अपराधी सदैव अपराधी ही बना रहे। जिस समय मैंने अपराध किया था उस समय अपराधी था न कि इस समय भी। इस समय तो मैं भाषण करनेके लिये मञ्च पर खड़ा हुआ हूँ अतः वक्ता हूँ, इस समय जो भी कहूँगा विचार पूर्वक ही कहूँगा।

पहले मैंने इष्टदेवको नमस्कार किया उसका यह तात्पर्य है कि मेरे विघ्न पलायमान हों क्योंकि मङ्गलाचरणका करना विघ्न विनाशक है। आप लोग यह न समझें कि मैं यहाँसे जो पृथक्

किया जानेवाला हूँ वह विघ्न न आवे। वह तो कोई वि
ऐसे विघ्न तो असाता कर्मके उदयसे आते हैं और अस
की गणना अघातिया कर्ममें है वह आत्मगुणघातक नहीं
विघ्नसे हमारी कोई क्षति नहीं। कल्पना करो कि यहांसे
हो गये—क्षेत्रान्तर चले गये इसका यह अर्थ नहीं कि वन
हो चले गये। यहांसे जाकर मेलूपुर ठहर सकते हैं और
रहकर भी अभ्यास कर सकते हैं। मङ्गलाचरण इसलिये
है कि मैं बाबाजीके प्रति शत्रुत्वका भाव न रक्खूं क्योंकि
मेरे परम मित्र हैं। ऐसी अवस्थामें उनसे मेरा वैरभाव हो स
है वह न हो इसीलिये मङ्गलाचरण किया है।

और इससे यह निष्कर्ष भी न निकालना कि बाबाजी महा
व! आप मेरे अवगुणोंको जानते हैं, मेरे स्वामी भी हैं और
साथ ही कृपालु भी अतः मेरा अपराध क्षमा कर निकालनेकी
आज्ञाको वापिस ले लेवें...कदापि मेरा यह अभिप्राय नहीं है।

जैनधर्म तो इतना विशाल और विशद है कि परमार्थ दृष्टि
से परमात्मासे भी याचना नहीं करता क्योंकि जैन सम्मत
परमात्मा वीतराग सर्वज्ञ है। अब आप ही बतलावें कि जहां
परमात्मामें वीतरागता है वहां याचनासे क्या मिलेगा? फिर
कदाचित् आप लोग यह शंका करें कि मङ्गलाचरण क्यों
किया? उसका उत्तर यह है कि यह सब निमित्त कारणकी
अपेक्षा कथन है न कि उपादानकी अपेक्षा। यथाहि—

'इति स्तुत्वा देव विभव वैभवाद्—
वरं न याचे त्वदुपेक्षकोऽसि।
छायातरुं संश्रयतः स्वतः स्यात्
कश्छायया याचितयात्मलाभः ॥'

जब श्री धनजय सेठ श्रीआदिनाथ स्वामीकी स्तुति कर चुके तब अन्तमें कहते हैं कि हे देव! इस प्रकार मैं आपकी स्तुति करके दीनतासे कुछ वर नहीं मांगता क्योंकि वर वहां मांगा जाता है जहां मिलनेकी संभावना होती है। आप तो उपेक्षक हैं—अर्थात् आपके न राग है न द्वेष है—आपके भाव ही देनेके नहीं, क्योंकि जिसके भक्तमें अनुराग हो वह भक्तकी रक्षा करनेमें अपनी शक्तिका उपयोग कर सकता है अतः आपसे याचना करना व्यर्थ है। यहां प्रश्न हो सकता है कि यदि वस्तुकी परिस्थिति इस प्रकार है तो स्तुति करना निष्फल हुआ। सो नहीं, उसका उत्तर यह है कि जैसे जो मनुष्य छाया वृक्षके नीचे बैठ गया उसे छायाका लाभ स्वयमेव हो रहा है उसको वृक्षसे छायाकी याचना करना व्यर्थ है। यहांपर विचार करो कि जो मनुष्य वृक्षके निम्न भागमें बैठा है उसे छाया स्वयमेव मिलती है क्योंकि सूर्यकी किरणोंके निमित्तसे जो प्रकाश परिणमन होता था वह किरणें वृक्षके द्वारा रुक गईं अतः वृक्षके तलकी भूमि स्वयमेव छायारूप परिणमनको प्राप्त हो गई। यद्यपि तथ्य यही है फिर भी यह व्यवहार होता है कि वृक्षकी छाया है। क्या यथार्थमें छाया वृक्षकी है? छायारूप परिणमन तो भूमिका हुआ है। इसी प्रकार जब हम रुचिपूर्वक भगवान्को अपने ज्ञानका विषय बनाते हैं तब हमारा शुभोपयोग निर्मल होता है। उसके द्वारा पाप प्रकृतिका उदय मन्द पड़ जाता है अथवा अत्यन्त विशुद्ध परिणाम होनेसे पाप प्रकृतिका संक्रमण होकर पुण्यरूप परिणमन हो जाता है। यद्यपि इस प्रकारके परिणमनमें हमारा शुभ परिणाम कारण है परन्तु व्यवहार यही होता है कि प्रभु-वीतराग द्वारा शुभ परिणाम हुए अर्थात् सर्वज्ञ वीतराग शुभ परिणामोंमें निमित्त हुए। यद्यपि उन शुभ परिणामोंके द्वारा हमारा

यहां परमात्माका स्वरूप बहुत ही विशदरूपसे प्रतिपादित किया गया है। न्यायशास्त्रमें तो इनकी वर्णनशैली कितनी गम्भीर और सरल है कि जिसको देखते ही जैनाचार्योंके पाण्डित्यकी प्रशंसा बृहस्पति भी करना चाहे तो नहीं कर सकता। अध्यात्म का वर्णन तो वर्णनातीत है...यह सब आप छात्र तथा बाबाजी का उपकार है जिसे समाजको हृदयसे मानना चाहिये। मैं बाबा जीको कोटिशः धन्यवाद देता हूं जिन्होंने अपने धर्मध्यानके कालको गौण कर दिल्ली प्रान्तसे पाठशालाको धनकी महती सहायता पहुंचाई। इतना ही उपकार आपका नहीं, किन्तु बहुत काल यहां रहकर छात्रोंको सच्चरित्र बनानेमें आप सहयोग भी देते हैं। यह ही नहीं. आपके द्वारा जो यात्रीगण पाठशालाका निरीक्षण करनेके लिये आते हैं उन्हें संस्थाका परिचय देकर उनसे सहायता भी कराते हैं। आपका छात्रोंसे लेकर अध्यापक वर्ग तथा समस्त कर्मचारीवर्गके साथ समान प्रेम रहता है। मेरे साथ तो आपका सर्वदा स्नेहमय व्यवहार रहा परन्तु अब ऐसा अभाग्योदय आया कि आपने एकदम मुझे पाठशालासे पृथक् कर दिया।

बन्धुवर! यहां पर मुझे दो शब्द कहना है आशा है आप लोग उन्हें ध्यान पूर्वक श्रवण करेंगे। मैंने इस योग्य अपराध नहीं किया है कि निकाला जाऊं। प्रथम तो मैंने आज्ञा ले ली थी हां, इतनी गलती अवश्य हुई कि सामायिकके पहले नहीं ली थी। फिर भी इस बातकी चेष्टा की थी कि सुपरिन्टेन्डेन्ट साहबसे आज्ञा ले लूं परन्तु वे समय पर उपस्थित न थे अतः मैं बिना किसी की आज्ञाके ही चला गया।

आज रामलीलाका अन्तिम दिवस था। श्रीरामचन्द्रजी रावण पर विजय प्राप्त करेंगे—यह देखना अभीष्ट था और इसका

प्रातर्भवामि वसुधाधिपचक्रवर्ती
सोऽहं व्रजामि विपिने जटिलस्तपस्वी ।'

इत्यादि बहुत कथानक शास्त्रोंमें मिलते हैं। जिन कार्योंकी सम्भावना भी नहीं वह आकर हो जाते हैं और जो होनेवाले हैं वह क्षणमात्रमें विलीन हो जाते हैं अतः मैं आप लोगोंसे यह भिक्षा नहीं चाहता कि बाबाजीसे मेरे विषयमें कुछ कहें।

कहां तो यह मनोरथ कि दस वर्ष अष्टसहस्रीमें परीक्षा देकर अपनी मनोवृत्तिको पूर्ण करेंगे एवं देहातमें जाकर पद्मपुराणके स्वाध्याय द्वारा मामीण जनताको प्रसन्न करनेकी चेष्टा करेंगे और कहां यह बाबाजीका मर्मघाती उपदेश। ...कहां तो बाबाजी से यह घनिष्ठ सम्बन्ध कि बाबाजी मेरे बिना भोजन न करते थे और कहां यह आज्ञा कि निकल जाओ....पाप कटा। यह उनका दोष नहीं, जब अभाग्यका उदय आता है तब सबके यही होता है। अब इस रोनेसे क्या लाभ? आप लोगोंसे हमारा घनिष्ट सम्बन्ध रहा, आप लोगोंके सहवाससे अनेक प्रकारके लाभ उठाये अर्थात् ज्ञानार्जन, सिंहपुरी-चन्द्रपुरीकी यात्रा, पठन पाठनका सौकर्य और सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि आज स्याद्वाद पाठशाला विद्यालयके रूपमें परिणत हो गई, जिन ग्रन्थोंके नाम सुनते थे वे आज पठन पाठनमें आगये—जैसे आप्तमीमांसा, आप्तपरीक्षा, परीक्षामुख, प्रमेयकमलमार्तण्ड अष्टसहस्री, साहित्यमें चन्द्रप्रभ, धर्मशर्माभ्युदय, यशस्तिलक-चम्पू आदि। इन सबके प्रचारसे यह लाभ हुआ कि जहां काशी में जैनियोंके नामसे पण्डितगण नास्तिक शब्दका प्रयोग कर बैठते थे आज उन्हीं लोगों द्वारा यह कहते सुना जाता है कि जैनियोंमें प्रत्येक विषयका उच्चकोटिका साहित्य विद्यमान है हम लोग इनको व्यर्थ ही नास्तिकोंमें गणना करते थे। इनके

यहां परमात्माका स्वरूप बहुत ही विशदरूपसे प्रतिपादित किया गया है। न्यायशास्त्रमें तो इनकी वर्णनशैली कितनी गम्भीर और सरल है कि जिसको देखते ही जैनाचार्योंके पाण्डित्यकी प्रशंसा बृहस्पति भी करना चाहे तो नहीं कर सकता। अध्यात्म का वर्णन तो वर्णनातीत है...यह सब आप छात्र तथा बाबाजी का उपकार है जिसे समाजको हृदयसे मानना चाहिये। मैं बाबा जीको कोटिशः धन्यवाद देता हूं जिन्होंने अपने धर्मध्यानके कालको गौन कर दिल्ली प्रान्तसे पाठशालाको धनकी महती सहायता पहुंचाई। इतना ही उपकार आपका नहीं, किन्तु बहुत काल यहां रहकर छात्रोंको सच्चरित्र बनानेमें आर सहयोग भी देते हैं। यह ही नहीं, आपके द्वारा जो यात्रीगण पाठशालाका निरीक्षण करनेके लिये आते हैं उन्हें संस्थाका परिचय देकर उनसे सहायता भी कराते हैं। आपका छात्रोंसे लेकर अध्यापक वर्ग तथा समस्त कर्मचारीवर्गके साथ समान प्रेम रहता है। मेरे साथ तो आपका सर्वदा स्नेहमय व्यवहार रहा परन्तु जब ऐसा अभाग्योदय आया कि आपने एकदम मुझे पाठशालासे पृथक् कर दिया।

बन्धुवर ! यहां पर मुझे दो शब्द कहना है आशा है आप लोग उन्हें ध्यान पूर्वक श्रवण करेंगे। मैंने इस योग्य अपराध नहीं किया है कि निकाला जाऊं। प्रथम तो मैंने आज्ञा ले ली थी हां, इतनी गलती अवश्य हुई कि सामायिकके पहले नहीं ली थी। फिर भी इस बातकी चेष्टा की थी कि सुपरिन्टेन्डेन्ट साहबसे आज्ञा ले लूं परन्तु वे समय पर उपस्थित न थे अतः मैं बिना किसी की आज्ञाके ही चला गया।

अष्टाह्निका पर्वका अन्तिम दिवस था। [illegible] पर विजय प्राप्त करें—यह देखना अभीष्ट था [illegible]

अभिप्राय यह था कि इतना वैभव-शक्तिशाली रावण श्रीरामचन्द्रजीसे किसप्रकार परास्त होता है। मैंने वहां जाकर देखा कि रामके द्वारा रावण पराजित हुआ। मैंने तो यह अनुभव किया कि रावणने श्रीरामचन्द्रजी महाराजकी सीताका अपहरण किया अतः वह चोर था, तथा उसके भाव मलिन थे, निन्द्य थे जो मन्दोदरी आदि अनेक विद्याधरी महिलाओंके रहने पर भी सीताको बलात्कार ले गया।

पापके सुनते ही मनुष्यकी बुद्धि नष्ट हो जाती है। जटायु पक्षीने अपनी चोंचसे सीताजीकी रक्षा करनी चाही परन्तु उस दुष्टने अनाथ पक्षी पर भी आघात कर दिया। इस महापापका फल यह हुआ कि पुरुषोत्तम रामचन्द्रजीके द्वारा एक महाप्रतापी रावणका घात हुआ। यह कथा रामायणकी है, हमारे यहां रावणका घात श्री लक्ष्मणके चक्रद्वारा हुआ। यह चक्र रावणका ही था, जब उसके समस्त अस्त्र शस्त्र विफल हो चुके तब अन्तमें उसने इस महाशस्त्र-चक्रका उपयोग लक्ष्मण पर किया परन्तु श्री लक्ष्मणके प्रबल-पुण्यसे वह चक्र इनके हाथमें आ गया। उस समय श्रीरामचन्द्रजी महाराजने अति-सरल-निष्कपट-मधुर-हितकर वचनोंके द्वारा रावणको सम्बोधनकर यह कहा कि हे रावण! अब भी कुछ नहीं गया, अपना चक्ररत्न वापिस ले लो, आपका राज्य है अतः सब ही वापस लो। आपके भ्राता कुम्भकर्ण आदि तथा पुत्र मेघनाद आदि जो हमारे यहां बन्दीगृहमें हैं उन्हें वापिस ले जाओ। आपका जो भाई विभीषण हमारे पक्षमें आगया है उसे भी सहर्ष ले जाओ केवल सीताको दे दो। जो नरसंहारादि युद्धके निमित्तसे हुआ है उसकी भी हम अब समालोचना नहीं करना चाहते हम मान लेंगे कि 'हम' वनमें कुटी बनाकर [illegible] रहेंगे और तुम अपने [illegible] मन्दोदरी आदि के

रानियोंके साथ आनन्दसे जीवन बिताओ। हजारों स्त्रियोंको वैधव्यका अवसर मत आने दो। आशा है हमारे प्रस्तावको अङ्गीकार कर उभय लोकमें यशके भागी बनोगे।'

रावण महाराज रामचन्द्रजीका यह भाषण सुनकर आग बबूला हो गया और कहने लगा कि आपने यह कुम्भकारका चक्र पाकर इतने अभिमानसे सम्भाषण किया ? आपको जो इच्छा हो सो करो, रावण कभी भी नतमस्तक नहीं हो सकता 'महतां हि मानं धनम्।' हमको मरना स्वीकार है परन्तु आपके सामने नतमस्तक होना स्वीकार नहीं। जो लक्ष्मणकी इच्छा हो उसे करे।

इसके बाद जो हुआ सो आप जानते ही हैं यह कथा छात्रों से कही और बाबाजी महाराजसे कहा कि 'आज इस रामलीला को देखकर मेरे मनमें यह भावना हो गई कि पापके फलसे कितना ही वैभवशाली क्यों न हो अन्तमें पराजित हो ही जाता है। जितने दर्शक थे सबने रामचन्द्रजीकी प्रशंसा और रावण तथा उसके अनुयायीवर्गकी निन्दा की। यह बात प्रत्येक दर्शक के हृदयमें समा गई कि परस्त्री विषयक इच्छा सर्वनाशका कारण होती है जैसा कहा भी है—

'जाही पाप रावणके न सोना रह्यो भौना माहि ताही पापलोकन खिलौना कर राख्यो है'

इत्यादि लोगोंमें परस्पर वार्तालाप होती थी। यह बात, जिसने उस समयका दृश्य देखा वही जानता है। मेरे कोमल हृदयमें तो यह अच्छी तरह समा गया कि पाप करना सर्वथा हेय है। इस रामायणके बांचनेसे यही शिक्षा मिलती है कि रामचन्द्रजीके सदृश व्यवहार करना रावणके सदृश अन्यायमें

नहीं पड़ना। जो श्री रामचन्द्रजी महाराजका अनुकरण करेगा वही संसारमें विजयी होगा और जो रावणके सदृश व्यवहार करेगा वह अधःपतनका भागी होगा।

इत्यादि शिक्षाको लेकर आ रहा था और यह सोच सोचकर मनमें फूला न समाता था कि बाबाजी महाराजको आजके दश्यका समाचार सुना कर कुछ विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त करूंगा पर यहां आकर विपरीत ही फल पाया 'गये तो छब्बे होनेको पर रह गये दुबे' या पांसा पाड़ते समय इरादा तो किया था 'पौ बारह आवें पर आ गये तीन काना।' अस्तु, किसीका दोष नहीं, अपने कर्त्तव्यका फल पाया, परन्तु 'ककरीके चोरको कटार मारिये नहीं' इसे महाराज एकदम भूल गये। आप लोग ही बतावें कि मैंने ऐसा कौनसा अपराध किया कि पाठशालासे निकाला जाऊं, आप सबने इस विषयमें बाबाजीसे अणुमात्र भी प्रार्थना न की कि महाराज! इतना दण्ड देना उचित नहीं। आखिर यही न्याय किसी दिन आपके ऊपर भी तो होगा, आप लोग साधु तो हैं नहीं कि किसी तमाशा आदिको देखने न जाते हों परन्तु बलवानके समक्ष किसीकी हिम्मत नहीं पड़ती।

बाबाजीका यह कहना है कि यदि नौका डूब जाती तो क्या होता? सो प्रथम तो वह डूबी नहीं अतः अब वह सम्भावना करना व्यर्थ ही है। हाँ, हमारा दण्ड करना था जिससे भविष्यमें यह अपराध नहीं करते और विद्याध्ययनमें उपयोग लगाते। परन्तु बाबाजी क्या करें? हमारा तीव्र पापका उदय आ गया जिससे बाबाजी जैसे निर्मल और सरल परिणामी भी न्यायमार्ग की अवहेलना कर गये।

यह मेरा हतभाग्य ही है कि जो मैं एक दिन स्याद्वाद विद्यालयके प्रारम्भमें बाबाजीको बनारस बुलानेमें निमित्त था और

निमन्त्रण पत्रिकामें बाबाजीके नीचे जिसका नाम भी था आज वार्षिक रिपोर्टमें उसी मेरे लिये लिखा जावेगा कि बाबा भागीरथजीकी अध्यक्षतामें गणेशप्रसादको अमुक अपराधमें पृथक् किया गया। अब मैं क्या प्रार्थना करूं कि मेरा अपराध क्षमा कीजिये। यदि कोई अन्य होता तो उसकी अपील भी करता परन्तु यह तो निरपेक्ष साधु ठहरे इनकी अपील किससे की जावे। केवल अपने परिणामों द्वारा अपने ही से अपील करता हूं।

३२

महान् प्रायश्चित

'हे आत्मन् ! यदि तूने पृथक् होने योग्य अपराध किया है तो व्याख्यान समाप्त होनेके बाद सबसे क्षमा याचना कर इसी समय यहाँ से चला जाना और यदि ऐसा अपराध नहीं है कि तू पृथक् किया जावे तो बाबाजीके श्रीमुखसे यह ध्वनि निकले कि तुम्हारा अपराध क्षमा किया जाता है भविष्यमें ऐसा अपराध न करना'.. इत्यादि विकल्प मनमें हो ही रहे थे कि बाबाजी उच्च-स्वरसे बोल उठे 'बैठ जाओ समय हो गया, १५ मिनटके स्थान पर ३० मिनट ले लिये।' मैंने नम्रताके साथ कहा--'महाराज! बैठा जाता हूँ अब तो जाता ही हूँ इतनी नाराजी क्यों प्रदर्शित करते हैं मुझे एक श्लोक याद आगया है यदि आज्ञा हो तो कह दूँ।'

'लज्जा नहीं आती, जो मनमें आया सो बोल दिया, व्याख्यान देनेकी भी कला है, अभी कुछ दिन सीखो, आज कल विद्यालयोंमें एक यह भी रोग लग गया है कि छात्र गर्णोसे व्याख्यान देनेका भी अभ्यास कराया जाता है, शास्त्र प्रवचन कराया जाता है, व्याख्यानकी भी मुख्यता हो रही है, पाठय पुस्तकोंका अभ्यास हो चाहे न हो,पर यह विषय होना ही चाहिये। अच्छा, कह लो, अन्तिम समय है फिर यह अवसर न आवेगा' बाबाजीने उपेक्षा भावसे कहा।

आपके ऊपर मेरा कोई वैरभाव है और न छात्रोंके ही ऊपर। बोलो श्री महावीर स्वामीकी जय।

अन्तमें महाराजजीको प्रणाम और छात्रोंको सस्नेह जय-जिनेन्द्र कर जब चलने लगा तब नेत्रोंसे अश्रुपात होने लगा। न जाने बाबाजीको कहाँसे दयाने आ दबाया आप सहसा बोल उठे—

'तुम्हारा अपराध क्षमा किया जाता है तथा इस आनन्दमें कल विशेष भोजन खिलाया जावेगा।'

मैंने भूली हुई बातकी याद दिलाते हुए कहा—'महाराज! यह सब तो ठीक है, परन्तु जो खिड़पत्र आया गया है उसका क्या होगा? अतः मैं अन्तिम प्रणाम कर जाता हूँ, इसी प्रकार मेरे ऊपर कृपा रखना, संसारमें उदयकी बलवत्ता द्वारा अच्छे अच्छे महानुभाव आपत्तिके जालमें फँस जाते हैं मैं तो कोई महान् व्यक्ति नहीं।'

बाबाजी महाराज चुप रहे और कुछ देर बाद कहने लगे 'बात तो ठीक है परन्तु हम तुम्हारा अपराध क्षमा कर चुके!' बादमें सुपरिन्टेन्डेन्ट साहबसे कहने लगे कि दवात कलम लाओ और एक पत्र फिर मन्त्रीजीको लिख दो कि आज मैंने गणेशप्रसाद को पाठशाला से पृथक् करनेकी आज्ञा दी थी और उसका पत्र भी आपको लिख चुका था परन्तु जब यह जाने लगा और सब छात्रोंसे क्षमा मांगनेके लिये व्याख्यान देने लगा तब मेरा चित्त द्रवीभूत हो गया अतः मैंने इसका अपराध क्षमा कर दिया तथा प्रसन्न होकर दूसरे दिन विशिष्ट भोजनकी आज्ञा दी। अब आप प्रथम पत्रको निष्फल मानना और नवीन पत्रको सत्य समझना। इस विषयमें कोई अन्तर नहीं करना हम आप त्यागी हैं—हमारा कर्तव्य

३२

लाला प्रकाशचन्द्र रईस

कुछ दिनोंके बाद सहारनपुरसे स्वर्गीय लाला रूपचन्द्रजी रईसके सुपुत्र श्रीप्रकाशजी बनारस विद्यालयमें अध्ययनके लिये आये। आप बड़े भारी गण्यमान्य प्रसिद्ध रईसके पुत्र थे अतः जहां मैं रहता था उसीके सामनेकी कोठरीमें रहने लगे। जिसमें मैं रहता था वह श्रीमान् बाबू छेदीलालजी रईस बनारसवालोंका मन्दिर है। गङ्गाके तटपर बना हुआ मन्दिरका अनुपम और सुन्दर भवन अब भी बड़ा भला मालूम होता है। मन्दिरके नीचे धर्म-शाला भी पट्टी पर एक कोठरीमें मैं ठहरा था और सामनेवाली कोठरीमें श्रीप्रकाशचन्द्रजी साहब ठहर गये। आप रईसके पुत्र थे, तथा पढ़नेमें कुशाग्रबुद्धि थे। आपकी भोजनादि क्रिया रईसोंके समान थी।

यदि आप छात्र बनकर बनारस रहते और विद्याध्ययनमें उपयोग लगाते तो इसमें सन्देह नहीं कि निर्दोष विद्वान् होते और इनके द्वारा जैनधर्मका विशेष प्रचार होता परन्तु भवितव्य दुर्निवार है।

आपको विद्यालयका भोजन रुचिकर नहीं हुआ अतः आपको पृथक् रसोई बनने लगी तथा रसोइया लाया भी इनको भोजनके

अनुकूल ही सब कार्य करने लगे। पर यह निश्चित सिद्धान्त है कि पठन कार्यमें रसनालम्पटता भी बाधक है। यहीं तक ही सीमा रहती तो कुछ हानि न थी पर आप बहुत कुछ आगे बढ़ चुके थे।

एक दिन हमलोग, मैं तथा आप अष्टमीकी छुट्टी होनेसे सायंकालके समय मन्दाकिनीके मन्दिर गये थे। वन्दना कर जिस मार्गसे वापिस लौट रहे थे उसमें एक नाटकगृह था। उस दिन 'हमीर हठ' नाटक था। आप बोले—'चलो नाटक देख आवें।' हम सब लोगोंने कहा—प्रथम तो हम लोगोंके पास पैसा नहीं, दूसरे सुपरिन्टेन्डेंट साहबसे छुट्टी नहीं लाये अतः हम तो जाते हैं। परन्तु आप तो स्वतन्त्र प्रकृतिके निर्भय रईस पुत्र थे अतः कहने लगे—'हम तो नाटक देखकर ही आवेंगे।' हम लोग तो उसी समय चले गये पर आप नाटक देखकर रात्रिके दो बजे भदैनीघाट पहुंचे। प्रातःकाल शौचादिसे निवृत्त हो कर पढ़ने के लिये चले गए।

लाला प्रकाशचन्द्रजी केवल साहित्यग्रन्थ पढ़ते थे। धनिक होनेसे सुपरिन्टेन्डेन्ट साहबका भी आप पर कोई विशेष दबाव नहीं था। अध्यापक गण यद्यपि आप पर इस बातका बहुत कुछ प्रभाव डालते थे कि केवल साहित्य पढ़नेसे विशेष लाभ नहीं इसके साथ न्याय और धर्मशास्त्र भी अध्ययन करो परन्तु आप बातोंमें ही टाल देते थे और धर्मशास्त्रानभिज्ञत्वके चार या छह श्लोक पढ़कर अपनेको [illegible] समझने लगे थे

जिस दिनसे आप नाटक देखकर आये, न [illegible] [illegible] 'अष्टम है' यह [illegible] [illegible] मैं उनके बराबर [illegible]

और रात्रिको बारह बजे तक नाटक देखना पश्चात् दो घण्टा कहाँ पर बिताते थे? भगवान् जाने, ढाई बजे निवास स्थान पर आते थे।

एक दिन बड़े आग्रहके साथ हमसे बोले—'नाटक देखने चलो।' मैंने कहा—'मैं नहीं जाता, आप तो ३) की कुर्सी पर आसीन होंगे और हम ।।) के टिकटमें गवार मनुष्योंके बीच बैठकर सिगरेट तथा बीड़ीकी गन्ध सूँघेंगे यह हमसे न होगा।' आप बोले 'अच्छा ३) की टिकट पर देखना।' मैंने कहा—'एक दिन देखनेसे क्या होगा ?' आपने झट १०००) का नोट मेरे हाथमें देते हुए कहा—'लो बारह मासका जिम्मा मैं लेता हूँ।'

मैं डर गया, मैंने उनका नोट उन्हें देते हुए कहा कि जब रात्रिभर नाटक देखेंगे तब पाठ्य पुस्तक कब देखेंगे। अतः कृपा कीजिये मेरे साथ ऐसा व्यवहार करना अच्छा नहीं। तथा आपको भी उचित है कि यदि बनारस आये हो तो विद्यार्जन द्वारा पण्डित बनकर जाओ जिसमें आपके पिताको आनन्द हो और आपके द्वारा जैनधर्मका प्रचार भी हो क्योंकि आप धनाढ्य हैं, आपका कण्ठ भी उत्तम है, बुद्धि भी निर्मल है और रूप-सौन्दर्यमें भी आप राजकुमारोंको लज्जित करते हैं। आशा है आप हमारी सम्मतिको अपनावेंगे। यदि आप हमारी सम्मतिका अनादर करेंगे तो उत्तर कालमें पश्चात्तापके पात्र होंगे।'

पर कौन सुनता था उन्होंने हमारी सम्मतिका अनादर करते हुए कहा कि हमारे पास इतना विभव है कि बीसों पण्डित हमारा दरवाजा खटखटाते हैं। मैंने कहा—'आपका दरवाजा हो तो खटखटाते हैं अर्थात् आपको (?) क्या आपमें कुछ

बुन्देलखण्डी हो जहाँ ऐसे सरस नाटक आदि करनेवालोंका प्राय अभाव ही है अतः हमको शिक्षा देने आये, अपनी शिक्षा अपने ही में सीमित रक्खो, हम रईसके बालक हैं, हमारा जीवन निरन्तर आमोद प्रमोदमें जाता है। देखो हमारी चर्या, जब प्रातःकाल हुआ और हमारी निद्रा भग हुई नहीं कि एक नौकर लोटा लिये खड़ा, हम शौचगृहमें गये नहीं कि लोटा रखा पाया, शौचगृहसे बाहर आये कि लोटा उठानेके लिये आदमी दौड़ा, अनन्तर एक आदमी ने पानी देकर हाथ पैर धुलाये तो दूसरेने झटसे तौलियासे साफ किये। उसी समय तीसरे नौकरने आकर हाथमें दन्तधावन दी हमने मुखमार्जन किया, पश्चात् नाई आया वह शिरमें तथा सम्पूर्ण शरीरमें मालिश कर जानेको उद्यत हुआ कि पाचवा नौकर गरम पानीसे स्नान कराने लगता है, स्नानके अनन्तर सर्वांगको तौलियासे मार्जन कर कघासे शिरके बाल संभारनेके लिये तैयार हुआ कि एक आदमीने सम्मुख हाथमें दर्पण लिया, एक आदमी धोती लिये अलग खड़ा रहता है। हमने धोती पहिन कर कुरता पहना और दर्पणमें मुख देख सब कार्योंसे निवृत्त हो मन्दिर जानेके लिये तैयार हुए कि एक आदमी छतरी लिये पीछे पीछे चलने लगा। मन्दिर पहुँच कर श्रीजिनेन्द्रप्रभुके दर्शन कर नाममात्र को स्वाध्याय किया फिर उसी रीतिसे घर आ गये अनन्तर दुग्धपानादि कर पश्चात् अध्यापकों द्वारा कुछ पढ़कर शिक्षाको समको अदा किया, पश्चात् मध्यान्हके भोजनकी क्रियासे निवृत्त होकर सो गये, सोनेके बाद सन्तरा अनार मौसंबीका शर्बत पान कर कुछ जल पान किया, अनन्तर सैर करके बागमें चले गये, वहांसे आकर सायंकालका भोजन किया फिर गप्प बाजारको इरा भरा कर यद्वा तद्वा गोष्ठी कथा करने लगे, रात्रिके नौ बजेके बाद किसी नाटक-गृह अथवा सिनेमामें चले गये, और वहांसे आकर दुग्धादि पान कर सो गये। यह हमारी दिन रात्रिकी चर्या है। तुम लोगोंको

लाला प्रकाशचन्द्रजी जब इतना कह चुके तब मैंने कहा—'लालाजी! तुम बड़ी भूल कर रहे हो, इसका फल अत्यन्त ही कटुक होगा, अभी तो तुम्हें नाटक की चाट लगी है कुछ दिन बाद वेश्या और मद्य की चाट लगेगी और तब तुम अपनी कुल परम्पराकी रक्षा न कर सकोगे। बड़े बड़े राजा महाराजा इन व्यसनोंमें अनुरक्त होकर अधोगतिके भाजन हुए आप तो उनके समक्ष कुछ भी नहीं, क्या आपने चारुदत्तका चरित नहीं पढ़ा है जो कि इस विषयमें करोड़ों दीनारें खो चुका था। हमें तुम्हारे रूप और ज्ञान पर तरस आता है तथा आपके वंश परम्परा की निर्मल कीर्तिका स्मरण होते ही एकदम खेद होने लगता है। मनमें आता है कि हे भगवन्! यह क्या हो रहा है? हमारा आपसे कोई सम्बन्ध नहीं फिर भी मनुष्यताके नाते आपकी कुत्सित प्रवृत्ति देख उद्विग्न हो जाता हूं साथ ही इस बातका भय भी लगता है कि आपके पूज्य पिताजी व भाई साहब क्या कहेंगे कि तुम वहां पर थे फिर चिरजीवी प्रकाशकी ऐसी प्रवृत्ति क्यों हुई? अतः आप हमारी शिक्षा मानो या न मानो परन्तु आगममें जो लिखा है उसे तो मानो। छात्रोंका काम अध्ययन करना ही मुख्य है, नाटकादि देखकर समयको बरबाद करना छात्र जीवनका घातक है। तुम्हारी बुद्धि निर्मल है, अभी वय भी छोटी है, अभी तुम समीचीन मार्गमें आ सकते हो, अभी तुम्हें लज्जा है, गुरुजीका भय है और यह भी भय है कि पिताजी न जान सकें। खर्चके लिये आपके पिताजी २५०) मासिक ही तो भेजते हैं पर तुम २५०) की एवजमें ५००) मासिक व्यय करते हो। यदि ऐसा न होता तो दो मासमें तुम्हें ५००) कर्ज कैसे हो जाते? तुमने हमसे उधार मांगे, यद्यपि मेरे पास न थे तो भी मैंने बाईजी की सोनेकी सँकली गहने रख कर ५००) तुम्हें दिये फिर भी तुम निरन्तर व्यग्र रहते हो। अब दो मास हो गये तुम्हें ५००) और चाहिये तथा

याईजी कहतो हैं कि भैया संदली लाओ अतः मैं भी असमंजस [illegible]
पड़ा हूँ।'

दैवयोगसे उसी दिन लाला प्रकाशचन्द्रका १०००) एक हजार
रुपया आ गया, ५००) मुझे दे दिये मैं याईजी की चिन्तासे
उन्मुक्त हुआ।

बातचीतका सिलसिला जारी रखते हुए मैंने फिर कहा—
'कहो प्रकाश! अब क्या इस कुटेव को छोड़ोगे या गर्तमें पड़ोगे?'
बहुत कुछ कहा परन्तु एक भी न सुनी और निरन्तर प्रतिरात्रि
नाटक देखनेके लिये जाना और रात्रिके दो बजे वापिस आना
यह उनका मुख्य कार्य जारी रहा। कभी कभी तो प्रातःकाल आते
थे अतः अन्य पापकी भी शङ्का होने लगी और वह भी सत्य ही
निकली। एक दिन मैं अचानक उनकी कोठरीमें पहुँच गया, उस
समय आप एक ग्लासमें कुछ पान कर रहे थे, मुझे देखते ही
उन्होंने वह ग्लास गङ्गा तट पर फेंक दिया। मैंने कहा—'क्या
था?' आप बोले—'गुलाब शर्बत था।' मैंने कहा—'फेंकनेकी क्या
आवश्यकता थी?' आप बोले—'उसमें कीड़ी निकल आई थी।'
मैंने कहा—'ठीक, पर ग्लास फेंकनेकी आवश्यकता न थी।' आपने
[illegible]छ अभिमानके साथ कहा—हम लोग रईस हैं ऐसी पर्वाह नहीं
[illegible]रते।' मैंने कहा—'ठीक, परन्तु यह जो गन्ध महक रही है
[illegible]सकी है?' आप बोले—'तुम्हें यदि सन्देह है तो पीकर देख लो,
[illegible]राज! लाओ एक ग्लास शर्बत गुलाब का इनको पिला दो,
[illegible] इनको पता लग जावेगा क्या है? यह जो सन्देह करते हैं,
[illegible] इन्हें जाने मत दो।'

[illegible] हार गया और देशभक्त [illegible]
[illegible] प्रकाशचन्द्रने [illegible]

उनकी जो अवस्था हुई वह गुप्त नहीं। उनके पिता व भाई साहब आदि सबको उनका कृत्य विदित हो गया। उसी वर्ष उनकी शादी राजा दीनदयाल जो नवाब हैदराबादके यहां रहते थे उनके यहां हो गई। उनका चरित्र सुधारनेके लिये सब कुछ उपाय किये गये परन्तु सब विफल हुए। अन्तमें आप सहारनपुर पहुंच गये और वहां रहनेका जो महल था उसे छोड़कर एक स्वतन्त्र भवनमें रहने लगे।

जब एक बार मैं सहारनपुर लाला जम्बूप्रसाद जीके यहां गया था तब अचानक आपसे भेंट हो गई, आप बलात्कार मुझे अपने भवनमें ले गये और नाना प्रकारके उपालम्भ देने लगे—

'तुम्हें उचित था कि हमें सुमार्ग पर लानेका प्रयत्न करते परन्तु तुमने हमारी उपेक्षा की। आज हमारी यह दशा हो गई कि हमारा १०००) मासिक व्यय है फिर भी त्रुटि रहती है, ये व्यसन ऐसे हैं कि इनमे अरबोंकी सम्पत्ति विला जाती है।'

मैंने कहा—'मैंने तो काशीमें आपको बहुत ही समझाया था कि लालाजी! इस कुकृत्यमें न पड़ो परन्तु आपने एक न मानी और मुझे ही डाटा कि तुम लोग दरिद्र हो, तुम्हें इन नाटकादि रसोंका क्या स्वाद? मैं चुप रह गया, भवितव्य दुर्निवार है।

मेरी बात पूरी न हो पाई थी कि लालाजीने झट बोतलमेंसे कुछ लाल लाल पानी निकाला और एक ग्लास जो छोटा सा था पी गये तथा मुझसे भी बलात्कार पीनेका आग्रह करने लगे। मैंने कहा—'भाई साहब! मुझे दीर्घशङ्का जाना है जाकर आता हूं। उन्होंने कहा—'अच्छा यहीं चले जाओ।' मैं लोटा लेकर मय कपड़ोंके शौचगृहकी ओर जाने लगा, देखते ही आपने टोका 'भले मानुष! कपड़ा तो उतार दे।' मैंने कहा-'जल्दी जाना है।'

३४

हिन्दी यूनीवरसिटीमें जैन कोर्स

मैं श्री शास्त्रीजीसे न्यायशास्त्रका अध्ययन करने लगा। अष्ट सहस्री ग्रन्थ, जो कि देवागम स्तोत्रपर श्री अकलङ्क स्वामी विरचित आठ सौ (अष्टशती) भाष्यके ऊपर श्रीविद्यानन्दि स्वामी कृत आठ हजार श्लोकोंमें गम्भीर विशद विवेचनके साथ आप्त भगवान्के स्वरूपका निर्णय है, पढ़ने लगा। मेरी इस ग्रन्थके ऊपर महती रुचि थी। उसके ऊपर लिखा है।

'श्रोतव्याष्टसहस्री श्रुतैः किमन्यैः सहस्रसङ्ख्यानैः।
विज्ञायेत ययैव स्वसमयपरसमयसद्भावः ॥'

जिसके ऊपर श्री यशोविजय उपाध्यायने लिखा है कि

'विषमा अष्टसहस्री अष्टसहस्रैर्विवेच्यते'—

श्रीशास्त्रीजीके अनुग्रहसे मेरा यह ग्रन्थ एक वर्षमें पूर्ण हो गया। जिस दिन मेरा यह महान् ग्रन्थ पूर्ण हुआ उसी दिन मैंने श्रीशास्त्रीजीके चरण कमलोंमें ५००) की एक हीराकी अंगूठी भेंट कर दी। श्रीयुत पूज्य शास्त्रीजीने बहुत ही आग्रह किया कि यह क्या करता है? तू मामूली छात्र है, इतनी शक्ति तुम्हारी नहीं जो इतना दान कर सको, हमारी अवस्था अंगूठी पहिननेकी नहीं— इत्यादि बहुत कुछ उन्होंने कहा परन्तु मैं उनके चरणोंमें लोट गया, मैंने नम्र शब्दोंमें कहा कि महाराज! आज मुझे इतना हर्ष है

३५

महामन्त्रका अद्भुत प्रभाव

संवत् १९७० की बात है। मैं श्री शास्त्रीजी महोदयसे न्याय-शास्त्रका अध्ययन विश्वविद्यालयमें करने लगा और वहांकी शास्त्रीय परीक्षाका छात्र हो गया। दो वर्षके अध्ययनके बाद शास्त्री परीक्षाका फार्म भर दिया।

उन्हीं दिनों हमारे प्रान्तके ललितपुर नगरमें गजरथ महोत्सव था अतः फार्म भरनेके बाद वहां चला गया। बादमें दो स्थानोंमें और भी गजरथ थे इस तरह दो माससे अधिक समय लग गया। यहां दिन अल्पावशेष थे, शास्त्रीजी महाराज बहुत ही नाराज हुए। बोले- 'यह तुमने क्या किया ?' मैंने कहा-'महाराज ! अपराध तो महान् हुआ इसमें सन्देह नहीं, यदि आज्ञा हो तो परीक्षामें न बैठूं।' शास्त्रीजी बोले—'कितने परिश्रमसे तो जैन छात्रको न्यायसम्बन्धी यूनिवर्सिटीमें प्रवेश कराया और फिर कहता है—परीक्षामें न बैठूंगा।' मैंने कहा—'जो आज्ञा।' उन्होंने आशीर्वाद देते हुए कहा कि अच्छा परिश्रम करो विश्वनाथ मदद करेंगे।

[illegible] दिन परीक्षाके रह गये थे, कई ग्रन्थ तो [illegible] अछूते रह गये जैसे [illegible] आदि। फिर भी

साहस किया। मेरा यह काम रह गया कि प्रातःकाल गङ्गास्नान करना, वहांसे आकर श्री पार्श्वप्रभुके दर्शन करना, इसके बाद महामन्त्रकी एक माला जपना इसके अनन्तर सहस्रनामका पाठ करना फिर पुस्तकोंका अवलोकन करना इसके बाद भोजन करना और फिर सहस्रनामका पाठ करना इसी प्रकार सायंकालको भोजन करना पश्चात् गङ्गा तटपर भ्रमण करना और वहींपर महामंत्रकी माला फेरनेके बाद सहस्रनामका पाठ करना। इस तरह पन्द्रह दिन पूर्ण किये।

सम्वत् १६८० की बात है कि जिस दिन परीक्षा थी उस दिन प्रातःकाल शौचादिसे निवृत्त होकर श्री मन्दिरजी गये और श्री पार्श्वप्रभुके दर्शन कर सहस्रनामका पाठ किया पश्चात् पुस्तक लेकर परीक्षा देनेके लिये विश्वविद्यालय चले गये। मार्गमें पुस्तकके ५-६ स्थल देख लिये। आठ बजे परीक्षा प्रारम्भ हो गई, पर्चा हाथमें आया, श्रीमहामन्त्रके प्रसादसे पुस्तकके जो स्थल मार्गमें देखे थे वे ही प्रश्न पत्रमें आ गये। फिर क्या था? आनन्दकी सीमा न रही। तीन घन्टा तक प्रश्नोंका अच्छे प्रकार उत्तर लिखते रहे अनन्तर पाठशालामें आ गये। इसी प्रकार आठ दिनके पर्चे आनन्दसे किये और परीक्षाफलकी बाट जोहने लगे। सात सप्ताह बाद परीक्षाफल निकला, मैंने बड़ी उत्सुकताके साथ शास्त्रीजीके पास जाकर पूछा—'महाराज! क्या मैं पास हो गया?' महाराजजीने बड़ी प्रसन्नतासे उत्तर दिया—

"अरे बेटा! तेरा भाग्य सर्वदेव निकला, तू पहले डिवीजनमें उत्तीर्ण हुआ, और इतना ही नहीं सर्व प्रथम हुआ, तेरे ८०० नम्बरोंमें ६९० नम्बर आये, अब तू शास्त्राचार्य परीक्षा पास कर, तुझे २५) मासिक छात्रवृत्ति मिलेगी। मैं बहुत ही प्रसन्न हूं कि मेरे द्वारा एक ऐसा छात्रको [illegible] मिला। अब बेटा! [illegible] शास्त्राचार्य [illegible]

परीक्षाका अभ्यास करना इतनेमें ही संतोष मत कर लेना, तेरी बुद्धि क्षणिक है, क्षणिक ही नहीं कोमल भी है, तू प्रत्येकके प्रभावमें आ जाता है अतः मेरी यह आज्ञा है कि अब तुम बालक नहीं, कुछ दिन के बाद कार्यक्षेत्रमें आओगे इससे चित्त को स्थिर कर कार्य करो।'

मैं प्रणाम कर स्थान पर आ गया, क्वीन्स कालेज बनारसकी न्याय मध्यमा तो मैं पहले ही संवत् १९६४में उत्तीर्ण हो चुका था अतः आचार्य प्रथम खण्डके पढ़नेकी कोशिश करने लगा।

३६

बाईजीके शिरःशूल

मुझे कोई व्यग्रता न हो, आनन्दसे पठन पाठन हो...इस अभिप्रायसे बाईजी भी बनारसके भेलूपुरमें रहा करती थीं उनकी कृपासे मुझे आर्थिक व्यग्रता नहीं रहती थी तथा भोजना-दिक व्यवस्थाकी भी आकुलता नहीं करनी पड़ती थी। यह सब सुभीता होनेपर भी ऐसा कठिन संकट उपस्थित हुआ कि बाईजी के मस्तकमें शूलवेदना हो गई और इसी वेदनासे उनकी आंखमें मोतियाबिन्द भी हो गया इन कारणोंसे चित्तमें निरन्तर व्यग्रता रहने लगी।

बाईजी बोलीं—'भैया! व्यग्र मत हो, कर्मका विपाक है, जो किया है उसे भोगना ही पड़ेगा।' मैंने कहा—'बाईजी! यहां पर एक डाक्टर आंखके इलाजमें बहुत ही निपुण हैं, वे महाराज काशीके डाक्टर हैं, उनके मकान पर लिखा है कि जो घर पर आंख दिखावेगा उससे फीस न ली जावेगी।' बाईजीने कहा—'भैया! यह सब व्यापारकी नीति है, केवल अपनी प्रतिष्ठाके लिये उन्होंने यह लिख रक्खा है, मेरा विश्वास है कि उनसे कुछ भी लाभ न होगा।'

मैंने बाईजीकी बात न मानी और तांगा कर उन्हें डाक्टर साहबके घर ले गया। डाक्टर साहबने ५ मिनट देखकर एक

परीक्षाका अभ्यास करना इतनेमें ही संतोष मत कर लेना, तेरी बुद्धि क्षणिक है, क्षणिक ही नहीं कोमल भी है, तू प्रत्येकके प्रभावमें आ जाता है अतः मेरी यह आज्ञा है कि अब तुम बालक नहीं, कुछ दिन बाद कार्यक्षेत्रमें आओगे इससे चित्त को स्थिर कर कार्य करो।'

मैं प्रणाम कर स्थान पर आ गया, क्वीन्स कालेज बनारसकी न्याय मध्यमा तो मैं पहले ही संवत् १९६५में उत्तीर्ण हो चुका था अतः आचार्य प्रथम खण्डके पढ़नेकी कोशिश करने लगा।

३६
बाईजीके सिरसूल

मुझे कोई व्यग्रता न हो, आनन्दसे पठन पाठन हो...इस अभिप्रायसे बाईजी भी बनारसके भेलूपुरमें रहा करती थीं। उनकी कृपासे मुझे आर्थिक व्यग्रता नहीं रहती थी तथा भोजनादिक व्यवस्थाकी भी आकुलता नहीं करनी पड़ती थी। यह सब सुभीता होनेपर भी ऐसा कठिन संकट उपस्थित हुआ कि बाईजीके मस्तकमें शूलवेदना हो गई और इसी वेदनासे उनकी आंखमें मोतियाबिन्द भी हो गया इन कारणोंसे चित्तमें निरन्तर व्यग्रता रहने लगी।

बाईजी बोलीं—'भैया! व्यग्र मत हो, कर्मका विपाक है, जो किया है उसे भोगना ही पड़ेगा।' मैंने कहा—'बाईजी! यहां पर एक डाक्टर आंखके इलाजमें बहुत ही निपुण हैं, वे महाराज काशीके डाक्टर हैं, उनके मकान पर लिखा है कि जो घर पर आकर दिखावेगा उससे फीस न ली जावेगी।' बाईजीने कहा—'भैया! यह सब व्यापारकी नीति है, केवल अपनी प्रसिद्धिके लिये उन्होंने यह लिख रक्खा है, मेरा विश्वास है कि उनसे कुछ भी काम न होगा।'

मैंने बाईजीकी बात न मानी और जबरन उन्हें डाक्टर साहबके घर ले गया। डाक्टर साहबने ५ मिनट देखकर यह

परचा लिख दिया और कहा नीचे अस्पतालसे दवा ले लो। मैंने कहा—'चलो, दवाई तो मिल जावेगी।' नीचे आया, कम्पोटरको दवाका परचा दिया। उसने एक शीशी दी और कहा '१६) इसका मूल्य है लाओ।' मैंने कहा—'बाहर तो लिखा है कि डाक्टर साहब मुफ्तमें नेत्रोंका इलाज करते हैं, यह रुपया किस बातके लेते हो?' कम्पोटर महोदय दृढ़ताके साथ बोले-'यही तो लिखा है कि डाक्टर साहब बिना फीसके इलाज करते हैं यह तो नहीं लिखा कि बिना कीमत दवाई देते हैं। यदि तुम डाक्टर साहबको घर पर बुलाते तो १६) फीस, २) बग्घी भाड़ा तथा दवाईका दाम तुम्हें लगता। यहां आनेसे इतना लाभ तो तुम्हें हुआ कि १८) तुम्हारे बच गये और दवाई लानेके लिये बाजार जाना पड़ता वह समय बच गया, अपना भाग्य समझो कि तुम्हें यह सुभीता नसीब हो गया। अब हमें बात करनेका समय नहीं अब कार्य करना है दवाई लेकर जाओ और १६) हमें दो।'

मैंने चुपचाप उन्हें १६) दे दिये और बाईजीको लेकर नेपुर चला आया। दैवका विशेष कोप कि हमारा पढ़ना लिखना छूट गया। हम संतोषके साथ बाईजीकी वैयावृत्य करनेमें समयका सदुपयोग करने लगे।

बाईजीकी धीरता सराहनीय थी, यही कारण था कि इस वेदना कालमें भी सामायिक समय पर करना, निरन्तर जितना काल स्वस्थ अवस्थामें लगाती थीं उससे न्यून एक मिनट भी न लगाना, किसीसे यह नहीं कहना कि हमको वेदना है और पूर्ववत् हँस मुख रहना आदि उनके कार्य ज्योंके त्यों चालू रहते थे।

एक दिन बोलीं—'बेटा हमको दुःखकी वेदना बहुत है अतः यहांसे देश चलो, वहीं पर इसका प्रतिकार अनायास हो जावेगा।'

हम श्री बाईजीको लेकर बरुआसागर आगये। यहां पर एक साधारण आदमीने किसी वनस्पतिकी जड़ लाकर दी और कहा इसे छेराके दूधमें घिस कर लगाओ, शिरकी वेदना इससे चली जावेगी। ऐसा ही हुआ कि उस दवाईके प्रयोगसे शिरोवेदना तो चला गई परन्तु आंखका मोतियाविन्द नहीं गया।

अन्तमें सबकी यही सम्मति हुई कि झांसी जाकर डाक्टर को आंख दिखा लाना चाहिये।

बंगाली डाक्टर आंखके इलाजमें बहुत ही निपुण था उसे बा
की आंख दिखलाई, उसने १० मिनटमें परीक्षा कर कहा
मोतियाबिन्द है निकल सकता है, चिन्ता करनेको कोई बात न
१५ दिनमें आराम हो जावेगा, हमारी ५०) फीस लगेगी, य
यहां सरकारी वार्डमें न रहोगे तो ५) रोज किरायेपर एक बंगल
मिल जायगा १५ दिन के ७५) लगेंगे तथा एक कंपोटर क
१५ दिनकी १५) फीस पृथक् देना पड़ेगी।

सर्राफने कहा—'कोई बात नहीं, कबसे आ जावें?' उसने
कहा—'कलसे आ जाओ।'

यह सब तय होनेके बाद जब हम लोग चलनेको तैयार हुए
तब डाक्टर साहब बोले—'हमारा भारतवर्ष बहुत चालाक हो
गया है।' मैंने कहा—'डाक्टर साहब इस अनवसर कथाका यहां
क्या अवसर था। यहां तो आंखके इलाजकी बात थी यह कहां
की बलाय कि भारतवर्ष बड़ा चालाक है।'

डाक्टर साहब बोले—'हम तुमको समझाते हैं, हमारा
कहना अनवसर नहीं, तुम व सर्राफजी बाईजीका इलाज कराने
के लिये आये, बाईजीके चिन्हसे यह प्रतीत होता है कि इनके
पास अच्छी सम्पत्ति होनी चाहिये परन्तु वे इस प्रकारका वस्त्र
पहिन कर आईं कि जिससे दूसरेको यह निश्चय हो सके कि इनके
पास कुछ नहीं ऐसा असद्व्यवहार अच्छा नहीं।'

बाईजी बोलीं—'भैया डाक्टर! क्या यह नियम है कि जो
रूपवान् हो उसके पास धन भी हो पर यह कोई सिद्धान्त नहीं
। धनाढ्य और रूपवत्ताकी कोई व्याप्ति भी नहीं है अतः आपका
न दूषित है। अब हम आपसे ऑपरेशन नहीं कराना चाहते,
न्धा रहना अच्छा परन्तु लोभी आदमीसे ऑपरेशन कराना
ला नहीं।'

डाक्टर साहबने बहुत कुछ कहा परन्तु बाईजीने आपरेशन कराना स्वीकार नहीं किया। श्रीमूलचन्द्रजी सर्राफने भी बहुत कुछ कहा परन्तु एककी न चली और बाईजी वहाँसे क्षेत्रपाल-ललितपुर को प्रस्थान कर गई और यह नियम किया कि श्री अभिनन्दन स्वामीका दर्शन-पूजन कर ही अपना जन्म बितायेंगे। यदि कोई निमित्त मिला तो आपरेशन करा लेवेंगे अन्यथा एक जन्म ऐसी ही अवस्थामें यापन करेंगे।

३८

बाईजीका महान् तत्त्वज्ञान

क्षेत्रपाल पहुँचकर बाईजी आनन्दसे रहने लगीं, पासमें ननदकी लड़की थी जो उनकी वैयावृत्त्य करती थी। बाईजीकी दैनिक चर्या इसप्रकार थी—'प्रातः काल सामायिक करना उसके बाद शौचादिसे निवृत्त होकर श्री अभिनन्दन स्वामीके दर्शन करना और वहीं एक घण्टा पाठ करना पश्चात् वन्दना करके १० बजे निवास स्थान पर आकर भोजनसे निवृत्त हो आराम करना फिर सामायिकादि पाठ करके स्वाध्याय श्रवण करना अनन्तर शान्ति रूपसे अपने समयकी उपयोगिता करनेमें तत्पर रहना पश्चात् सायंकालको सामायिक आदि क्रिया करना यदि शास्त्र श्रवणका निमित्त मिल जाय तब एक घण्टा उसमें लगाना अनन्तर निद्रा लेना।'

उन्होंने कभी किसीसे यह नहीं कहा कि हमें बड़ा कष्ट है और न दैनिकचर्यामें कभी शिथिलता की। वे एक दिन मन्दिरजीसे आ रही थीं कि मार्गमें पत्थरकी ठोकर लगनेसे गिर पड़ीं, सेठ मथुरादासजी टड़ैया जो कि प्रतिदिन क्षेत्रपाल पर श्री अभिनन्दन स्वामीकी पूजा करनेके लिये आते थे बाईजीको गिरा देख पश्चात्ताप करते हुए बोले—'क्यों बाईजी चोट लग गई ?' बाईजी हँसती हुई बोलीं—'भैया ? थोड़ी दिनकी अंधी हूं यदि बहुत

जिनको होती तब कुछ अन्दाज होता।' कोई चिन्ताकी बात नहीं, जो अर्जन किया है वह भोगना ही पड़ेगा, इसमें खेद करना व्यर्थ है, आप तो विवेकी हैं—आगमके रसिक हैं। देखो श्री कार्तिकेय मुनिने भी कार्तिकेयानुप्रेक्षामें लिखा है—

> 'जं जस्स जम्मि देसे जेण विहाणेण जम्मि कालम्मि।
> णादं जिणेण णियदं जम्मं वा अहव मरणं वा॥
> तं तस्स तम्मि देसे तेण विहाणेण तम्मि कालम्मि।
> को सक्कइ चालेदुं इंदो वा अह जिणिंदो वा॥'

'जिस जीवके जिस देश और कालमें जिस विधानकर जन्म तथा मरण उपलक्षणसे सुख, दुःख, रोग, शोक, हर्ष, विषाद आदि श्री जिनेन्द्र भगवानने देखा है वह सब उस क्षेत्र तथा उस काल में उसी विधानसे होवेगा—उसे मटनेको अर्थात् अन्यथा करनेको कोई समर्थ नहीं, चाहे इन्द्र हो अथवा तीर्थंकर हो, कोई भी शक्ति संसारमें जन्म, मरण, सुख, दुःख आदि देनेमें समर्थ नहीं।' इसीसे श्री कुन्दकुन्द स्वामीने समयसारके बन्धाधिकारमें लिखा है—

> 'जो मण्णदि हिंसामि य हिंसिज्जामि परेहि सत्तेहिं।
> सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो॥'

'जो यह मानता है कि मैं परकी हिंसा करता हूँ अथवा पर जीवोंके द्वारा मैं मारा जाता हूँ वह मूढ़ है, अज्ञानी है ऐसा श्री जिनेन्द्रदेवका आगम है और ज्ञानी इसके विपरीत है।' इसी प्रकार जो ऐसा मानता है कि मै पर जीवोंको जिलाता हू तथा पर जीवोंके द्वारा मैं जिलाया जाता हू वह भी मूढ़ है—अज्ञानी है परन्तु ज्ञानी जीवकी श्रद्धा इससे विपरीत है। भावार्थ यह है कि न कोई किसीका मारनेवाला है और न कोई

किसीका जिलानेवाला है। अपने आयुकर्मके उदयसे ही प्राणियोंका जीवन रहता है और उसके क्षयसे ही मरण होता है। निमित्त कारणकी अपेक्षा यह सब व्यवहार है तत्त्वदृष्टिसे देखा जावे तो न कोई मरता है न उत्पन्न होता है। यदि द्रव्यदृष्टिसे विचार करो तब सब द्रव्य स्थिर हैं पर्यायदृष्टिसे उदय भी होता है और विनाश भी। जैसा कि श्री समन्तभद्र स्वामीने कहा है—

'न सामान्यात्मनोदेति न व्येति व्यक्तमन्वयात्।
व्येत्युदेति विशेषात्ते सहैकत्रोदयादि सत् ॥'

जब कि इसप्रकार वस्तुकी परिस्थिति है तब दुःखके समय खेद करना व्यर्थ ही है। क्या आपने श्री समयसारके कलशामें नहीं पढ़ा ?

'सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीय-
कर्मोदयान्मरणजीवितदुःखसौख्यम्।
अज्ञानमेतदिह यत्तु परः परस्य
कुर्यात्पुमान्मरणजीवितदुःखसौख्यम् ॥'

'सम्पूर्ण प्राणियोंके मरण, जीवन, दुःख और सुख जो कुछ भी होता है वह सब अपने कर्म विपाकसे होता है। जो मनुष्य ऐसा मानते हैं कि परसे परका मरण जीवन सुख और दुःख होता है वे सब अज्ञानी हैं।' भावार्थ यह है कि न तो कोई किसीका रक्षक है न भक्षक है। तुम्हारी जो यह मान्यता है कि हम सब कुछ कर सकते हैं यह सब अज्ञानकी महिमा है। यह जीव अनादि कालसे पर्यायको ही अपना मान रहा है जो पर्याय पाता है उसीमें निजत्व कल्पना कर 'अहम्बुद्धिका' पात्र होता है और उसी अहम्बुद्धिके पर पदार्थमें ममत्व कर लेता है। जो पदार्थ अपने अनुकूल हुए उन्हें इष्ट और जो प्रतिकूल हुए उन्हें अनिष्ट

किसीका जिलानेवाला है अपने आयुकर्मके उदयसे ही प्राणियों का जीवन रहता है और उसके क्षयसे ही मरण होता है। निमित्त कारणकी अपेक्षा यह सब व्यवहार है तत्त्वदृष्टिसे देखा जावे तो न कोई मरता है न उत्पन्न होता है। यदि द्रव्यदृष्टिसे विचार करो तब सब द्रव्य स्थिर हैं पर्यायदृष्टिसे उदय भी होता है और विनाश भी। जैसा कि श्री समन्तभद्र स्वामीने कहा है—

'न सामान्यात्मनोदेति न व्येति व्यक्तमन्वयात्।
व्येत्युदेति विशेषात्ते सहैकत्रोदयादि सत्॥'

जब कि इसप्रकार वस्तुकी परिस्थिति है तब दुःखके समय खेद करना व्यर्थ ही है। क्या आपने श्री समयसारके कलशामें नहीं पढ़ा ?

'सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीय-
कर्मोदयान्मरणजीवितदुःखसौख्यम्।
अज्ञानमेतदिह यत्तु परः परस्य
कुर्यात्पुमान्मरणजीवितदुःखसौख्यम्॥'

'सम्पूर्ण प्राणियोंके मरण, जीवन, दुःख और सुख जो कुछ भी होता है वह सब अपने कर्म विपाकसे होता है। जो मनुष्य ऐसा मानते हैं कि परसे परका मरण जीवन सुख और दुःख होता है वे सब अज्ञानी हैं।' तात्पर्य यह है कि न तो कोई किसी का रक्षक है न भक्षक है। तुम्हारी जो यह मान्यता है कि हम सब कुछ कर सकते हैं यह सब अज्ञानकी महिमा है। यह जीव अनादि [illegible] पदार्थोंमें ही अपना मान रहा है और [illegible] है [illegible] पर [illegible] होता है और [illegible]

मानकर इष्ट पदार्थकी रक्षा और अनिष्ट पदार्थ की अरक्षामें व्यग्र रहता है ।

बाईजीका तत्त्वज्ञानपूर्ण उत्तर सुनकर श्री सेठ मथुरादासजी दंग रह गये । सेठजीको उत्तर देनेके बाद बाईजी अपने स्थानपर आईं और भोजनादिसे निवृत्त होकर मध्यान्हकी सामायिकके अनन्तर मुझसे बोलीं—'बेटा ! अभी हमारा असाताका उदय है, अतः मोतियाबिन्दकी औषधि व ऑपरेशन न होगा तुम मेरे पीछे अपना पढ़ना न छोड़ो और शीघ्र ही बनारस चले जाओ ।'

मैंने कहा—'बाईजी ! मुझे धिक्कार है कि आपकी ऐसी अवस्थामें जब कि आँखोंसे दिखाता नहीं मैं बनारस चला जाऊं । यद्यपि मैं आपकी कुछ भी वैयावृत्त्य नहीं कर सकता पर कमसे कम स्वाध्याय तो आपके समक्ष कर देता हूं ।'

उन्होंने उपेक्षाभावसे कहा—'यह सब ठीक है पर यह काम तो पुजारी कर देवेगा तुम विलम्ब न करो और शीघ्र बनारस चले जाओ परीक्षा देकर आ जाना ।

मैं बाईजीके विशेष आग्रहसे बनारस चला गया और श्री शास्त्रीजीसे पूर्ववत् अध्ययन करने लगा परन्तु चित्त बाईजीकी बीमारीमें था अतः अभ्यासकी शिथिलता रहती थी फल यह हुआ कि मैं परीक्षामें अनुत्तीर्ण हो गया। परीक्षा देनेके बाद शीघ्र ही मैं ललितपुर लौट आया ।

३६

डाक्टर या सहृदयताका अवतार

एक दिन बाईजी बगीचेमें सामायिक पाठ पढ़नेके अनन्तर—

'राजा राणा छत्रपति हाथिनके असवार।
मरना सबको एक दिन अपनी अपनी बार॥'

आदि बारह भावना पढ़ रहीं थीं अचानक एक अंग्रेज जो उसी बागमें टहल रहा था उनके पास आया और पूछने लगा—'तुम कौन हो' बाईजीने आगन्तुक महाशयसे कहा—'पहले आप बताइये कि आप कौन हैं? जब मुझे निश्चय हो जावेगा कि आप अमुक व्यक्ति हैं तभी मैं अपना परिचय दे सकूंगी।' आगन्तुक महाशयने कहा—'हम झांसीकी बड़ी अस्पतालके सिविलसर्जन हैं, आंखके डाक्टर हैं और लन्दनके निवासी अंग्रेज हैं।' बाईजीने कहा—'तब मेरे परिचयसे आपको क्या लाभ?' उसने कहा कुछ लाभ नहीं परन्तु तुम्हारे नेत्रोंमें मोतियाबिन्द हो गया है एक आंखका निकालना तो अब व्यर्थ है क्योंकि उसके देखनेकी शक्ति नष्ट हो चुकी है पर दूसरी आंखमें देखनेकी शक्ति है उसका मोतियाबिन्द दूर होनेसे तुम्हें दीखने लगेगा।'

अब बाईजीने मेरे अपनी आत्मकथा सुनाई, अपनी उदरकी व्यवस्था, धर्माचरणकी व्यवस्था आदि सब कुछ उसे सुना दिया और मेरी ओर इशारा कर यह भी कह दिया कि इस बालकका

मैं पाल रही हूँ तथा इसे धर्मशास्त्र पढ़ानेके लिये बनारस रखती हूँ। मैं भी वहां रहती थी पर आंख खराब हो जानेसे यहां चली आई हूँ।

उसने पूछा—'तुम्हारा निर्वाह कैसे होता है ?' बाईजीने कहा—'मेरे पास १००००) रुपये हैं उसका १००) मासिक सूद आता है उसीमें मेरा, इस लड़केका, इसकी मांका और इस बच्चेका निर्वाह होता है। आंखके जानेसे मेरा धर्म कार्य स्वतन्त्रतासे नहीं होता।'

डाक्टर महोदयने कहा—'तुम चिन्ता मत करो, हम तुम्हारी आंख अच्छी कर देगा।'

बाईजीने कहा—महाशय ! मैं आपका कहना सत्य मानती हूँ परन्तु एक बात मेरी सुन लीजिये वह यह कि मैं एक बार झांसी की बड़ी अस्पतालमें गई थी। वहांपर एक बंगाली महाशयने मेरी आंख देखी और ५०) फीस मांगी मैंने देना स्वीकार किया परन्तु उन्होंने यह कहा कि भारतवर्षके मनुष्य बड़े बेईमान होते हैं तुम्हारे शरीरसे तो यह प्रत्यय होता है कि तुम धनशाली हो परन्तु कपड़े दरिद्रों कैसे पहने हो। मुझे उसके यह वचन तीरकी तरह चुभे। भला आप ही बतलाइये जो रोगीके साथ ऐसे अनर्थ-पूर्ण वाक्योंका व्यवहार करे उसमें रोगीकी श्रद्धा कैसे हो ? इसी कारण मैंने यह विचार कर लिया था कि अब परमात्माका स्मरण करके ही शेष आयु बिताऊंगी, व्यय ही खेद क्यों करूं ? जो कमाया है उसे आनन्दसे भोगना ही उचित है।'

सुनकर डाक्टर साहब बहुत प्रसन्न हुए बोले—'अच्छा हम अपना दौरा कैंसल करते हैं, सात बजे डाकगाड़ीसे झांसी जाते हैं, तुम पेसिंजर गाड़ीसे झांसी अस्पतालमें कल नौ बजे आओ वहीं तुम्हारा इलाज होगा।'

बाईजीने कहा—'मैं अस्पतालमें न रहूंगी, दादूकी परवार धर्मशालामें रहूंगी और नौ बजे श्रीभगवान्‌का दर्शन पूजन कर आऊंगी। यदि आपको मेरे ऊपर दया है तो मेरे प्रश्नका उत्तर दीजिये।'

डाक्टर महोदय न जाने बाईजीसे कितने प्रसन्न थे। बोले—'तुम जहां ठहरोगी मैं वहीं आ जाऊंगा परन्तु आज ही झांसी जाओ, मैं आता हूं।'

डाक्टर साहब चले गये। हम, बाईजी और चिनिया रात्रिके ११ बजेकी गाड़ीसे झांसी पहुंच गये प्रातःकाल शौचादिसे निवृत्त होकर धर्मशालामें आ गये इतने में ही डाक्टर साहब सब सामानके आ पहुंचे। आते ही साथ उन्होंने बाईजीको बैठाया और आंखमें एक औजार लगाया जिससे वह खुली रहे। जब डाक्टर साहबने आंख खुली रखनेका यन्त्र लगाया तब बाईजी ने कुछ सिर हिला दिया। डाक्टर साहबने एक हलकीसी थप्पड़ बाईजीके सिरमें दे दी न जाने बाईजी किस विचारमें निमग्न हो गईं। इतनेमें ही डाक्टर साहबने अस्त्रसे मोतियाबिन्द निकाल कर बाहर कर दिया और पांचों अंगुलियां उठाकर बाईजीके नेत्रके सामने कीं तथा पूछा कि बताओ कितनी अंगुलियां हैं? बाईजीने कहा—'पांच।' इस तरह दो या तीन बार पूछकर आंखमें दवाई आदि लगाई पश्चात् सोते पड़े रहनेकी आज्ञा दी। इसके बाद डाक्टर साहब १६ दिन और आये। प्रति दिन दो बार आते थे अर्थात् ३२ बार डाक्टर साहबका शुभागमन हुआ। साथमें एक कम्पोटर तथा डाक्टर साहबका एक बालक भी आता था। बालककी उमर १० वर्षके लगभग होगी—बहुत ही सुन्दर था वह।

जहां बाईजी लेटी थीं उसीके सामने बाईजी तथा हम लोगोंके लिये भोजन बनता था। पहले ही दिन बालककी दृष्टि सामने

भोजनके ऊपर गई। उस दिन भोजनमें पापड़ तैयार किये गये थे, बालकने ललिताबाईसे कहा—'यह क्या है ?' ललिताने बालकको पापड़ दे दिया, यह लेकर खाने लगा। ललिताने एक पूड़ी भी दे दी।' उसने बड़ी प्रसन्नता से उन दोनों वस्तुओंको खाया। उसे न जाने उनमें क्यों आनन्द आया यह प्रतिदिन डाक्टर साहबके साथ आता और पूड़ी तथा पापड़ खाता। बाईजीके साथ उसकी अत्यन्त प्रीति हो गई—आते ही साथ कहने लगे—'पूड़ी पापड़ मगाओ।' अस्तु,

सोलहवें दिन डाक्टर साहबने बाईजीसे कहा कि आपकी आख अच्छी हो गई कल हम चश्मा और एक शीशीमें दवा देंगे। अब आप जहां जाना चाहें सानन्द जा सकती हैं। यह कहकर डाक्टर साहब चले गये। जो लोग बाईजीको देखनेके लिये आते थे वे बोले 'बाईजी ! डाक्टर साहबकी एक बारकी फीस १६) है अतः ३२ बारके ५१२) होंगे जो आपको देना होंगे अन्यथा वे अदालत द्वारा वसूल कर लेवेंगे।' बाईजी बोलीं—'यह तो तब होगा जब हम न देवेंगे।'

उन्होंने गबदू पंसारीसे जो कि बाईजीके भाई लगते थे कहा कि ५१२) दूकानसे भेज दो। उन्होंने ५१२) भेज दिये फिर बाजारसे ४०) का मेवा फल आदि मंगाया और डाक्टर साहबके आनेके पहले ही सबको थालियोंमें सजाकर रख दिया। दूसरे दिन प्रातः काल डाक्टर साहबने आकर आंखमें दवा डाली और चश्मा देते हुए कहा—'अब तुम आज ही चली जा सकती हो।' जब बाईजीने नकद रुपयों और मेवा आदिसे सजी हुई थालियोंकी ओर संकेत किया तब उन्होंने विस्मयके साथ पूछा—'यह सब किसलिये ?'

बाईजीने नम्रताके साथ कहा—'मैं आपके सदृश महापुरुषका क्या आदर कर सकती हूँ ? पर यह तुच्छ भेंट आपको समर्पित

और यह जो मेवा फलादि रखे हैं इनमेंसे तुम्हारे आशीर्वाद रूप कुछ फल लिये लेता हूँ शेष आपकी जो इच्छा हो सो करना तथा ११) कम्पान्डरको दिये देते हैं अब आप किसीको कुछ नहीं देना। अच्छा, अब हम जाते हैं, हाँ, यह बच्चा आप लोगोंसे बहुत हिल गया है, तुम लोगोंकी खानेकी प्रक्रिया बहुत ही निर्मल है अल्प व्ययमें ही उत्तमोत्तम भोजन आपको मिल जाता है। हमारा बच्चा तो आपके पूड़ी-पापड़से इतना खुश है कि प्रतिदिन खानसामाको डाटता रहता है कि तू बाईजीके यहाँ जैसा स्वादिष्ट भोजन नहीं बनाता। हमारे भोजनमें ऊपरकी सफाई है परन्तु अभ्यन्तर कोई स्वच्छता नहीं। सबसे बड़ा तो यह अपराध है कि हमारे भोजनमें कई जीव मारे जाते हैं तथा जब मांस पकाया जाता है तब उसकी गन्ध आती है परन्तु हम लोग वहाँ जाते नहीं अतः पता नहीं लगता। तुम्हारे यहाँ जो दूध लानेकी पद्धति है वह अति उत्तम है। हम लोग मदिरापान करते हैं जो कि हमारी निरी मूर्खता है। तुम्हारे यहाँ दो आनाके दूधमें जो स्वादिष्टता और पुष्टता प्राप्त हो जाती है वह हमें २०) का मदिरा पान करने पर भी नहीं प्राप्त हो पाती। परन्तु क्या किया जावे? हम लोगोंका देश शीतप्रधान है अतः बरंडी पीनेकी आदत हम लोगोंको हो गई। जो संस्कार आजन्मसे पड़े हुए हैं उनका दूर होना दुर्लभ है। अस्तु, आपकी चर्या देख मैं बहुत प्रसन्न हूँ। आप एक दिनमें तीन बार परमात्माकी आराधना करती हैं इतना ही नहीं भोजनकी प्रक्रिया भी आपकी निर्मल है परन्तु एक त्रुटि हमें देखनेमें आई वह यह कि जिस कण्डेमें आपका पानी छाना जाता है वह स्वच्छ नहीं रहता तथा भोजन बनानेवालोंके वस्त्र प्रायः स्वच्छ नहीं रहते और न भोजनका स्थान रसोई बनानेके स्थानसे जुदा रहता है।'

बाईजीने कहा—'मैं आपके द्वारा दिखलाई हुई त्रुटिको दूर करनेका प्रयत्न करूंगी। मैं आपके व्यवहारसे बहुत ही प्रसन्न हूं आप मेरे पिता हैं अतः एक बात मेरी भी स्वीकार करेंगे।' डाक्टर साहबने कहा—'कहो, हम उसे अवश्य पालन करेंगे।' बाईजी बोलीं—'मैं और कुछ नहीं चाहती केवल यह भिक्षा मांगती हूं कि रविवार आपके यहां परमात्माकी उपासनाका दिन माना गया है अतः उस दिन आप न तो किसी जीवको मारें, न खाने के वास्ते खानसामाने मरवावें और न खानेवालेकी अनुमोदना करें... आशा है मेरी प्रार्थना आप स्वीकृत करेंगे।'

डाक्टर साहबने बड़ी प्रसन्नतासे कहा हमें तुम्हारी बात मान्य है। न हम खावेंगे, न मेम साहबको खाने देवेंगे और यह बालक तो पहलेसे ही तुम्हारा हो रहा है, इससे भी हम इस नियमका पालन करावेंगे। आप निश्चिन्त रहिये मैं आपको अपनी माताके समान मानता हूं। अच्छा, अब फिर कभी आपके दर्शन करूंगा।'

इतना कहकर डाक्टर साहब चले गये। हम लोग आधा घंटा तक डाक्टर साहबके गुन गान करते रहे। तथा अन्तमें पुण्यके गुन गाने लगे कि अनायास ही बाईजीके नेत्र सुधरनेका अवसर आगया। किसी कविने ठीक ही तो कहा है—

वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये
महार्णवे पर्वतमस्तके वा ।
सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा
रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि ।

कहनेका तात्पर्य यह है कि पुण्यके [illegible] सम्भा-वना नहीं, वे कष्ट भी अनायास ही कटते हैं अतः [illegible] सुखको चाहते हैं उन्हें पुण्य कार्योंमें [illegible] अपना समय लगाना चाहिये

४०

बुन्देलखण्डके दो महान् विद्वान्

बाईजीके स्वस्थ होनेके अनन्तर हम सब लोग बरुवासागर चले गये और आनन्दसे अपना समय व्यतीत करने लगे। इतनेमें ही क्या हुआ कि कामताप्रसाद, जो कि बाईजीका भाई था, मगरपुर चला गया। वहांसे उसका पत्र आया कि हम बीमार हैं आप लोग जल्दी आओ। हम वहां पहुँचे और उसकी वैयावृत्य करने लगे। उसका हमसे गाढ़ प्रेम था, एक दिन बोला कि हम ५००) आपके फल खानेके लिये देते हैं। मैंने कहा—'हम तो आपकी समाधिमृत्युके लिये आये हैं यदि इस तरह रुपये लेने लगें तो लोकमें अपवाद होगा। आप दान करें, हमसे मोह छोड़ें, मोह ही संसारमें दुःखका कारण है।' वह बोला—'जिस कार्यमें देवेंगे वहां मोहसे ही तो देवेंगे और जहां देवेंगे उसका उत्तर कालमें क्या उपयोग होगा? इसका निश्चय नहीं। यदि आपको देवेंगे तो यह निश्चित है कि विद्याध्ययनमें हो मेरी सम्पत्ति जावेगी। आप ही कहें मैं कौनसा अन्याय कर रहा हूँ? आपको उचित है कि ५००) लेना स्वीकार करें यदि आप न लेंगे तो मुझे शल्य रहेगी अतः यदि आप मेरे हितू हैं तो इस देय द्रव्यको स्वीकार करिये। मैं चोरीसे नहीं देता, आपको पात्र जानकर सबके सामने देता हूं। जब मेरी बहिनने आपको पुत्रवत्

पाकर मुझसे बोले—'शान्ति क्या कहे था।' मैंने कहा—'कुछ नहीं कहते थे।' पर शास्त्रीजी तो अपने कानसे सब सुन चुके थे, बोले—'उसे अभिमान है कि हम न्याय शास्त्रके विद्वान् हैं।' सामने बुलाकर बोले—'अच्छा शान्ति! यह तो बताओ कि न्याय किसे कहते हैं?' आध घण्टा पिता पुत्रका शास्त्रार्थ हुआ पर पिताके समक्ष शान्तिलाल न्यायका लक्षण बनानेमें असमर्थ रहे।

पाठकगण! यहाँ यह नहीं समझना कि शान्तिलाल विद्वान् न थे परन्तु वृद्ध पिताके समक्ष अवाक् रह गये। इसका यह तात्पर्य है कि दुलारझा ने ४० वर्षकी अवस्था तक नवद्वीपमें अध्ययन किया था। वृद्ध बाबा बड़े निर्भीक थे—उनका कहना था कि मैं न्यायशास्त्रमें वृहस्पतिसे भी नहीं डरता। अस्तु,

मैं शान्तिलालजीको लेकर बरुआसागर चला आया। श्री सर्राफ मूलचन्द्रजी उन्हें ३०) मासिक देने लगे मैं उनसे पढ़ने लगा। मैं जब यहाँके मन्दिरमें जाता था तब श्री देवकीनन्दनजी भी दर्शनके लिये पहुँचते थे। इनके पिता बहुत बुद्धिमान् और जातिके पञ्च थे। बहुत ही सुयोग्य व्यक्ति थे। उनका कहना था कि यह बालक बुद्धिमान् तो है परन्तु दिन भर उपद्रव करता है अतः इसे आप बनारस ले जाइये। मैंने देवकीनन्दनसे कहा—'क्यों भाई! बनारस चलोगे?' बालकने कहा—'हाँ, चलेंगे।'

मैं जब उसे बनारस ले जानेके लिये राजी हो गया तब सर्राफजीने यह कहते हुए बहुत निषेध किया कि क्यों उपद्रवकी जड़ लिये जाते हो? परन्तु मैंने उनकी एक न सुनी। उन्होंने बाईजीसे भी कहा कि ये व्यर्थ ही उपद्रवकी जड़ साथ लिये जाते हैं पर बाईजीने भी कह दिया कि भैया! तुम जिसे उपद्रवी

नादिकी व्यवस्थाके लिये इन्दौर रहते हैं और सर सेठ साहबके दरबारकी शोभा बढ़ा रहे हैं।

इसी प्रकार समाजके प्रमुख विद्वान् और धर्मशास्त्रके अद्वितीय मर्मज्ञ पं० वशीधरजी न्यायालकार भी जो कि महरौनीके रहनेवाले हैं सर सेठ साहबके दरबारकी शोभा बढ़ा रहे हैं। हमारे प्रान्तमें यदि कोई उदार प्रकृतिका धनाढ्य होता तो उक्त दोनों विद्वानोंको अपने प्रान्तसे बाहर नहीं जाने देता और ये इसी प्रान्तका गौरव बढ़ाते। चूँकि इस प्रान्तके ही अन्न जलसे इन लोगोंका बाल्यकाल पल्लवित हुआ है अतः इस प्रान्तके भाईयोंका भी आपके ऊपर अधिकार है और उसका उपकार करना इनका कर्त्तव्य है।

इनके यहां रहनेमें दो ही कारण हो सकते हैं या तो कोई सर सेठ साहबकी तरह उदार प्रकृतिका हो या ये निरपेक्ष वृत्ति धारण कर स्वयं उदार बन जावें। मेरी तो धारणा है कि 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' इस सिद्धान्तानुसार सम्भव है कि इन दोनों महानुभावोंके चित्तमें हमारे प्रान्तके प्रति करुणा भाव उत्पन्न हो जावे और उस दशामें हम तो स्वय इन दोनोंको इस प्रान्तके श्रीमन्त समझने लगेंगे। विशेष क्या लिखूँ ? यह प्रासङ्गिक बात आ गई।

४१

चकौती में

संवत् १९८४ की बात है—बनारससे मैं श्री शान्तिलाल नैयायिकके साथ चकौती जिला दरभंगा चला गया और वहीं पर पढ़ने लगा। जिस चकौतीमें मैं रहता था वह ब्राह्मणोंकी बस्ती थी, अन्य लोग कम थे, जो थे वे इन्हींके सेवक थे।

इस ग्राममें बड़े बड़े नैयायिक विद्वान् होगये हैं, उस समय भी वहां ४ नैयायिक, २ ज्योतिषी, २ वैयाकरण और २६ धर्मशास्त्रके प्रसिद्ध विद्वान् थे। इन नैयायिकोंमें सहदेव झा भी एक थे, यह बड़े बुद्धिमान् थे, इनके यहां कई छात्र बाहरसे आकर न्यायशास्त्रका अध्ययन करते थे। मेरा भी चित्त इन्हींके पास अध्ययन करनेका होगया। यद्यपि यह बात श्री शान्तिलालजीको बहुत अनिष्टकारक हुई तो भी मैं उनके पास अध्ययन करने लगा।

वहां पर एक गिरिधर शर्मा भी रहते थे जो बड़े चलते पुरजा थे। मेरा उनके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होगया। मैं सामान्य निरुक्तिकी विवेचना पढ़ता था। वहांका समस्त वातावरण न्यायशास्त्रमय था जहां देखो वहां 'अवच्छेदकावच्छेदेन' की ध्वनि सुनाई देती थी, परन्तु वहांकी एक बात मुझे बहुत ही अनिष्टकर थी वह यह कि वहांके सब मनुष्य मत्स्य-मांसभोजी थे। यहां

दृश्य आंखोंके सामने उपस्थित होने लगा। इस तरह कई दिन सूखे चने और चांवल खा खाकर दिन काटे। जब उदराग्नि प्रज्वलित होती है और भूखकी वेदना नहीं सही जाती तब आंख बन्द कर खा लेता हूँ।'

मेरी कथाको श्रवणकर बुड्ढे ब्राह्मण महाराजको दया आगई। उन्होंने मोहल्लाके सब ब्राह्मणोंको बुलाकर यह प्रतिज्ञा करायी कि जब तक यह अपने ग्राममें ज्ञान लाभसे रहे तब तक आप लोग मत्स्य मांस न बनावें और न देवी पर बलिप्रदान करें यह भद्र प्रकृतिका बालक है इसके ऊपर हमें दया करना चाहिये।'

इस तरह मेरा वहां निर्वाह होने लगा, आटा आदिकी भी व्यवस्था हो गई और आनन्दसे अध्ययन चलने लगा।

४२

द्रौपदी

इसी चक्रीतीमें एक ऐसी विलक्षण घटना हुई कि जिसे सुनकर पाठकगण आश्चर्यान्वित हो जावेंगे। इस घटनामें आप देखेंगे कि एक ही पर्यायमें जीव पापात्मासे पुण्यात्मा किस प्रकार होता है। घटना इस प्रकार है—

यहां पर एक ब्राह्मण था जो बहुत ही प्रतिष्ठित धनाढ्य, विद्वान् और राज्यमान था। उसकी एक पुत्री थी—द्रौपदी। जो अत्यन्त रूपवती थी, केश उसके इतने सुन्दर और लम्बे थे कि एड़ीतक आते थे और मुखकी कान्ति इतनी सुन्दर थी कि उसे देख कर अच्छे अच्छे रूपवान् पुरुष और रूपवती स्त्रियां लज्जित हो जाती थीं।

दुर्भाग्यवश वह बाल्यावस्थासे ही विधवा हो गई। उस कन्याके साथ उसके माता पिताका अत्यन्त गाढ़ प्रेम था अतः उन्होंने उसे उसके श्वसुर गृह नहीं भेजा। अन्तमें उसका चरित्र भ्रष्ट हो गया। कई तो उसने गर्भपात किये परन्तु पिताके स्नेहसे वह अन्यत्र नहीं भेजी गई। रुपयाके बलसे उसके सब पाप छिपा दिये जाते थे परन्तु पाप भी कोई पदार्थ है जो छिपायेसे नहीं छिपता।

उसके नामका एक सरोवर था उसका पानी अपेय हो गया। उसीके नामका एक बाग भी था उसमें जो फल लगते थे उनमें पकने पर कीड़े पड़ने लगे इससे उसके पापकी चर्चा ग्राम भरमें फैल गई। पापके उदयमें जो न हो सो अल्प है।

कुछ कालके बाद द्रौपदीके चित्तमें अपने कुकृत्यों पर बड़ी घृणा हुई उसने मन्दिरमें जाकर बहुत ही पश्चात्ताप किया और घर आकर अपने पितासे कहा—'पिता जी! मैंने यद्यपि बहुत ही भयंकर पाप किये हैं परन्तु आज मैंने अन्तरङ्गसे इतनी निन्दा गर्हा की है कि अब मैं निष्पाप हूं। अब मैं श्री जगन्नाथ जी की यात्राको जाती हूँ वहांसे श्री वैद्यनाथ जाऊँगी, वहीं पर वैद्यनाथ जी को जल चढ़ाऊंगी और जिस समय 'ओं शिवाय नमः' कहती हुई जल चढ़ाऊंगी उसी समय महादेवजीके कैलाशलोकको चली जाऊंगी।

द्रौपदीकी यह बात सुनकर उसके पिता बहुत ही प्रसन्न हुए और गद्गद स्वरमें बोले—'बेटी! मैं तुम्हारी कथा सुनकर अत्यन्त प्रमोदको प्राप्त हुआ हूं। मैं आस्तिक्य हूँ अतः यह मानता हूं कि ऐसा होना असम्भव नहीं। ऐसे अनेक उपाख्यान शास्त्रोंमें आते हैं जिनमें भयंकर पाप करनेवालोंका भी उसी जन्ममें उद्धार होना लिखा है। अच्छा, यह बताओ कि यात्रा कब करोगी?'

पुत्रीने कहा—वैशाख सुदि पूर्णिमाके दिन यात्राके लिये जाऊँगी। अब क्या था, सम्पूर्ण नगरके लोग उस दिनकी प्रतीक्षा करने लगे। बहुतसे स्त्री पुरुष भक्तिसे प्रेरित हो यात्राकी तैयारी करने लगे और कितने ही कौतुक देखनेकी उत्सुकतासे यात्राके लिये चेष्टा करने लगे। सभीके मनमें इस बातका कौतुक

था कि जिसने आजन्म पाप किये हैं वह भला शिवलोकको सिधारे ? बहुत कहनेसे क्या लाभ ? अन्तमें वैशाखकी पूर्णिमा आ गई, प्रातःकाल ९ बजे यात्राका मुहूर्त्त था गाजे बाजेके साथ द्रौपदी घरसे बाहर निकली। ग्राम भरके नर-नारी उसे पहुँचानेके लिये ग्रामके बाहर आध मील तक चले गये।

द्रौपदीने समस्त नर-नारियोंसे सम्बोधन कर प्रार्थना की और कहा कि मैंने गुरुतर पाप किये—कामके वशीभूत होकर यहांपर जो अनुग्रह दा यज्ञा है इसके साथ गुप्त पाप किये, सहस्रों रुपये इसे खिलाये, ५ बार भ्रूण हत्यायें भी कीं। अपने द्वारा किये हुए पापोंकी याद आते ही मेरी आत्मा सिहर उठती है। परन्तु आजसे २० दिन पहले मुझे अपनी आत्मामें बहुत ग्लानि हुई और यह विचार मनमें आया कि जो आत्मा पाप करनेमें समर्थ है वह उसे त्याग भी सकता है। यह कोई नियम नहीं कि जो आज पापी है वह सर्वदा पापी ही बना रहे। यदि ऐसा होता तो कभी किसीका उद्धार ही नहीं हो पाता। आत्मा निमित्त पाकर पापी हो जाता है और निमित्त पाकर पुण्यात्मा भी बन सकता है। हमारा आत्मा इन विषयोंके वशीभूत होकर निरन्तर अनर्थ करनेमें ही तत्पर रहा अन्यथा यह इस प्रकार दुर्गतिका पात्र नहीं होता। मैं एक कुलीन कुलमें उत्पन्न हुई, मेरा बाल्य-काल बड़ी ही पवित्रतासे बीता, मैंने विष्णुसहस्रनाम आदि स्तोत्र पढ़े और उनका पाठ भी किया। मेरे पिताने मुझे गीताका भी अध्ययन कराया था मैं उसका भी पाठ करती थी। गीता पाठसे मेरी यह श्रद्धा हो गई थी कि आत्मा अजर अमर है निर्लेप है, अनादि अनन्त है परन्तु यह सब होते हुए भी मैं इस मनुष्यके द्वारा पाप पङ्कमें लिप्त हो गई। इस घटनासे मुझे यह निश्चय हुआ कि आत्मा सर्वथा निर्लेप नहीं यदि सर्वथा

इसके सिवाय एक बात और कहना चाहती हूँ वह यह कि भगवान् दीनदयालु हैं उनकी दया प्राणीमात्रके ऊपर होनी चाहिये। पशु भी एक प्राणी है उन्होंने ऐसा कौनसा अपराध किया कि उन निरपराधोंका दुर्गादेवीके सामने बलि चढ़ाया जाता है। जिसका नाम जगदम्बा है उसे उसीका पुत्र मारकर दिया जावे यह घोर पाप है जो कि हम लोगोंमें आ गया है और इसीसे हमारी जातिमें प्रति दिन शान्तिका अभाव होता जाता है। देखो, इनकी विचारधारा कहाँ तक दूषित हो गई। एकने तो यहाँ तक अनर्थ किया कि जिसे कहती हुई मैं कम्पायमान हो जाती हूँ—

> 'केचिद्वदन्त्यमृतमस्ति सुरालयेषु
> केचिद्वदन्ति वनिताधरपल्लवेषु।
> ब्रूमो वयं सकलशास्त्रविचारदक्षा
> जम्बीरनीरपरिपूरितमांसखण्डे ॥'

इस प्रकार मांसभक्षकोंने संसारमें नाना अनर्थ फैलाये हैं, जिनके मांसका भोजन है उनके दयाका लेश नहीं। देखो, जो पशु मांस खाते हैं वे महान् निर्दयी होते हैं उनसे प्राणीगण सदा भयभीत रहते हैं पर जो मांस नहीं खाते उनसे किसीको भय नहीं लगता। सिंहके सामने अच्छेसे अच्छे बलिष्ठ पेशाब कर देते हैं इसका कारण यही तो है कि यह हमारा मांस भक्षण करनेवाला हिंसक प्राणी है। हाथी घोड़ा गाय ऊँट आदि वनस्पति खानेवाले जीव हैं अतः इन्हें देखकर किसीको भय नहीं होता, अतः जिस मांसके खानेसे क्रूर परिणाम हों उसे त्याग देना ही उचित है। देखो, आपके सामने जो गणेशप्रसाद खड़े हैं यह जैनी हैं इनका भोजन अन्न है, अपना ग्राम इतना बड़ा है यहाँ पर १००० ब्राह्मणोंका निवास है, ब्राह्मणों का ही नहीं पण्डितोंका

इसके बाद द्रौपदी बाईने जगन्नाथ स्वामीकी यात्राके लिये जोगिया स्टेशन जिला दरभंगासे प्रस्थान किया। यहाँ तक तो हमारा देखा दृश्य है इसके बाद जो महाशय उसके साथ गये थे उन्होंने यात्रासे वापिस आकर हमसे जो कहा वह पाठकोंके अवलोकनार्थ ज्योंका त्यों यहाँ लिखते हैं—

प्रथम तो द्रौपदी बाई कलकत्ता पहुंची और कालीके दर्शन करनेके लिये काली मन्दिर गई परन्तु वहाँका रक्तपात देख दर्शनोंके बिना ही वापिस लौट आई। पश्चात् श्री जगन्नाथपुरीकी यात्राके लिये गई और उसके अनन्तर वैद्यनाथजी आ गई। जिस समय स्वच्छ वस्त्र पहिन कर तथा हाथमें जलपात्र लेकर श्री वैद्यनाथजीके ऊपर जलधारा देनेका प्रयत्न करने लगी उस समय वहाँके पंडोंने कहा—'आप जल तो चढ़ाती हैं पर दान-दक्षिणा क्या देंगी?' उसने कहा—'दानकी कथा छोड़ो, हम तो जल चढ़ाकर शिवलोक चले जावेंगे।' पण्डोंको आश्चर्य हुआ कि यह कहाँकी पगली आई? बहुत कहाँ तक लिखें? जिस समय उसने 'ओं शिवाय नमः' कह महादेवके ऊपर जलधारा दी उसी समय उसके प्राण पखेरू उड़ गये और सहस्रों नर-नारियोंके गुणगानमें सारा मन्दिर गूंज उठा।

इस कथानकके लिखनेका तात्पर्य यह है कि अधमसे अधम प्राणी भी परिणामोंकी निर्मलतासे देवगति प्राप्त कर सकता है।

४३

नीच जाति पर उच्च विचार

अब मैं आपको यह दिखाना चाहता हूँ कि मणि, म[illegible]
और औषधिमें अचिन्त्य शक्ति है। इसी चवौती ग्राममें मे[illegible]
पीठमें अदृष्ट फोड़ा हो गया, रात दिन दाह होने लगी, ए[illegible]
मिनटको भी चैन नहीं पड़ती थी निद्रादेवी पलायमान हो
गई, क्षुधा-तृषाकी वेदना चली गई, 'हे भगवन्' के सिवाय कुछ
नहीं उच्चारण होता था। रात्रि-दिन वेदनामें ही समय जाता
था। मोहल्लाभर मेरी वेदनासे दुःखी हो गया। कोई कहता कि
दरभंगा अस्पतालमें ले चलो, कोई कहता कि औषधि तो खाता
नहीं अस्पतालमें ले जाकर क्या करोगे? कोई कहता कि दुर्गा
सप्तशतीका पाठ कराओ, कोई कहता कि विष्णु-सहस्र-
नामका पाठ कराओ और कोई कहता कि चिन्ता मत करो
कर्मका विपाक है अपने आप शान्त हो जावेगा।

बहुत कुछ तर्क वितर्क होने पर भी अन्तमें कुछ स्थिर न
हो सका इतनेमें विहारी मुसद्दी वहांसे जा रहा था उसने मेरी
वेदना देख कर कहा कि यह इतना बेचैन क्यों है? लोगोंने कहा
[illegible] इनके पीठमें अदृष्ट फोड़ा हो गया है और वह बढ़ते बढ़ते
[illegible] बराबर हो गया है इसीसे रात्रि दिन बेचैन रहता है।
[illegible] औषधि नहीं जानते? लोगोंने कहा— इनने

तो बीसों दवाइयाँ की पर किसीने आराम नहीं पहुँचाया।' त
विहारी बोला—'अच्छा आप चिन्ता छोड़ देवें, यदि परमात
की अनुकम्पा हुई तब यह आज ही अच्छा हो जावेगा। अच्छा
मैं जाता हूँ और जड़ी लाता हूँ।' वह गया और १५ मिनट
औषध लेकर आ गया। उसने दवाईको पीस कर कहा कि
इसे बांध दो यदि इसका उदय अच्छा हुआ तो प्रातः काल त
फोड़ा बैठ जायगा या पककर फूट जायगा। लोग हँसने लगे
तब विहारी बोला कि हँसनेकी आवश्यकता नहीं 'हाथके कंगनके
आरसीकी क्या आवश्यकता?'

सायंकालके ५ बजे थे, मुझसे उसने कहा कि कुछ खान
हो तो खा लो पानी पीलो फिर इस दवाईको बांध कर से
जाओ १२ घंटे नींद आवेगी। मैं हँस पड़ा और कुछ मिष्टा
खा कर दवाईके लगाते ही दाहकी वेदना शान्त हो गई औ
एकदम निद्रा आ गई। आठ दिनसे निद्रा न आई थी इससे
एकदम सो गया और १२ घंटेके बाद निद्रा भंग हुई। पीठ पर
हाथ रक्खा तो फोड़ा नदारत। मैंने उसी समय पण्डितजीको
बुलाया और उनसे कहा कि देखिये, मेरी पीठमें क्या फोड़ा
है? उन्होंने कहा—'नहीं है।' फिर मैं आनन्दसे शौचको गया
वहांसे आकर स्नानादिसे निवृत्त हो नैयायिकजीसे पाठ
पढ़ने लगा।

ग्रामके लोग आश्चर्यमें पड़कर कहने लगे कि देखो, भारत-
वर्षमें अब भी ऐसे ऐसे जानकार हैं। इनका जो फोड़ा बड़े बड़े
वैद्योंके द्वारा भी असाध्य कह दिया गया था उसे विहारी
मुसद्दइने एक बारकी औषधमें ही नीरोग कर दिया।

४ बजे विहारी मुसद्दइ फिर आया मैंने उसे बहुत ही धन्य-
वाद दिया और १० का नोट देने लगा परन्तु उसने नहीं लिया।

मजदूरी करनेका है उसमें जो कुछ मिल जाता है उसीसे संतोष कर लेता हूँ। सूखा दाल भात हमारा भोजन है शाम तक परमात्मा दे ही देता है आपसे दस रुपया लेकर मैं लालची नहीं बनना चाहता। आप जीते हैं और हम भी जीते हैं। वे जो आपके पास बैठे हैं सब अच्छे किसान हैं परन्तु इन्हें दयाका लेश नहीं। जैसा फोड़ा आपको हुआ था वैसा यदि इन्हें या इनकी संतानको होता तो न जाने कितनी पशुहत्या हो जाती। इनका यही काम रह गया है कि जहां घरमें बीमारी हुई कि देवीको बकरा चढ़ानेका संकल्प करा लिया। मैं जातिका मुसहड़ हूं और मेरे कुलमें निरन्तर हिंसा होती है। परन्तु मैंने ५ वर्षसे हिंसा त्याग दी है। इसका कारण यह हुआ कि मैं एक दिन शिकारके लिये धनुष बाण लेकर वनमें गया था। पहुँचते ही एक बाण हिरनीको मारा वह गिर पड़ी मैंने जाकर उसे जीवित ही पकड़ लिया वह बाणसे मरी नहीं थी घर जाकर मैंने विचार किया कि आज इसे मारकर सब कुटुम्ब पेटभर इसका मांस खावेंगे। हम लोग जब उसे मारने लगे तब उसके पेटसे बिलबिलाता हुआ बच्चा निकल पड़ा और थोड़ी देरके बाद छटपटा कर मर गया। उसकी वेदना देखकर मैं अत्यन्त दुखी हो गया और भगवान् से प्रार्थना करने लगा कि हे प्रभो! मैं अधमसे अधम नर हूँ, मैंने जो पाप किये हैं हे परमात्मन्! अब उन्हें कौन क्षमा कर सकता है? जन्मान्तरमें भोगना ही पड़ेंगे परन्तु अब आपके समक्ष प्रतिज्ञा करता हूँ कि आजसे किसी प्राणीको न सताऊंगा, जो कुछ कर चुका उसका पश्चात्ताप करता हूं। उस दिनसे न तो मेरे घरमें मांस पकता है और न मेरे बालबच्चे ही मांस खाते हैं। मेरे जो खेत हैं उनमें इतना धान पैदा हो जाता है कि उससे मेरा वर्ष भरका खर्च आनन्द से चल जाता है।

अस्तु यह बात तो यहीं रही. यहां जो गिरिधर शर्मा रहते थे और जिनके साथ मेरा अत्यन्त प्रेम हो गया था उन्होंने एक दिन कहा कि तुम यहां व्यर्थ ही क्यों समय यापन करते हो? नवद्वीपको चलो। वहां पर न्यायशास्त्रकी अपूर्व पठनशैली है जो ज्ञान यहां एक वर्षमें होगा वह वहांके सहवासमें एक मासमें ही हो जावेगा। मैं उनके वचनोंकी कुशलतासे चकोती ग्राम छोड़कर नवद्वीपको चला गया।

४४

नवद्वीप, कलकत्ता फिर बनारस

जिस दिन नवद्वीप पहुँचा उस दिन वहां पर छुट्टी थी। लोग अपने अपने स्थानों पर भोजन बना रहे थे। मुझे भी एक कोठरी दे दी गई और गिरधर शर्माने एक कहारिनसे कहा कि इनका चौका लगा दे। तथा बनियाके यहांसे दाल चावल आदि जो यह कहें सो लादे।

मैं स्नान कर और णमोकार मन्त्रकी माला फेर कर भोजनकी कोठरीमें गया। कहारिनने चूल्हा सिलगा दिया था, मैंने पानी छानकर बटलोई चूल्हे पर चढ़ा दी, उसमें दाल डाल दी, एक बटलोईमें चावल चढ़ा दिया। कहारिन पूछती है—'महाशय शाक भी बनाओगे ?' मैंने कहा—'अच्छा मटरकी फली लाओ।' वह बोली—'मछली भी लाऊं ?' मैं तो सुनकर अवाक् रह गया पश्चात् उसे डाटा कि यह क्या कहती है ? हम लोग निरामिषभोजी हैं। वह बोली यहां तो जितने छात्र हैं सब मांसभोजी हैं। यदि आपको परीक्षा करनी हो तो बगलकी कोठरीमें देख सकते हो। यहां पर उसके बिना गुजारा नहीं। मैंने मन ही मन विचार किया कि हे भगवन् ! किस आपत्तिमें आगये ? दाल चावल बनाना भूल गया और यह विचार मनमें आया कि तेरा यहां गुजारा नहीं हो सकता अतः यहांसे

कलकत्ता चलो वहां पर श्रीमान् पण्डित ठाकुरप्रसादजी व्याकरणाचार्य हैं उन्हींसे अध्ययन करना उनसे तुम्हारा परिचय भी है।

उस दिन भोजन नहीं किया गया दो घंटा बाद गाड़ीमें बैठकर कलकत्ता चले गये। वहां पर पण्डित कलाधरजी पद्मावतीपुरवाल थे उनके पास ठहर गये और फिर श्री पण्डित ठाकुरप्रसादजीसे मिले। उन्होंने संस्कृत कालेजमें नाम लिखा दिया तथा एक बंगाली विद्वान्से मिला दिया। मैं उनसे न्याय-शास्त्रका अध्ययन करने लगा।

वहां पर श्री सेठ पद्मराज जी राणीवाले थे मन्दिरमें उनसे परिचय हुआ वे हमारे पास न्यायदीपिका पढ़ने लगे। और उन्होंने अपने रसोईघरमें मेरे भोजनका प्रबन्ध कर दिया। मैं निश्चिन्त हो कर पढ़ने लगा।

इन्हीं दिनों वहां पर बाबा अर्जुनदास जी पण्डित, जिनकी आयु ८० वर्षकी होगी, रहते थे। वे गोम्मटसार और समय-सारके अपूर्व विद्वान् थे। उस समय कलकत्तामें धर्मशास्त्रकी चर्चाका अतिशय प्रचार था। पंगुल गुलझारीलालजी लमेचू तथा अन्य कई महाशय अच्छे अच्छे तत्त्ववेत्ता थे। प्रातःकाल सभामें १०० महाशयसे ऊपर आते थे। वहां सुखपूर्वक काल जाने लगा।

६ मासके बाद चित्तमें उद्वेग हुआ जिससे फिर बनारस चला आया। और श्री शास्त्रीजीसे अध्ययन करने लगा। इन्हींके द्वारा ३ खण्ड न्यायाचार्यके पास किये परन्तु फिर उद्वेग हुआ और कार्यवश बाईजीके पास आ गया।

बाईजीने कहा—'बेटा' तुम्हें ६ खण्ड पास करने थे पर तुम्हारी इच्छा।

———

४५

बाबा शिवलालजी और बाबा दौलतरामजी

मैं कारणवश ललितपुर गया था, वहाँपर रथयात्रा थी उसमें श्री बालचन्द्रजी सवालनवीस सागरनिवासी आये थे। ये धर्मशास्त्रके अच्छे ज्ञाता थे संस्कृत भी कुछ कुछ जानते थे। ये उच्चादिके सवालनवीस थे, जिस अर्जीदावाको ये लिखते थे उसे अच्छे अच्छे वकील और बैरिष्टर भी मान लेते थे। इतना होनेपर भी इनका नित्य प्रति दो घंटा स्वाध्याय होता था। इनके व्याख्यानमें स्वर्गीय पं० मौजीलालजी, स्वर्गीय नाथूरामजी कटरया, स्वर्गीय पन्नालालजी वड़कुर, स्वर्गीय नन्हूलालजी सराफ, करोड़ीमल्लजी सराफ तथा छम्पूलालजी मोदी आदि अच्छे अच्छे श्रोता उपस्थित होते थे। इनके साथ मुझे सागर जानेका अवसर मिला। इनका प्रवचन सुननेका भी मौका मिला, इनको मोक्षमार्ग कण्ठस्थ था, और इनकी तर्कमें अच्छे अच्छे घबड़ा जाते थे। मेरा इनके साथ अतिस्नेह हो गया। सागरमें कुछ दिन ठहरकर मैं श्रीनैनागिर क्षेत्र की वन्दनाके लिये चला गया। वहाँपर श्रावर्णी दौलतरामजीका स्वर्गवास हो गया था। इनके गुरु बाबा शिवलालजी थे जो [illegible] थे। इनका [illegible]

एक बार सामायिक करते समय इनके ऊपर चींटी चढ़ गई परन्तु वे अपने ध्यानसे चलायमान नहीं हुए। इनको निमित्तज्ञान भी अच्छा था। एक बार वे बनवाना गये जो कि महरौनी तहसील और ललितपुर जिलेमें है। वहां वे श्रीमजलाल चन्द्रभानुजी सेठके यहां ठहरे थे। मैं भी उसी समय वहां पर गया था। श्रीसेठजीके यहां जलविहार होना था। श्रीसवाई सिंघई धर्मदासजी साढूमलवाले उसकी पत्रिका लिख रहे थे। पत्रिकाको देख कर बाबाजीने कहा—'मजलाल! यह धर्मोत्सव इस तिथिपर नहीं होगा, तुम्हें ४ दिनके बाद इष्ट वियोग होगा। बाबाजीकी बात सुनकर सब लोग दुखी हो गये। अन्तमें ४ दिनके बाद श्रीसेठ लक्ष्मीचन्द्रजीके पुत्रका स्वर्गवास हो गया। इसी प्रकार एक दिन श्रीमजलालका दामाद और उनके लड़केका साला मन्दिरकी दहलानमें लेटे हुए परस्पर बातचीत कर रहे थे उन्हें देख बाबाजीने मजलाल सेठको बुला कर कहा कि तुम्हारा दामाद ६ मासमें और तुम्हारे लड़केका साला १ सालमें मृत्युको प्राप्त होगा सो ऐसा ही हुआ।

उन्हीं बाबाजीने एक दिन मन्दिर जाते समय सेठ मजलाल की माँसे पूछा कि चन्द्रभानु नहीं दिखता? माँने कहा—'महाराज! उसे तो पन्द्रहवी लंघन है।' महाराजने कहा—'हम देखने के लिये चलते हैं।' देखकर कहा—'यह तो नीरोग होगया, इसका रोग पच गया, इसे आज ही पथ्य देना चाहिये और पथ्यमें [illegible] तथा पुराने चावलका भात देना चाहिये। जब इसे [illegible] आवेगा तभी मैं भोजन करूंगा'

[illegible] नेत्रोंसे [illegible]

[illegible]

[illegible] है [illegible]

इतना सब होनेपर भी लोगोंमें परस्पर बड़ा प्रेम रहता था। यदि किसीके घर कोई नवीन पदार्थ भोजनका कहींसे आया तो मोहल्ला भरमें वितरण किया जाता था। यदि किसीके घर गाय भैंसका बच्चा हुआ तो शुद्धताके बाद उसका दूध मोहल्ला भरके घरोंमें पहुंचानेकी पद्धति थी। इत्यादि उदारता होनेपर भी कोई विद्यादानकी तरफ दृष्टिपात नहीं करता था और इसका मूल कारण यह था कि कोई इस विषयका उपदेष्टा न था।

श्री स्व० बाबा दौलतरामजीके प्रति जो मेरी श्रद्धा हो गई थी उसका मूल कारण यही था कि उन्होंने उस समय लोगोंका चित्त विद्यादानकी ओर आकर्षित किया था और बण्डामें एक छात्रावास तथा पाठशालाकी स्थापना करा दी थी। इस पाठशाला की पढ़ाई प्रवेशिका तक ही सीमित थी और ३० छात्रोंके रहने तथा भोजनका उसमें प्रबन्ध था। इस पाठशालाके मन्त्री श्री दौलतरामजी चौधरी बण्डावाले, सभापति रायसाहब मोहनलाल जी रोंडावाले, अधिष्ठाता धनप्रसादजी सेठ बण्डावाले और अध्यापक श्री पं० मूलचन्द्रजी बिलौआ थे।

इस पाठशालाकी उन्नतिमें पं० मूलचन्द्रजी का विशेष परिश्रम था। आप बहुत ही सुयोग्य व्यक्ति हैं आपके तत्कालीन प्रबन्धको देखकर अच्छे अच्छे मनुष्योंको विद्यादानमें रुचि हो जाती थी। आपकी वचनकला इतनी मधुर होती थी कि नहीं देनेवाला भी देकर जाता था।

यहां पर (बण्डामें) परवारोंके तीन खानदान प्रसिद्ध थे— साहु खानदान, चौधरी खानदान और भायजी खानदान। गोलापूर्वोंमें सेठ धनप्रसादजी प्रसिद्ध व्यक्ति थे। इन सबके प्रयत्नसे पाठशाला प्रतिदिन उन्नति करती गई।

हम यह पहले लिख आये हैं कि इस पाठशालाकी पढ़ाई

प्रवेशिका तक ही सीमित थी उसमें संस्कृत विद्याके पढ़नेका समुचित प्रबन्ध न था। पण्डित मूलचन्द्रजीका तन्त्र व्याकरण तक ही संस्कृत पढ़े थे अतः उनसे संस्कृतकी पढ़ाई होना असंभव था।

यह सब देखकर मेरे मनमें यह चिन्ता उठा करती थी कि जिस देशमें प्रतिवर्ष लाखों रुपये धर्म कार्यमें व्यय होते हों वहांके आदमी यह भी न जानें कि देव, शास्त्र और गुरुका क्या स्वरूप है? अष्टमूल गुण क्या हैं? यह सब अज्ञानका ही माहात्म्य है।

मुझे इस प्रान्तमें एक विशाल विद्यालय और छात्रावासकी कमी निरन्तर खलती रहती थी।

———

४७

सागरमें श्री सत्तर्कसुधातरङ्गिणी जैन पाठशालाकी स्थापना

ललितपुरमें विमानोत्सव था, मैं भी वहां पर गया, उसी समय सागरके बहुतसे महानुभाव भी वहां पधारे। उनमें श्री बालचन्द्रजी सवालनवीस नन्दूमल्लजी कण्डया, कढोरीमल्लजी सर्राफ और पं० मूलचन्द्रजी विलौआ आदि थे। इन लोगोंसे हमारी बातचीत हुई और मैंने अपना अभिप्राय इनके समक्ष रख दिया। लोग सुनकर बहुत प्रसन्न हुए परन्तु प्रसन्नतामात्र तो कार्यकी जननी नहीं। 'द्रव्यके विना कार्य कैसे हो' इत्यादि चिन्तामें सागरके महाशय व्यग्र हो गये।

श्रीयुत बालचन्द्रजी सवालनवीसने कहा कि चिन्ता करने की बात नहीं सागर जाकर हम उत्तर देवेंगे। लोग सागर गये, वहांसे उत्तर आया—'आप आइये यहां पर पाठशालाकी व्यवस्था हो जावेगी।' मैंने ललितपुरसे उत्तर दिया—'आपका लिखना ठीक है परन्तु हमारे पास नैयायिक सहदेव झा हैं उनको रखना पड़ेगा हम उनसे विद्याध्ययन करते हैं।' पत्रके पहुँचते ही उत्तर आया 'आप उन्हें साथ लेते आइये जो वेतन उनका होगा हम देवेंगे।'

हम नैयायिकजीको लेकर सागर पहुँच गये। अक्षय तृतीया

वीर निर्वाण २४२५ वि० सं० १६६५ को पाठशाला खोलनेका मुहूर्त निश्चित किया गया। इस पाठशालाका प्रारम्भिक विवरण इस प्रकार है—

'यहां पर एक छोटी पाठशाला थी जिसमें पं० मूलचन्द्रजी अध्ययन कराते थे उस पाठशालाके मन्त्री श्री पूर्णचन्द्रजी बजाज थे। आप बहुत ही उत्साही और उद्योगी पुरुष हैं आपके ही प्रयत्नसे यह छोटी पाठशाला श्री सत्तर्कसुधातरङ्गिणी नामसे परिवर्तित हो गई। आपके सहायक श्री पन्नालालजी बड़कुर तथा श्री मोदी धर्मचन्द्रजीके लघु भ्राता कन्हैयालालजी आदि थे।

इन सबकी सम्मति इस कार्यमें थी परन्तु मुख्य प्रश्न इस बातका था कि इतना द्रव्य कहांसे आवे जिससे कि छात्रावास सहित पाठशालाका कार्य अच्छी तरह चल सके। पर जो कार्य होनेवाला होता है उसे कौन रोक सकता है? सागरमें कण्डया का वंश प्रसिद्ध है इसमें एक हंसराज कण्डया थे उनके पास अच्छी सम्पत्ति थी अचानक आपका स्वर्गवास होगया। धनका अधिकार उनकी पुत्रीको मिला। उनके भतीजे श्री कण्डया नन्हूमल्लजी, कढ़ोरीमल्लजीने कोई आपत्ति नहीं की किन्तु उनके दामादसे कहा कि आप १०००) पाठशालाके लिये दे दो ऐसा करनेसे उनकी कीर्ति रह सकेगी। दामादने सहर्ष १०००१) विद्यादानमें दे दिया और साथ ही नन्हूमलजीने एक कोठी पाठशाला को लगा दी जिसका मासिक किराया १००) आता था। इस प्रकार द्रव्यकी पूर्ति हुई तब अक्षय तृतीयाके दिन बड़े गाजे बाजेके साथ पाठशालाका शुभ मुहूर्त श्री शिवप्रसादजीके गृहमें सानन्द होगया।

मुख्याध्यापक श्री सहदेवजी झा नैयायिक, श्री ...जी शास्त्री

वैयाकरण,श्री पं०मूलचन्द्रजी सुपरिन्टेन्डेन्ट,१ रसोइया,१ चपरासी और १ वर्तन मलनेवाला इतना उस पाठशालाका परिकर था। ५ छात्रों द्वारा पाठशाला चलने लगी। कार्य उपयोगी था अतः बाहरके लोगोंसे भी सहायता मिलने लगी।

पढ़ाई क्वीन्स कालेजके अनुसार होती थी, जब तक छात्र प्रवेशिकामें उत्तीर्ण नहीं होता था तब तक उसे धर्मशास्त्र नहीं पढ़ाया जाता था...इस पर समाजमें बड़ी टीका टिपण्णियां होने लगीं—

कोई कहता—'आखिर गणेशप्रसाद वैष्णव ही तो हैं, उन्हें जैनधर्मका महत्त्व नहीं आता, उनके द्वारा जैनधर्मका उपकार कैसे हो सकता है? कोई कहता—'जहां पर ब्राह्मण अध्यापक हैं और उन्हींकी पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं वहांके शिक्षित छात्र जैनधर्मकी श्रद्धा कर सकेंगे—यह संभव नहीं।' और कोई कहता—'अरे यहांके छात्रोंसे तो णमोकार मन्त्र तकका शुद्ध उच्चारण नहीं होता।' कोई यह भी कह उठते कि यह बात छोड़ो उन्हें तो देवदर्शन तक नहीं आता...ऐसी पाठशालाके रखनेसे क्या लाभ?

इन सब व्यवहारोंसे मेरा चित्त खिन्न होने लगा और यह बात मनमें आने लगी कि सागर छोड़कर चला जाऊं! परन्तु फिर मनमें सोचता कि 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि—' अच्छे कार्योंमें विघ्न आया ही करते हैं—मेरा अभिप्राय तो निर्मल है—मैं तो यही चाहता हूँ कि यहांके छात्र प्रौढ़ विद्वान् बनें। जिन्हें षष्ठी पञ्चमीका विवेक नहीं वे क्या रत्नकरण्डश्रावकाचार पढ़ेंगे, केवल तोता रटन्तसे कोई लाभ नहीं हो पाता। भाषाका ज्ञान हो जानेपर उसमें वर्णित पदार्थका ज्ञान अनायास ही हो जाता है। अतः सागर छोड़ना उचित नहीं।

श्री पूर्णचन्द्रजी बड़े गम्भीर स्वभावके हैं उन्होंने कहा कि काम करते जाइये आपत्तियां आवेंगी और दूर होती जावेंगी। 'दैवेच्छा बलीयसी' २ वर्षके बाद पाठशालासे छात्र प्रवेशिकामें उत्तीर्ण होने लगे तब लोगोंको कुछ संतोष हुआ और रत्नकरण्ड-श्रावकाचार आदि संस्कृत ग्रन्थोंका अन्वय सहित अभ्यास करने लगे तब तो उनके हर्षका ठिकाना न रहा।

पाठशालाके सर्व प्रथम छात्र श्री मुन्नालालजी पाटनवाले थे, प्रवेशिकामें सर्व प्रथम आप ही उत्तीर्ण हुए थे। आप बड़े ही प्रतिभाशाली छात्र थे। आपने प्रारम्भसे लेकर न्यायतीर्थ तक का अध्ययन केवल ५ वर्षमें कर लिया था। आज आप उसी पाठशालाके प्रधानमंत्री हैं और हैं सागरके एक कुशल व्यापारी। कालक्रमसे इसी पाठशालामें प० निद्धामलजी, प० जीवन्धरजी शास्त्री इन्दौर, प० दरबारीलालजी वर्धा, श्रीमान् प० दयाचन्द्र जी शास्त्री, श्रीमान् प० माणिकचन्द्रजी न्यायतीर्थ तथा श्रीमान् प० पन्नालालजी साहित्याचार्य आदि अनेकों छात्र प्रविष्ट हुए जो आज समाजके प्रख्यात विद्वान् माने जाते हैं।

अब जिस मकानमें पाठशाला थी वह मकान छोटा पड़ने लगा। उस समय सागरमें ऐसा कोई मकान या धर्मशाला न थी जिसमें ५० छात्रोंका निर्वाह हो सके अतः निरन्तर चिन्ता रहने लगी, परन्तु यदि भवितव्यता अच्छी होती है तो सब निमित्त अनायास मिलते जाते हैं। श्री राईसे बजाजने जो कि सर्वथा चैत्यालयके प्रबन्धक थे चैत्यालयका एक बड़ा मकान, जो कि चमेली चौकमें था, पाठशालाके लिये दे दिया और पाठशाला उसमें चली गई। वहां दो अध्यापकोंके रहने योग्य स्थान भी था। उस समय वैसा मकान ५०) मासिक किराये पर भी नहीं मिलता। इस तरह मकानकी चिन्ता तो दूर हुई पर व्यय स्थायी

४८
पाठशालाकी सहायताके लिये

संस्कृत पढ़नेकी ओर छात्रोंका आकर्षण बढ़ने लगा इसलिये छात्र संख्या प्रतिवर्ष अधिक होने लगी। छात्रों और अध्यापकों का समूह ही तो शिक्षासंस्था है। इस संस्थामें विद्वान् अच्छे रक्खे जाते थे और उन्हें वेतन भी समयानुकूल अच्छा दिया जाता था जिससे वे बड़ी तत्परताके साथ काम करते थे। यही कारण था कि इस संस्थाने थोड़े ही समयमें लोगोंके हृदयमें घर कर लिया।

मैं पाठशालाकी सहायताके लिये देहातमें जाने लगा। एक बार बरायठा ग्राम,जो कि बण्डा तहसीलमें है,पहुँचा। वहाँ श्रीजी का विमानोत्सव था. दो हजार मनुष्योंकी भीड़ थी, श्रीयुत कमलापति जी सेठके आग्रहसे मुझे भी जाने का अवसर आया। वहाँ की सामाजिक व्यवस्था देखकर मैं आश्चर्यान्वित हो गया।

वहाँ पर चालीस घर जैनियोंके हैं, सब गोलापूर्व वंशके हैं सभी में परस्पर प्रेम है। एक मन्दिर है जो जमीन से पाँच हाथ की कुरसी पर बीस हाथकी ऊँचाई लेकर बनाया गया है, उसकी उन्नत शिखर दूरसे ही दृष्टिगत होने लगती है। मन्दिरके चारों तरफ एक कोट है, एक धर्मशाला भी है जिसमें त्यागी आदि

पर भिखारन ठहरने आते हैं। मैं सेठ कमलापतिजीके यहाँ ठहरा।

मैंने कहा—'भाई! दो हजार आदमियोंकी पंगतका प्रबन्ध कैसे होगा?' आपने कहा—'यहाँका यह नियम है कि पंगतमें जितना आटा या बेसन लगता है वह सब घरवाले पंचायत देते हैं। अभी आठ दिन हैं अतः आठ दिनके अन्दर सब आटा हो जाता है। पानी सब जातियोंकी औरतें भर देती हैं। एक ही घंटेमें पानी आ जाता है। पूड़ी बनानेके लिये प्रत्येक घरसे एक बेलनेवाली आती है वह अपना बेलन और चकला साथ लाती है। सब थाली थालीमें निकाल देते हैं, मिठाई बनानेवाले भी यहीं लोग हैं वे बना देते हैं इस प्रकार ताजा भोजन आगन्तुकोंको मिलता है। भोजन दो बार होता है इसके सिवाय प्रातःकाल बालकोंको कलेवा (नाश्ता) भी दिया जाता है। हमारे यहाँ ढीमरसे पानी नहीं भराते, यह तो धार्मिक पर्व है विवाह कार्योंमें भी ढीमरसे पानी नहीं भराते। यह पंगतकी व्यवस्था है यहाँके लोगोंमें इतना प्रेम है कि जिसके यहाँ उत्सव होता है वह अलग रहता है सब प्रकारका प्रबन्ध यहाँकी आम जनता करती है।'

मुझे सेठजीके मुखसे पंगतकी व्यवस्था सुनकर बहुत ही आनन्द हुआ। प्रातःकाल गाजे बाजेके साथ द्रव्य लाते थे, मंगल पाठ पढ़ते हुए जल भरनेके लिये जाते थे। जब श्रीजीका अभिषेक होता था तब सुमेरु पर्वतके ऊपर क्षीर सागरके जलसे इन्द्र ही मानों अभिषेक कर रहे हों.. यह दृश्य सामने आ जाता था। जिस समय गान तानके साथ पूजन होती थी सहस्रों नर नारी प्रमोदसे गद्गद हो उठते थे। एक एक चौपाई पन्द्रह पन्द्रह मिनटमें पूर्ण होती थी। मैंने तो अपनी पर्याय में ऐसी पूजन नहीं देखी।

यह बात उनके पुत्रके मुखसे सुनी। रात्रिको उसी ग्राममें रहे, प्रातःकाल भोजन कर हम दोनोंने सागरके लिये प्रस्थान किया। वहांसे चलकर बहेरिया ग्रामके कुवांपर पानी पीने लगे। इतनेमें ही क्या देखते हैं कि सामने एक बालक और उसकी माता खड़ी है। बालककी अवस्था पांच वर्षकी होगी, उसे देखकर ऐसा मालूम होता था कि वह प्यासा है। मैंने उसे पानी पिला दिया और हमारे पास खानेके लिये जो कुछ मेवा थे उस बालकको भी थोड़ेसे दे दिये। पश्चात् मैंने और कमलापतिजी सेठने पानी पिया और थोड़ा थोड़ा मेवा खाया, खाकर निश्चिन्त हुए और चलनेके लिये ज्योंही उद्यमी हुए त्यों ही वह सामने खड़ी हुई औरत रोने लगी। हमने उससे पूछा—'क्यों रोती है?' उसने हितैषी जान अपनी कथा कहना प्रारम्भ किया—'मेरे पतिको गुजरे हुए आठ मास हुए हैं हमारा जो देवर है वह बराबर लड़ता है और मेरे खानेमें भी त्रुटि करता है। यद्यपि मेरे यहां बीस बीघा जमीन है पर्याप्त अन्न भी होता है परन्तु हमारी सहायता नहीं करता—मैं मारी मारी फिरती हूं। आज यह विचार किया कि पिताके घर चली जाऊं वहीं अपना निर्वाह करूंगी। यद्यपि मैं शूद्र कुलमें जन्मी हूं और मेरे यहां दूसरा पति रखनेका रिवाज है परन्तु मैंने देखा कि दूसरा पति रखनेवाली औरतको बड़े २ कष्ट सहना पड़ते हैं अतः पतिके रखनेका विचार छोड़कर पिताके घर जा रही हूं। यही मेरी राम कहानी है।'

हमारे पास कुछ था नहीं केवल धोती और दुपट्टा था, तथा धोतीमें कुछ रुपये थे मैंने वह धोती दुपट्टा तथा रुपये—सब उसे दे दिया केवल नीचे लंगोट रह गया। सेठजी बोले—'इस वेषमें सागर कैसे आओगे?' मैंने कहा 'चिन्ताकी कोई बात नहीं यहांसे चलकर ग्राम मात्र पर सामायिक करेंगे पश्चात् रात्रिके सात

४६

मड़ावरामें विमानोत्सव

मड़ावरासे जहां पर कि मेरा बाल्यकाल बीता था एक पत्र इस आशयका आया कि 'आप पत्रके देखते ही चले आइये यहां पर श्री जिनेन्द्र भगवान्‌के विमान निकालने का महोत्सव है उसमें दो हजार के लगभग भीड़ होगी।'

मैं वहांके लिये प्रस्थान कर महरौनी पहुंचा वहांसे पण्डित मोतीलालजी वर्णीको साथमें लिया उस समय आप महरौनीमें अध्यापकी करते थे। बरायठासे सेठ कमलापतिजीको बुलाया और सानन्द मड़ावरा पहुँच गये। उस समय वहां समाजमें परस्पर अत्यन्त प्रेम था। तीन दिनका उत्सव था, दो पंगत श्री दामोदर सिंघई की ओरसे थीं और एक पंचायती थी। तीनों दिन पूजापाठ और शास्त्र प्रवचनका अच्छा आनन्द रहा।

मैंने कहा—'भाई एक प्रस्ताव परवार सभामें पास हो चुका है कि जो ५०००) विद्यादानमें देवे उसे सिघई पद दिया जावे। इस ग्राम में सौ घरसे ऊपर हैं परन्तु बालकोंको जैनधर्मका ज्ञान करानेके लिये कुछ भी साधन नहीं है। जहां पर १० मन्दिर हों, बड़े बड़े बिम्ब, सुन्दर सुन्दर वेदिकाएं और अच्छे अच्छे गान विद्याके जाननेवाले हों वहां धर्मके जाननेका कुछ भी साधन

न हो यह यहां की समाजको भारी कलंककी बात है अतः मुझे आशा है कि सोरया वंशके महानुभाव इस त्रुटिकी पूर्ति करेंगे।'

मेरे बाल्यकालके मित्र श्री सोरया हरीसिंहजी हँस गये। उनका हँसना क्या था, सिंघई पदप्राप्तिकी सूचना थी। उनके हास्य से मैंने आगत जनसमुदायके बीच घोषणा कर दी कि बड़ी खुशी की बात है कि हमारे बाल्यकालीन मित्रने सिंघई पदके लिये ५०००) का दान दिया उससे एक जैन पाठशाला खोली जावे। मित्रने कहा—'हमको १० मिनिट का अवकाश मिले हम अपने बन्धुवर्गसे सम्मति ले लेवें। समाजने कहा-'कोई क्षति नहीं।' पश्चात् उन्होंने अपने भाईयोंसे तथा श्री बहोरेलालजी सोरयाके रामलाल आदिसे सम्मति मांगी। सबने ५०००) का दान सहज स्वीकार किया परन्तु पञ्चोंसे यह भिक्षा मांगी कि कल हमारे यहां पंक्तिभोजन होना चाहिये। सभी ने सहज स्वीकृति दे दी। इसीके बीच एक अवतार कथा हुई जिसे लिख देना समुचित समझता हूँ।

जिस समय हमारे मित्र अपने बन्धुवर्गसे सम्मति कर रहे थे उस समय मैंने श्री दामोदर सिंघईसे कहा कि भैया! आप तो जानते हैं कि ५०००)में क्या पाठशाला चल सकेगी? २५) ही सूदके आवेंगे, इतने में तो एक अध्यापक ही न मिल सकेगा। आशा है आप भी ५०००) का दान देकर ग्रामको कीर्तिको अजर अमर कर देवेंगे। ५०) मासिकमें जैन पाठशाला सदैव चलती रहेगी। आपके पूर्वजोंने तो गगनचुम्बी मन्दिर बनवाकर रथ चलाये और अनुपम पुण्य बन्धका लाभ लिया आप विद्यारथ चलाकर बालकोंके लिये ज्ञान दानका लाभ दीजिये।

प्रथम तो आप बोले कि हमारे बड़े भाई को औरस जो घर [illegible] मालिक हैं तथा मेरे दो पुत्र हैं उनसे सम्मान लिये बिना [illegible] कर सकता मैंने कहा — आप स्वयं [illegible] हैं सब

कुछ कर सकते हैं तथा आपकी भौजीकी इसमें पूर्ण सम्मति है मैं उनसे पूछ चुका हूँ। दैवयोगसे वे शास्त्रसभामें आई थीं मैंने उनसे कहा कि सिं० दामोदरजी जो कि आपके देवर हैं ५०००) विद्यादानमें देना चाहते हैं इसमें आपकी क्या सम्मति है?' उन्होंने कहा—'इससे उत्तम क्या होगा कि हमारे द्वारा बालकों को ज्ञानदान मिले। लोगोंने सुनकर हर्षध्वनि की और उसी समय केशर तथा पगड़ी बुलाई गई।

पञ्चोंने सोरया वंशके प्रमुख व्यक्तियोंको पगड़ी बांधी और केशरका तिलक लगाकर 'सिघईजी जुहार' का दस्तूर अदा किया। पश्चात् श्री सिं० दामोदरदासजी को भी केशरका तिलक लगाकर पगड़ी बांधी और 'सवाईसिंघई' पदसे सुशोभित किया। इस तरह जैन पाठशालाके लिये १००००) दश हजारका मूलधन अनायास हो गया।

त्यों बात कही दी। पर मैंने वर्णीजीसे निवेदन किया कि क्या मैं इनसे कुछ पूछ सकता हूं ? आप बोले—'हां, जो चाहो सो पूछ सकते हो।' मैंने उन आगन्तुक महाशयसे कहा—'अच्छा यह बतलाओ कि इतना भारी पाप करने पर भी तुम्हारी जिनेन्द्रदेवके दर्शनकी रुचि कैसे बनी रही ?'

वह बोले—'पण्डितजी ! पाप और वस्तु है तथा धर्म में रुचि होना और वस्तु है ! जिस समय मैंने उस औरतको रक्खा था उस समय मेरी उमर तीस वर्षकी थी, मैं युवा था,मेरी स्त्रीका देहान्त हो गया मैंने बहुत प्रयत्न किया कि दूसरी शादी हो जावे, मैं यद्यपि शरीरसे निरोग था और द्रव्य भी मेरे पास २००००) से कम नहीं थी फिर भी सुयोग नहीं हुआ। मनमें विचार आया कि गुप्त पाप करना महान् पाप है इसकी अपेक्षा तो किसी औरतको रख लेना ही अच्छा है। अन्तमें मैंने उस औरत को रख लिया। इतना सब होनेपर भी मेरी धर्मसे रुचि नहीं घटी। मैंने पंचोंसे बहुत ही अनुनय विनय किया कि महाराज ! दूरसे दर्शन कर लेने दो परन्तु यही उत्तर मिला कि मार्ग विपरीत हो जावेगा। मैंने कहा—कि मन्दिरमें मुसलमान कारीगर तथा मोची आदि तो काम करनेके लिये चले जावें जिन्हें जैनधर्मकी रंचमात्र भी श्रद्धा नहीं परन्तु हमको जिनेन्द्र भगवान्‌के दर्शन दूरसे ही प्राप्त न हो सकें . बलिहारी है आपकी बुद्धिको। कामवासनाके वशीभूत होकर मेरी प्रवृत्ति उस ओर हो गई इसका यह अर्थ नहीं कि जैनधर्मसे मेरी रुचि घट गई। कदाचित् आप यह कहें कि मन की शुद्धि रक्खो दर्शनसे क्या होता। तो आपका यह कोई उचित उत्तर नहीं है। यदि केवल मनकी शुद्धि पर ही आप लोगोंका विश्वास है तो श्री जैन मन्दिरके दर्शनोंके लिये आप स्वयं क्यों जाते हैं ? तीर्थयात्राके लिये व्यर्थ भ्रमण क्यों करते हैं ? और पञ्चकल्याणक

प्रतिष्ठा आदि क्यों करवाते हैं ? मनकी शुद्धि ही सब कुछ है ऐसा एकान्त उपदेश मत करो, हम भी जैनधर्म मानते हैं। हमने औरत रख ली इसका यह अर्थ नहीं होता कि हम जैनी ही नहीं रहे। हम अभी तक अष्ट मूलगुण पालते हैं हमने आज तक अस्पताल की दवाई का प्रयोग नहीं किया, किसी कुदेवको नहीं माना, अनछना पानी नहीं पिया रात्रि भोजन नहीं किया, प्रतिदिन णमोकार मन्त्रकी जाप करते हैं, यथाशक्ति दान देते हैं तथा सिद्धक्षेत्र श्री शिखरजी की यात्रा भी कर आये हैं......इत्यादि पंचोंसे निवेदन किया परन्तु उन्होंने एक नहीं सुनी। यही उत्तर मिला कि पञ्चायती सत्ताका लोप हो जावेगा। मैंने कहा—'मैं तो अकेला हूँ, यह रखेली औरत मर चुकी है लड़की पराये घरकी है आप सहभोजन मत कराइये परन्तु दर्शन तो करने दीजिये।' मेरा कहना अरण्यरोदन हुआ-किसीने कुछ न सुना। वही चिरपरिचित रूखा उत्तर मिला कि पंचायती प्रतिबन्ध शिथिल हो जावेगा......यह मेरी आत्म कहानी है।'

मैंने कहा- 'आपके भाव सचमुच दर्शन करनेके हैं ?'.

मैं अवाक् रह गया पश्चात् उससे कहा—'भाई साहब ! कुछ दान कर सकते हो ?' वह बोला 'जो आपकी आज्ञा होगी शिरोधार्य करूंगा। यदि आप कहेंगे तो एक लंगोटी लगाकर घरसे निकल जाऊंगा परन्तु जिनेन्द्रदेवके दर्शन मिलना चाहिये क्योंकि यह पञ्चमकाल है इसमें बिना अवलम्बनके परिणामोंकी स्वच्छता नहीं होती। आज कलके लोगोंकी प्रवृत्ति विषयोंमें लीन हो रही है। यदि मैं स्वयं विषयमें लीन न हुआ होता तो इनके तिरस्कारका पात्र क्यों होता। आशा है आप मेरी प्रार्थना पर ध्यान देकर प्रसन्न होंगे। पत्र लगोंके बन्धने आकर उन केस

[illegible]

मैंने कहा—'क्या आप विना किसी शर्तके सङ्गमर्मरकी वेदी मन्दिरमें पधरा दोगे ?'

उन्होंने कहा—'हां, इसमें कोई शंका न करिये मैं १०००) की वेदी श्रीजीके लिये मन्दिरमें जड़वा दूंगा और यदि पंच लोग दर्शनकी आज्ञा न देंगे तो भी कोई आपत्ति न करूंगा। यही भाग्य समझूंगा कि मेरा कुछ तो पैसा धर्म कार्य में गया।'

मैंने कहा—'विश्वास रखिये आपका अभीष्ट अवश्य सिद्ध होगा।'

इसके अनन्तर मैंने घर जाकर सम्पूर्ण पञ्च महाशयोंको बुलाया और कहा कि यदि कोई जैनी जातिसे च्युत होनेके अनन्तर विना किसी शर्तके दान करना चाहे तो आप लोग क्या उसे ले सकते हैं ? प्रायः सबने स्वीकार किया। यहां प्रायः से मतलब यह है कि जो एक दो सज्जन विरुद्ध थे वे रुष्ट होकर चले गये। मैंने कहा—'अमुक व्यक्ति १०००) की संगमर्मरकी वेदिका मन्दिरमें जड़वाना चाहता है आपको स्वीकार है ?'

उनका नाम सुनते ही बहुत लोग फिर विरोध करने लगे, बोले—'यह तो २५ वर्षसे जातिच्युत है अनर्थ होगा, आपने कहां की आपत्ति हम लोगों पर ढा दी।'

मैंने कहा—'कुछ नहीं गया, मैंने तो सहज ही में कहा था। पर जरा विचार करो—मन्दिरकी शोभा हो जावेगी तथा एकका उद्धार हो जावेगा। क्या आप लोगोंने धर्मका ठेका ले रक्खा है कि आपके सिवाय मन्दिरमें कोई दान न दे सके। यदि कोई अन्य मतवाला दान देना चाहे तो आप न लेवेंगे ? बलिहारी है आपकी बुद्धिको ? अरे शास्त्रमें तो यहां तक कथा है कि शूकर, सिंह, नकुल और वानरसे हिंसक जीव भी मुनिदानकी अनुमोदनासे भोगभूमि

दर्शन कर पञ्चोंसे विनय पूर्वक बोला—'उत्तराधिकारी न होनेसे मेरे पासकी सम्पत्ति राज्यमें चली जावेगी अतः मुझे जातिमें मिला लिया जाय ऐसा होनेसे मेरी सम्पत्तिका कुछ सदुपयोग हो जावगा।'

यह सुनकर लोग आगबबूला होगये और झुंझलाते हुए बोले—'कहां तो मन्दिर नहीं आ सकते थे अब जातिमें मिलनेकी होसला करने लगे। अंगुली पकड़कर पोंचा पकड़ना चाहते हो?'

यह हाथ जोड़कर बोला—'आखिर आपकी जातिका जन्मा हूँ, आपके ही सदृश मेरे संस्कार हैं, कारण पाकर पतित होगया, क्या जो वस्त्र मलिन हो जाता है उसे भट्टीमें देकर उज्ज्वल नहीं किया जाता? यदि आप लोग पतितको पवित्र करनेका मार्ग रोक देवेंगे तो आपकी जाति कैसे सुरक्षित रह सकेगी? मैं तो वृद्ध हूँ, मृत्युके गालमें बैठा हूँ परन्तु यदि आप लोगों की यही नीति रही तो कालान्तरमें आपकी जातिका अवश्यंभावी ह्रास होगा। जहां आय न हो केवल व्यय ही हो वहां भारीसे भारी खजानेका अस्तित्व नहीं रह सकता। आप लोग इस बात पर विचार कीजिये केवल हठवादिता छोड़िये।'

मैंने भी उसकी बातमें साथ दिया। पञ्च लोगोंने मेरे ऊपर बहुत प्रकोप प्रकट किया। कहने लगे कि यह इन्हींका कर्तव्य है जो आज इस आदमी का इतना कहनेका साहस होगया।

मैंने कहा—भाई साहब! इसमें कोपकी आवश्यकता नहीं। [illegible] आप लोग अपने हृदयपर विचार कीजिये और [illegible] यह मानिये कि आप लोगोंका [illegible] इस दशामें ला दिया है। बेचारे [illegible] रहते हैं। [illegible]

अर्थ हुआ कि वह जैनधर्मकी श्रद्धासे भी च्युत हो गया। श्रद्धा वह वस्तु है जो सहसा नहीं जाती। शास्त्रोंमें इसके बड़े बड़े उपाख्यान हैं—बड़े बड़े पातकी भी श्रद्धाके बलसे संसारसे पार होगये। श्री कुन्दकुन्द भगवान्ने लिखा है कि—

> दंसणभट्टा भट्टा दंसणभट्टस्स णत्थि णिव्वाणं।
> सिज्झंति चरियभट्टा दंसणभट्टा ण सिज्झंति॥'

अर्थात् जो दर्शनसे भ्रष्ट हैं वे भ्रष्ट हैं जो दर्शनसे भ्रष्ट हैं वे निर्वाणके पात्र नहीं, चारित्रसे जो भ्रष्ट हैं उनका निर्वाण (मोक्ष) हो सकता है परन्तु जो दर्शनभ्रष्ट हैं वे निर्वाण लाभसे वञ्चित रहते हैं।

प्रथमानुयोगमें ऐसी बहुतसी कथाएं आती हैं जिनमें यह बात सिद्ध की गई है कि जो चारित्रसे गिरने पर भी सम्यग्दर्शनसे सहित हैं वे कालान्तरमें चारित्रके पात्र हो सकते हैं। जैसे माघनन्दी मुनिने कुम्भकारकी बालिकाके साथ विवाह कर लिया तथा उसके सहवासमें बहुत काल बिताया—बर्तन आदिका अवा लगाकर घोर हिंसा भी की। एकदिन मुनि सभामें किसी पदार्थके विचारमें सन्देह हुआ तब आचार्यने कहा इसका यथार्थ उत्तर माघनन्दी जो कि कुम्भकारकी बालिकाके साथ आमोद प्रमोदमें अपनी आयु बिता रहा है, दे सकेगा। एक मुनि वहां पहुँचा जहां कि माघनन्दी मुनि कुम्भकारके अपने घटनिर्माण कर रहे थे और पहुँचते ही कहा कि मुनिसंघमें अब इस विषय पर शङ्का उठी तब आचार्य महाराजने यह कहकर मुझे आपके पास भेजा है कि इसका यथार्थ उत्तर माघनन्दी ही दे सकते हैं। कृपाकर आप इसका उत्तर दीजिये।

[illegible]

अधमसे अधम कार्य किया है फिर भी आचार्य महाराज मुझे मुनि शब्दसे संबोधित करते हैं और मेरे ज्ञानका मान करते हैं, कहां हैं मेरा पीछी कमण्डलु ?

यह विचार आते ही उन्होंने आन्तुक मुनिसे कहा कि मैं इस शङ्काका उत्तर वहीं चलकर दूंगा और पीछी कमण्डलु लेकर वन का मार्ग लिया। वहां प्रायश्चित्त विधिसे शुद्ध होकर पुनः मुनि-धर्ममें दीक्षित हो गये।

बन्धुवर ! इतनी कठोरताका व्यवहार छोड़िये, गृहस्थ अवस्था में परिग्रहके सम्बन्धसे अनेक प्रकारके पाप होते हैं। सब से महान् पाप तो परिग्रह ही है फिर भी श्रद्धाकी इतनी प्रवल शक्ति है कि समन्तभद्र स्वामी ने लिखा है—

'गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो नैव मोहवान्।
अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुनेः ॥'

अर्थात् निर्मोही गृहस्थ मोक्षमार्गमें स्थित है और मोही मुनि मोक्षमार्गमें स्थित नहीं है इससे यह सिद्ध हुआ कि मोही मुनि की अपेक्षा मोह रहित गृहस्थ उत्तम है। यहां पर मोह शब्दका अर्थ मिथ्यादर्शन जानना इसीलिये आचार्योंने सब पापोंसे महान् पाप मिथ्यात्वको ही माना है। समन्तभद्र स्वामी ने और भी लिखा है कि—

'न हि सम्यक्त्वसमं किञ्चित्त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि।
श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं नान्यत्तनूभृताम् ॥'

इसका भाव यह है कि सम्यग्दर्शनके सदृश तीन काल और तीन जगत्में कोई भी कल्याण नहीं और मिथ्यात्वके सदृश कोई अकल्याण नहीं अर्थात् सम्यक्त्व आत्माका वह पवित्र भाव है जिसके होते ही अनन्त संसारका अभाव हो जाता है और

मिथ्यात्व वह वस्तु है जो अनन्त संसारका कारण होता है अतः महानुभावो ! मेरे पर नहीं अपने पर दया करो और इसे जातिमें मिलाने की आज्ञा दीजिये।'

इन पञ्च महाशयोंमें स्वरूपचन्द्रजी बनपुरया बहुत ही चतुर पुरुष थे। वे मुझसे बोले—'आपने कहा सो आगम प्रमाण तो वैसा ही है परन्तु यह जो शुद्धिकी प्रथा चली आ रही है उसका भी संरक्षण होना चाहिये। यदि यह प्रथा मिट जावेगी तो महान् अनर्थ होने लगेंगे। अतः आप उतावली न कीजिये शनैः शनैः ही कार्य होता है।

'कारज धीरे होत है काहे होत अधीर।
समय पाय तरुवर फलै केतिक सींचो नीर॥'

इसलिये मेरी सम्मति तो यह है कि यह प्रान्त भरके जैनियों को सम्मिलित करें उस समय इनका उद्धार हो जावेगा।'

प्रान्तका नाम सुनकर मैं तो भयभीत हो गया क्योंकि प्रान्तमें अभी हठवादी बहुत हैं परन्तु लाचार था, अतः चुप रह गया।

आठ दिन बाद प्रान्तके दो सौ आदमी सम्मिलित हुए भाग्य से हठवादी महानुभाव नहीं आये अतः पञ्चायत होनेमें कोई बाधा उपस्थित नहीं हुई। अन्तमें यह निर्णय हुआ कि यदि यह दो पंगत पक्की और एक पंगत कच्ची रसोई की देवें तथा २५०) पपौरा विद्यालयको और २५०) अहारक्षेत्रके मन्दिरको प्रदान करें तो जातिमें मिला लिये जावें।

मैंने कहा—'अब विलम्ब मत कीजिये कल ही इनकी पंगत ले लीजिये।' सबने स्वीकार किया, दूसरे दिनसे सानन्द पंक्ति भोजन हुआ और ५०० दण्डके दिये गये। उसने यह सब करके पञ्चों की चरणरज शिर पर लगाई और सहस्रों धन्यवाद दिये तथा

बीस हजारकी सम्पत्ति जो उसके पास थी एक जैनीका बालक गोद लेकर उसके सुपुर्द कर दी।......इस प्रकार एक जैनका उद्धार हो गया और उसकी सम्पत्ति राज्यमें जानेसे बच गई। कहनेका तात्पर्य यह है कि शुद्धिके मार्गका लोप नहीं करना चाहिये तथा इतना कठोर दण्ड भी नहीं देना चाहिये कि जिससे भयभीत हो कोई अपने पापोंको व्यक्त ही न कर सके।

इस प्रकार उसकी शुद्धि कर मैं श्रीयुत वर्णीजीके साथ देहात में चला गया। और यथाशक्ति हम दोनोंने बहुत स्थानों पर धर्म प्रचार किया।

—

५१

दूरदर्शी मूलचन्द्रजी सर्राफ

कई स्थानोंमें घूमनेके बाद मैं श्रीयुत सर्राफ मूलचन्द्रजी बरुआसागरवालोंके यहां चला गया। आप हमसे अधिक अवस्थावाले थे अतः मुझसे अनुजकी तरह स्नेह करते थे। आपके विचार निरन्तर प्रशस्त रहते थे। आप बरुआसागरके जमींदार थे और निरन्तर सुधारके पक्षपाती रहते थे।

आपके ग्राममें नन्दकिशोर अलया एक विलक्षण प्रतिभाशाली मुनीम थे। आपका मूलचन्द्रजी सर्राफके साथ सदा वैमनस्य रहता था आप निरन्तर मूलचन्द्रजी को फँसानेकी ताकमें रहते थे परन्तु श्री सर्राफ इतने चतुर थे कि बड़े बड़े दरोगाओंको चुंगलमें नहीं आये नन्दकिशोर तो कोई गिनतीमें न थे।

एकबार नन्दकिशोरकी औरत कूपमें गिरकर मर गयी। आप दौड़कर सर्राफजी के पास आये और बोले 'भैया! गृहिणी मर गई क्या करूं?' ग्रामके बाहर कूप था अतः बस्तीमें हो हल्ला मचनेके पहले ही आप एकदम जैनियोंको लेकर कुआ पर पहुँचे और उसे निकालकर स्मशानमें जला दिया। बादमें दरोगा आया परन्तु तब तक लाश जल चुकी थी। क्या होगा? यह सोचकर सब डर गये परन्तु सर्राफने सब मामला शान्त कर दिया।

यहाँ एक बात और लिखने की है वह यह कि बरुआसागरमें काछियोंकी जमींदारी है बड़े बड़े धनाढ्य हैं। एक काछी नम्बरदार के यहाँ एक मुसलमान नौकर रहता था। काछीकी औरतसे काछी जमींदारकी कुछ लड़ाई हुई, उसने औरतको बहुत डाटा और क्रोधमें आकर कहा—'रांड़ मुसलमानके यहाँ चली जा।' वह सचमुच चली गई और दो दिन तक उसके सहवासमें रही आई।

इस घटनाके समय मूलचन्द्रजी झाँसी गये थे। वहाँसे आकर जब उन्होंने यह सुना कि एक काछीकी औरत मुसलमानके घर चली गई तब बड़े दुःखी हुए। वे अपने अङ्गरक्षकोंको लेकर उस मोहल्लेमें गये और ग्राम्य पंचायत कर उसमें उस औरत तथा मुसलमानको बुलाया। आनेपर औरतसे कहा—'अपने घर आ जाओ।' उसने कहा—'हम तो मुसलमानिनी हो गये क्योंकि उसका भोजन कर लिया।'

सब पञ्च सुनकर कहने लगे कि अब तो यह जातिमें नहीं मिलाई जा सकती। मूलचन्द्रजीने गंभीर भावसे कहा कि आपत्ति-काल है अतः इसे मिलानेमें आपत्ति नहीं होना चाहिये। लोगोंने कहा—'पहले गङ्गास्नान कराना चाहिये और पश्चात् तीर्थयात्रा कराना चाहिये अन्यथा सब व्यवहारका लोप हो जावेगा।'

मूलचन्द्रजीने कहा—'जब सब लोग क्रमशः अधःपतनको प्राप्त हो चुकेंगे तब व्यवहारका लोप न होगा। अतः मेरी तो यह सम्मति है कि इसे गङ्गा न भेजकर बेत्रवती भेज दिया जावे क्योंकि यह यहाँसे तीन मील है वहाँसे स्नान करके आ जावे और इसी नगरमें जो ठाकुरजीका मन्दिर है उसका दर्शन करे पश्चात् तुलसीदल और चरणामृत देकर इसे जातिमें मिला लिया जावे।' सब लोगोंने मूलचन्द्रजीका यह निर्णय अङ्गीकृत किया परन्तु यह औरत बोली— मैं नहीं जाना चाहती।' मूलचन्द्रजीने कहा— तुम

इस विषयमें मैं आप लोगोंसे विशेष न कह कर यही प्रार्थना करता हूं कि इसे अविलम्ब जातिमें मिला लिया जाय।'

श्रीयुत सर्राफ जी का व्याख्यान समाप्त हुआ बहुत महाशयोंने उसका समर्थन किया, बहुतोंने अनुमोदन किया। मैंने भी श्रीमूलचन्द्रजीकी बातको पुष्ट करते हुए कहा कि भाई! यह संसार है, इसमें पाप होना कठिन नहीं क्योंकि यह संसार राग द्वेष मोहका तो घर ही है। काल पाकर जीवोंकी मति भ्रष्ट हो जाती है और सुधर भी जाती है। यदि इस संसारमें सुधारका मार्ग न होता तो किसी जीवकी मुक्ति ही न होती अतः पापको बुरा जान उससे घृणा कीजिये और यदि कोई पापसे अपनी रक्षा करना चाहे तो उसकी सहायता कीजिये। आप लोगों का निमित्त पाकर यदि एक अबलाका सुधार होता है तो उसमें आप लोगोंको आपत्ति करना उचित नहीं अतः श्रीमूलचन्द्रजीके प्रस्तावको सर्वानुमतिसे पास कीजिये और अभी उसे वेत्रवतीमें स्नान करानेके लिये भेजिये।

इसके बाद और भी बहुतसे लोगोंके सारगर्भित भाषण हुए। इस प्रकार मूलचन्द्रजीका प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। प्रस्तावका रूप यह था—

'जो औरत अपने घरसे पतिके कटु शब्दोंको सहन न कर मुसलमानके घर चली गई थी वह आज आ गई उसे हम लोग उसी जातिमें मिलाते हैं। यदि कोई मनुष्य या स्त्री उसके साथ जाति विरुद्ध व्यवहार करेगा तो उसे १००) दण्ड तथा एक ब्राह्मण भोजन देना होगा।'

द० सकल पंचान बरुआसागर,

इसके बाद उसे स्नानके लिये वेत्रवती भेजा गया वहांसे आई तब ठाकुरजी के मन्दिरमें दर्शनके लिये भेजा गया वहांपर

समुद्री आदरपात्रता होती हुआ मेती थी और चार आगे हैं जहां परस्परमें संभाषण होता है वहां हास्यरसकी बात आजाने पर हँसी भी आजाती है ऐसी स्वाभाविक प्रवृत्ति मनुष्य और स्त्रियोंकी होती है क्या इसका अर्थ यह है कि हास्य करनेवाले असदाचारी हो गये। माँ अपने जवान बालकके साथ हँसती है, पुत्री बापके साथ हँसती है, बहिन भाईके साथ हँसती है पर इसका यह अर्थ कोई नहीं लेता कि ये असदाचारी हैं। मैं सत्य कहती हूं कि मैंने उसके साथ कोई भी असदाचार न पहले किया था और न अब उसके घर रहते हुए भी किया है फिर भी मेरे पतिको सन्देह होगया कि यह दुराचारिणी है और एकदम हुक्म आया दी कि तू उसीके साथ चली जा। मैं भी क्रोधके आवेशमें अपनेको नहीं सभाल सकी और उसके साथ चली गई किन्तु निष्पाप थी अतः आपके द्वारा मेरा उद्धार हो गया। मैं आपके उपकारको आजीवन न भूलूंगी। संसारमें पापोदयके समय अनेक आपत्तियां आती हैं पर उनका निवारण करनेमें महापुरुष ही समर्थ होते हैं।'

उसके इस कथनके अनन्तर जितने पञ्च वहां उपस्थित थे सबने उसे निष्पाप जानकर एक स्वरसे धन्यवाद दिया और उस मुसलमानको कहा कि तुम्हें ऐसी हरकत करना उचित न था। यदि तुम्हारा हन लोगोंके साथ ऐसा व्यवहार रहा तो हम लोग भी सिवख नीतिका अवलम्बन करनेमें आगा पीछा न करेंगे।

इसप्रकारके सुधारक थे श्री सर्राफजी। आपसे मेरा हार्दिक स्नेह था, आपने मेरे ५०००) जमा कर लिये जब कि मैंने एक पैसा भी नहीं दिया था और न मेरे पास था ही। रुपया कैसे अर्जन किया जाता है इस विषयमें मैं प्रारम्भसे ही मूर्ख था।

एक दिनकी बात है कि मूलचन्द्रकी औरतके गर्भ था। सब

जावेगा ?' मैं कुछ उत्तर न दे सका केवल अपनी भूलपर पश्चाताप करता रहा। जिस बालककी आंखमें चोट लगी थी उसकी माँ बहुत ही उग्र प्रकृतिकी थी अतः निरन्तर यह भय रहने लगा कि जब वह मिलेगी तब पचासों गालियां देगी। इसी भयसे मैं घरसे बाहर नहीं निकलता था। सूर्योदयके पहले ही श्री मन्दिरजी में जाता था और दर्शनादि कर शीघ्र ही वापिस आ जाता था।

एक दिन कुछ विलम्बसे मन्दिर जा रहा था अतः बालककी माँ मार्गमें मिल गई और उसने मेरे पैर पड़े। मैं उसे देखकर ही डर गया था और मनमें सोचने लगा था कि हे भगवन्! अब क्या होगा? इतने में वह बोली कि आपने मेरे बालकका महोपकार किया। मैंने कहा—'सत्य कहिये बालककी आंख तो नहीं फूट गई?' उसने कहा—'आंख तो नहीं फूटी परन्तु उसका अंखसूर जो कि अनेक औषधियां करने पर भी अच्छा न होता था खून निकल जाने से एकदम अच्छा हो गया, आप निश्चिन्त रहिये, भय न करिये आपको गालीके बदले धन्यवाद देती हूँ परन्तु एक बात कहती हूँ वह यह कि आपका दण्डाघात घुणाक्षरन्यायसे औषधिका काम कर गया सो ठीक है परन्तु आइन्दह ऐसी क्रिया न करना।

मैं मन ही मन विचारने लगा कि उदय बड़ी वस्तु है अन्यथा ऐसी घटना कैसे हो सकती है।

५३

निवृत्तिकी ओर

वीरनिर्वाण २४३९ और वि० सं० १९६९ की बात है रात्रिको जब सोने लगा तब श्री बालचन्द्रजी ने कहा—'यह निवारका पलंग अब मत बिछाओ अब तो काठके तख्ता पर सोना पड़ेगा ।' मैंने कहा—'इसको मैंने बड़े स्नेहसे बनवाया था। पच्चीस रुपया तो इसके बनवानेमें लगे थे क्या इसे भी त्यागना होगा ?' उन्होंने दृढ़ता के साथ कहा—'हाँ, त्यागना होगा।' मैंने उत्साहके साथ कहा—'अच्छा त्यागता हूँ।' जमीन पर सोनेकी आदत न थी परन्तु जब पलंग की आशा जाती रही तब अनायास भूशय्या होनेपर भी निद्रा सुख पूर्वक आ गई।

प्रातःकाल श्री जिनेन्द्रदेवके दर्शनकर श्री बालचन्द्रजी से प्रतिमाके स्वरूपका निर्णय करने लगा। बाईजी भी वहीं बैठी थं कहने लगीं प्रतिमा के स्वरूप का निर्णय तो हो जावेगा, परए नुयोगके प्रत्येक ग्रन्थमें लिखा है, रत्नकरण्डश्रावकाचारमें दे लो किन्तु साथ ही अपनी शक्तिको भी देख लो। तथा द्रव्य क्षे काल भावको देखो, सर्वप्रथम अपने परिणामोंकी जाति पहिचानो। जो व्रत लो उसे मरण पर्यन्त पालन करो, अने संक [illegible] पर भी उसका निर्वाह करो जैनधर्मकी यह मर्याद

है कि व्रत लेना परन्तु उसे भंग न करना। व्रत न लेना पाप नहीं परन्तु लेकर भंग करना महापाप है।

जैन दर्शनमें तो सर्व प्रथम स्थान श्रद्धाको प्राप्त है इसी का नाम सम्यग्दर्शन है यदि यह नहीं हुआ तो व्रत लेना नींवके बिना महल बनानेके सदृश है इसके होते ही सब व्रतोंकी शोभा है। सम्यग्दर्शन आत्माका वह गुण है जिसका कि विकास होते ही अनन्त संसारका बन्धन छूट जाता है। आठों कर्मोंमें सबकी रक्षा करनेवाला यही है, यह एक ऐसा शूर है कि अपनी रक्षा करता है और शेष कर्मोंकी भी।

सम्यग्दर्शनका लक्षण आचार्योंने तत्त्वार्थश्रद्धान लिखा है। जैसा कि दशाध्याय तत्त्वार्थसूत्रके प्रथम अध्यायमें आचार्य उमास्वामीने लिखा है कि—

'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्'

श्री नेमिचन्द्र स्वामीने द्रव्यसंग्रहमें लिखा है कि

'जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं'

यही समयसारमें लिखा है तथा ऐसा ही लक्षण प्रत्येक ग्रन्थ में मिलता है परन्तु पञ्चाध्यायीकर्ताने एक विलक्षण बात लिखी है वह लिखते हैं कि यह सब तो ज्ञानकी पर्याय है। सम्यग्दर्शन आत्माका अनिर्वचनीय गुण है, जिसके होने पर जीवोंके तत्त्वार्थका परिज्ञान अपने आप हो जाता है वह आत्माका परिणाम सम्यग्दर्शन कहलाता है।

ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम आत्माके सदा विद्यमान रहता ... सभी जीवके और भी विशिष्ट क्षयोपशम रहता है सम्यग्दर्शन ... होते ही वहाँ ज्ञान सम्यग्व्यपदेशको पा जाता है। पुरुषार्थ ...सिद्ध्युपायमें भी अमृतचन्द्राचार्यने भी लिखा है कि—

'जीवाजीवादीनां तत्त्वार्थानां सदैव कर्तव्यम्।
श्रद्धानं विपरीताभिनिवेशविविक्तमात्मरूपं तत्॥'

अर्थात् जीवाजीवादि सप्त पदार्थोंका विपरीत अभिप्रायसे रहित सदैव श्रद्धान करना चाहिये ...इसीका नाम सम्यग्दर्शन है, यह सम्यग्दर्शन ही आत्माका पारमार्थिक रूप है, इसका तात्पर्य यह है कि इसके बिना आत्मा अनन्त संसारका पात्र रहता है।

यह गुण अतिसूक्ष्म है केवल उसके कार्यसे ही हम उसका अनुमान करते हैं जैसे अग्निकी दाहकत्व शक्तिका हमें प्रत्यक्ष नहीं होता केवल उसके ज्वलन कार्यसे ही उसका अनुमान करते हैं। अथवा जैसे मदिरा पान करनेवाला उन्मत्त होकर नाना कुचेष्टाएं करता है पर जब मदिराका नशा उतर जाता है तब उसकी दशा शान्त हो जाती है। उसकी यह दशा उसीके अनुभवगम्य होती है दर्शक केवल अनुमान से जान सकते हैं कि इसका नशा उतर गया। मदिरामें उन्मत्त करनेकी शक्ति है पर हमें उसका प्रत्यक्ष नहीं होता वह अपने कार्यसे ही अनुमित होती है। अथवा जिस प्रकार सूर्योदय होनेपर सब दिशाएं निर्मल हो जाती हैं उसी प्रकार मिथ्यादर्शनके जानेसे आत्माका अभिप्राय सब प्रकारसे निर्मल हो जाता है। उस गुणका प्रत्यक्ष मति-श्रुत तथा देशावधिज्ञानियोंके नहीं होता किन्तु परमावधि, सर्वावधि मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञानसे युक्त जीवोंके ही होता है। उनकी कथा करना ही हमें आता है क्योंकि उनकी महिमाका यथार्थ आभास होना कठिन है। बात हम अपने ज्ञानकी करते हैं यही ज्ञान हमें कल्याणके मार्गमें ले जाता है।

वस्तुतः आत्मामें अचिन्त्य शक्ति है और उसका पता हमें स्वयमेव होता है। सम्यग्दर्शन गुणका प्रत्यक्ष हमें न हो परन्तु

उसके होते ही हमारी आत्मामें जो विशदताका उदय होता है वह तो हमारे प्रत्यक्षका विषय है। यह सम्यग्दर्शनकी ही अद्भुत महिमा है कि हम लोग बिना किसी शिक्षक व उपदेशकके उदासीन हो जाते हैं। जिन विषयोंमें इतने अधिक तल्लीन थे कि जिनके बिना हमें चैन ही नहीं पड़ता था सम्यग्दर्शनके होनेपर उनकी एकदम उपेक्षा कर देते हैं।

इस सम्यग्दर्शनके होते ही हमारी प्रवृत्ति एकदम पूर्वसे पश्चिम हो जाती है। प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्यका आविर्भाव हो जाता है। श्री पञ्चाध्यायीकारने प्रशम गुणका यह लक्षण माना है।

'प्रशमो विषयेषूच्चैर्भावक्रोधादिकेषु च।
लोकासंख्यातमात्रेषु स्वरूपाच्छिथिलं मनः॥'

अर्थात् असंख्यात लोकप्रमाण जो कषाय और विषय हैं उनमें स्वभावसे ही मनका शिथिल हो जाना प्रशम है। इसका यह तात्पर्य है कि आत्मा अनादि कालसे अज्ञानके वशीभूत हो रहा है और अज्ञानमें आत्मा तथा पर का भेदज्ञान न होनेसे पर्यायमें ही आपा मान रहा है अतः जिस पर्यायको पाता है उसीमें निजत्वकी कल्पना कर उसीकी रक्षाके प्रयत्नमें सदा तल्लीन रहता है। पर उसकी रक्षाका कुछ भी अन्य उपाय इसके ज्ञानमें नहीं आता केवल पञ्चेन्द्रियोंके द्वारा स्पर्श, रस गन्ध, वर्ण एवं शब्दको ग्रहण करना ही इसे सूझता है। प्राणीमात्र ही इसी उपायका अवलम्बन कर जगत्में अपनी आयु पूर्ण कर रहे हैं।

जब बच्चा पैदा होता है तब मांके स्तनको चूसने लगता है इसका मूल कारण यह है कि अनादि कालसे इस जीवके चार संज्ञाएं लग रही हैं उनमें एक आहार संज्ञा भी है, उसके बिना

निःशक्ति होता है, तब तब आहारादिकी इच्छा उत्पन्न होती है; इच्छाके उदयमें आहार ग्रहण करता है और आहार ग्रहण करनेके अनन्तर आकुलता शान्त हो जाती है...इस प्रकार यह चक्र बराबर चला जाता है और तब तक शान्त नहीं होता जब तक कि भेदज्ञानके द्वारा निजका परिचय नहीं हो जाता।

इसी प्रकार इसके भय होता है। यथार्थमें आत्मा तो अजर अमर है ज्ञान गुणका धारी है, और इस शरीरसे भिन्न है फिर भयका क्या कारण है? यहां भी वही बात है अर्थात् मिथ्यात्वके उदयसे यह जीव शरीरको अपना मानता है अतएव इसके विनाशके जहां कारणकूट इकट्ठे हुए वहीं भयभीत हो जाता है। यदि शरीरमें अभेदबुद्धि न होती तो भयके लिये स्थान ही न मिलता। यही कारण है कि शरीर नाशके कारणोंका समागम होने पर यह जीव निरन्तर दुखी रहता है।

यह भय सात प्रकारका है—१ इहलोक भय, २ परलोक भय, ३ वेदना भय, ४ असुरक्षा भय, ५ अगुप्ति भय, ६ आकस्मिक भय और ७ मरण भय। इनका संक्षिप्त स्वरूप यह है—

इस लोकका भय तो सर्वानुभवगम्य है, अतः उसके कहनेकी आवश्यकता नहीं। पर लोकका भय यह है कि जब यह पर्याय छूटती है तब यही कल्पना होती है कि स्वर्गलोकमें जन्म हो तो भद्र—भला है दुर्गतिमें जन्म न हो अन्यथा नाना दुःखोंका पात्र होना पड़ेगा। इसी प्रकार मेरा कोई त्राता नहीं, असाताके उदयमें नाना प्रकारकी वेदनाएं होती हैं यह वेदना भय है। कोई त्राता नहीं जिसकी शरणमें आऊं? यह अशरण-असुरक्षाका भय है, कोई गोप्ता नहीं यही अगुप्ति भय है। आकस्मिक वज्र पातादिक न हो जावे यह आकस्मिक भय है और मरण न हो जावे यह मृत्युका भय है इन सात भयोंसे यह जीव निरन्तर

'यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता
साप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्ता।
अस्मत्कृते च परिशुष्यति काचिदन्या
धिक्तां च तं च मदनं च इमां च मां च॥'

इसका स्पष्ट अर्थ यह है—एक समय एक वनपालने अमृत फल लाकर महाराज भर्तृहरिको भेंट किया। महाराज उस वनपालसे पूछते हैं कि इस फलमें क्या गुण है? वनपाल उत्तर देता है—महाराज! इसे खानेवाला सदा तरुण अवस्थासे सम्पन्न रहेगा। राजाने अपने मनसे परामर्श किया कि यह फल किस उपयोगमें लाना चाहिये? मन उत्तर देता है कि आपको सबसे प्रिय धर्मपत्नी है, उसे देना अच्छा होगा क्योंकि उसके तरुण रहनेसे आपकी विषय पिपासा निरन्तर पूर्ण होती रहेगी संसारमें इससे उत्कृष्ट सुख नहीं। मोक्ष सुख आगम प्रतिपाद्य कल्पना है पर विषय सुख तो प्रत्येकको अनुभूतिका विषय है। राजाने मनकी सम्मत्यनुसार महारानीको बुलाकर वह फल दे दिया। रानीने कहा—महाराज हम तो आपकी दासी हैं और आप करुणानिधान जगत्के स्वामी हैं अतः यह फल आपके ही योग्य है हम सब आपकी सुन्दरताके भिखारी हैं अतः इसका उपयोग आप ही कीजिये और मेरी नम्र प्रार्थनाकी अवहेलना न कीजिये। राजा इन वाक्योंको श्रवण कर अत्यन्त प्रसन्न हुए परंतु इस गुप्त रहस्यको अणुमात्र भी नहीं समझे क्योंकि कामी मनुष्य हेयाहेयके विवेकसे शून्य रहते ही हैं। रानीके मनमें कुछ और था और वचनोंसे कुछ और ही कह रही थी। किसीने ठीक कहा है कि 'मायावी मनुष्योंके भावको जानना सरल बात नहीं।'

राजाने बड़े आग्रहके साथ वह फल रानीको दे दिया। रानी उसे पाकर मनमें बहुत प्रसन्न हुई। रानीका कोटपालके साथ गुप्त

सम्बन्ध होनेके कारण अधिक प्रेम था इसलिये उसने यह फल कोटपालको दे दिया। कोटपालने कहा—महारानी! हम तो आपके भृत्य हैं अतः आप ही इसे उपयोगमें लावें पर रानीने एक न सुनी और वह फल उसे दे दिया।

कोटपालका अत्यन्त स्नेह एक वेश्याके साथ था अतः उसने यह फल वेश्याको दे दिया। उस वेश्याका अत्यन्त स्नेह राजासे था अतः उसने यह फल राजाको दे दिया। फल हाथमें आते ही महाराजकी आँखें खुलीं। उन्होंने वेश्यासे पूछा कि सत्य कहो यह फल कहाँसे आया? अन्यथा शूलीका दण्ड दिया जावेगा। वेश्या कम्पित स्वरसे बोली—महाराज! अपराध क्षमा किया जावे आपका जो नगर कोटपाल है उसका मेरे साथ अत्यन्त स्नेह है उसीने मुझे यह फल दिया है। उसके पास कहाँसे आया? यह वह जाने। उसी समय कोटपाल बुलाया गया। राजाने उससे कहा कि यह फल तुमने वेश्याको दिया है? कोटपाल बोला-हां महाराज! दिया है। राजाने फिर पूछा—तुमने कहांसे पाया? सच सच कहो अन्यथा देश निष्कासन दण्डके पात्र होगे। कोटपालने कम्पित स्वरमें कहा—अन्नदाता! अपराध क्षमा किया जाय, आपकी महारानीका मेरे साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है उन्होंने मुझे यह फल दिया है उनके पास कहांसे आया यह मैं नहीं जानता। दासीको आज्ञा हुई कि इसी समय महारानीको लाओ। दासी जाती है और महाराजका संदेश सुनाती है रानी एकदम भयभीत हो जाती है परन्तु महाराजकी आज्ञा थी अतः शीघ्रतासे दरबारमें पहुंच जाती है।

महाराजने प्रश्न किया कि यह फल तुमने कोटपालको दिया रानी बोली—हाँ महाराज दिया है क्योंकि आपकी अपेक्षा [illegible] उसमें अधिक स्नेह है [illegible] जानती हूं

एक बार वह लेखक ग्रामान्तर जा रहा था, अरण्यमें एक साधु मिला लेखकने साधुको प्रणाम कर अपनी पुस्तक दिखलाई। ज्यों ही साधुकी दृष्टि पुस्तकके ऊपर लिखे हुए 'बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वान्समपकर्षति' वाक्य पर पड़ी त्यों ही वह चौंककर बोले— 'बेटा! यह क्या लिखा है? कहीं विद्वान् भी इन्द्रियोंके वशीभूत होते हैं अतः विद्वान्को काट कर उसके स्थान पर मूर्ख लिख दो।'

लेखक बोला—'बाबा जी! मेरा अनुभव तो ठीक है यदि आपको इष्ट नहीं हो तो मिटा दीजिये।' बाबाजीने उसे पानीसे धो दिया। लेखकके मनमें बहुत दुःख हुआ। यद्यपि उसने अपनी बात सिद्ध करनेके लिये बहुतसे दृष्टान्त दिये तो भी साधुके मनमें एक भी नहीं आया।

लेखक वहांसे चला और भ्रमण करता हुआ बनारस पहुँचा। वहां पर उसने बहुरूप बनानेमें निष्णात मनुष्यके पास रहकर एक वर्षके अन्दर स्त्री वेष रखनेकी कला सीखी और एक वर्ष तक वेश्याओं के पास रहकर गान विद्यामें निपुणता प्राप्त की। अब वह स्त्री जैसा रूप रखने और वेश्या जैसा गानेमें पटु हो गया। उसके मनमें साधुके समक्ष अपनी पुस्तकके पूर्व वाक्यकी यथार्थता सिद्ध करनेकी चिन्ता लगी हुई थी अतः वह उसी रास्तासे लौट। बाबाजी की कुटिया आनेके पहले ही उसने एक सुन्दर [illegible] रूप धारण कर [illegible] पहले जब उसके लिये [illegible]

[illegible]

मैं अबला हूँ, युवती हूँ, रूपवती हूँ, दिन थोड़ा रह गया है, अंधेरी रात आनेवाली है। और सघन वन है आगे जाने पर न जाने कौन मुझे हरण कर लेगा ? यदि मनुष्यसे बच भी गई तो भी कोई हिंसक जन्तु खा जावेगा। आप अनाथोंके नाथ साधु हैं अतः मेरे ऊपर दया कीजिये, कोई श्राप देनेवाला नहीं, मैं इसी वृक्षके नीचे आपकी छत्रछायामें पड़ी रहूँगी, आपके भजनमें मेरे द्वारा कोई बाधा न होगी।'

महाराज बोले—'हम यहां मनुष्य तकको नहीं रहने देते फिर तुम तो स्त्री हो, स्त्री ही नहीं युवती हो, युवती ही नहीं रूपवती भी हो अतः इस स्थान पर नहीं रह सकती, आगे जाओ अभी काफी दिन है।'

स्त्री बोली—'महाराज ! इतने निष्ठुर न बनो, आप तो साधु हैं, समदर्शी हैं, हम लोग तो आपको पिता तुल्य मानते हैं। सुमेरु भले ही चलायमान हो जावे और सूर्योदय पूर्वसे न होकर भले ही पश्चिमसे होने लग जाय पर साधु महानुभावोंका मन कदापि विचलित नहीं होता अतः महाराज ! उचित तो यह था कि मैं दिन भरकी थकी आपके आश्रममें आई इसलिये आप मेरे खाने पीनेकी व्यवस्था करते परन्तु यह दूर रहा आप तो रात्रि भर ठहरनेकी भी आज्ञा नहीं देते। सत्य है—विपत्ति काल में कोई भी सहायक नहीं होता। आपकी जो इच्छा हो सो कहिये परन्तु मैं तो इस वृक्षतलसे आगे एक कदम भी नहीं जाऊंगी—भूखी प्यासी यहीं पड़ी रहूंगी।'

जब साधु महाराजने देखा कि यह बला टलनेवाली नहीं तब चुपचाप कुटियाका दरवाजा बन्द कर सो गये। जब १० बज गये, जगङ्गल सुनसान हो गया और पशु पक्षीगण अपने अपने नीड़ों पर जाकर शयन करने लगे तब यह शृङ्गार रसमय

गाना गाने लगी यह गाना इतना आकर्षक और इतना सुन्दर था कि जिसे श्रवण कर अच्छे अच्छे पुरुषोंके चित्त चञ्चल हो जाते।

साधु महाराजने ज्यों ही गाना सुना त्यों ही कामवेदनासे पीड़ित हो उठे—अपने आपको भूल गये। वे रूप तो दिनमें देख ही चुके थे उतने पर रजनीकी नीरव वेला थी किसीका भय था नहीं अतः कुटीके कपाट खोल कर ज्योंही बाहर आनेकी चेष्टा करने लगे त्यों ही उसने बाहरकी सांकल बन्द कर दी। बाबाजीने आवाज लगाई—'बेटी! कपाट किसने लगा दिया? मुझे पेशाबकी बाधा है।' स्त्री बोली—'पिताजी! मैंने।' साधु महाराजने कहा—'बेटी। क्यों लगादी।' उसने दृढ़ताके साथ उत्तर दिया—'महाराज! आखिर आप पुरुष ही तो हैं, पुरुषोंका क्या भरोसा? रात्रिका मध्य है, सुनसान एकान्त है। यदि आपके चित्तमें कुछ विकार हो जावे तो इस भयानक वनमें मेरी रक्षा कौन करेगा।' साधु बोले—'बेटी! ऐसा दुष्ट विकल्प क्यों करती हो?' स्त्री बोली—'यह तो आप ही जानते हैं आप ही अपने मनसे पूछिये कि मेरे ऐसा विकल्प क्यों होरहा है? आपके हृदयमें कलङ्कमय भाव उत्पन्न हुए बिना मेरा ऐसा भाव नहीं हो सकता।' साधु बोले—'बेटी! मैं शपथपूर्वक कहता हूँ और परमात्मा इसका साक्षी है कि मैं कदापि तेरे साथ दुर्व्यवहार न करूंगा।' स्त्री बोली—'आप सत्य ही कहते हैं परन्तु मेरा चित्त इस विषयमें आज्ञा नहीं देता। क्या आपने रामायणमें नहीं पढ़ा कि सीताहरणके लिये रावणने कितना मायाचार किया? यह मनोज अत्यन्त निर्दय है यह इतना भयानक पाप है कि इसके वशीभूत होकर मनुष्य अन्धा हो जाता है, माता पुत्री भगिनी आदि किसीको नहीं गिनता। इसीलिये तो ऋषियोंने यहां तक आज्ञा दी है कि एकान्तमें अपनी मां तथा सहोदरा आदिसे भी

संभाषण न करो। अतः आप कुटीके भीतर ही पेशाब कर लीजिये मैं प्रातः कालके पहले कपाट न खोलूंगी।'

साधु महाराज उसके निराशा पूर्ण उत्तरसे खिन्न होकर बोले—'हम तुझे शाप दे देंगे तुझे कुष्ट हो जावेगा।' स्त्री बोली-'इन भर्त्सनाओंको छोड़ो, यदि इतनी तपस्या होवे तो कपाट व खोल लेवे, केवल गप्पोंसे कुछ नहीं होगा।'

जब साधु महाराजको कुछ उपाय नहीं सूझ पड़ा तब वे कुटीका छप्पर काटकर काम वेदना शान्त करनेके लिये बाहर आये और इतनेमें ही क्या देखते हैं कि वहां पर स्त्री नहीं है वही पण्डित (लेखक) जो दो वर्ष पहले आया था पुस्तक खोले खड़ा है और कह रहा है कि महाराज ! इस पुस्तक पर लिखा हुआ यह श्लोक 'बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपकर्षति' लिखा रहने दें या पुनः लिख लेवें।' साधुने लज्जित भावसे उत्तर दिया—'बेटा ! यह श्लोक तो स्वर्णाक्षरमें लिखने योग्य है।'

यदि परमार्थदृष्टिसे देखा जावे तो विकार कोई वस्तु नहीं क्योंकि औपाधिक पर्याय है परंतु जब तक आत्माको इनमें निजत्व बुद्धि रहती है तब तक यह संसारका ही पात्र रहता है। इस प्रकार मैथुन संज्ञासे संसारके सब जीवोंकी दुर्दशा हो रही है।

इसी तरह परिग्रह संज्ञासे संसारमें नाना अनर्थ होते हैं। इसका लक्षण श्री उमास्वामीने तत्त्वार्थसूत्रमे 'मूर्च्छा परिग्रहः' कहा है। 'प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा' इस सूत्रसे प्रमत्तयोगकी अनुवृत्ति आती है और तब 'प्रमत्तायोगात् मूर्च्छा परिग्रहः' इतना लक्षण हो जाता है। वस्तुतः अनुवृत्ति लानेकी कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि मूर्च्छाके लक्षणमें ही 'प्रमत्तयोग' शब्द पड़ा हुआ है 'ममेदं बुद्धि लक्षण ही परिग्रह है अर्थात् पर पदार्थ में 'यह मेरा है' ऐसा जो अभिप्राय है वही मूर्च्छा है। यह

भाव बिना मिथ्यात्वके होता नहीं। पर पदार्थको आत्मीय मानना ही मिथ्यात्व है। यद्यपि पर पदार्थ आत्मा नहीं हो जाता तथापि मिथ्यात्वके प्रभावसे हमारी कल्पनामें आत्मा ही दीखता है। जैसे जो मनुष्य रज्जुमें सर्प भ्रान्ति हो जानेके कारण भयसे पलायमान होने लगता है परन्तु रज्जु रज्जु ही है और सर्प सर्प ही है, ज्ञानमें जो सर्प आ रहा है वह ज्ञानका दोष है प्रमेय नहीं इसीको अन्तर्ज्ञेय कहते हैं, इस अन्तर्ज्ञेयकी अपेक्षा वह ज्ञान अप्रमाण नहीं क्योंकि यदि अन्तर्ज्ञेय सर्प न होता तो वह पलायमान नहीं होता। उस ज्ञानको जो मिथ्या कहते हैं वह बाह्य प्रमेयकी अपेक्षा ही कहते हैं। इसीलिये श्री समन्तभद्र स्वामीने देवागमस्तोत्रमें लिखा है—

'भावप्रमेयापेक्षायां प्रमाणाभासनिह्नवः।'
'बहिःप्रमेयापेक्षायां प्रमाणं तन्निभं च ते॥'

अर्थात् यदि अन्तर्ज्ञेयकी अपेक्षा वस्तु स्वरूपका विचार किया जावे तो कोई भी ज्ञान अप्रमाण नहीं क्योंकि जिस ज्ञानमें प्रतिभासित विषयका व्यभिचार न हो वही ज्ञान प्रमाण है। जब हम मिथ्याज्ञानके ऊपर विचार करते हैं तब उसमें जो अन्तर्ज्ञेय भासमान हो रहा है वह तो ज्ञानमें है ही। यदि ज्ञानमें सर्प न होता तो पलायमान होनेकी क्या आवश्यकता थी? फिर उस ज्ञानको जो मिथ्या कहते हैं वह केवल बाह्य प्रमेयकी अपेक्षा ही कहते हैं क्योंकि बाह्यमें सर्प नहीं है रज्जु है, अतएव स्वामीने यही सिद्धान्त [illegible] बाह्य प्रमेय की अपेक्षा है ज्ञानके [illegible] और [illegible] व्यवस्था है अन्तरङ्ग प्रमेय [illegible]

[illegible] है।

[illegible]

कितने ही प्रकारसे समझानेका प्रयत्न क्यों न किया जावे सब विफल होता है क्योंकि अन्तरङ्गमें मिथ्यादर्शनकी पुट विद्यमान रहती है। जैसे कामला रोगीको शङ्ख पीला ही दीखता है उसे कितना ही क्यों न समझाया जावे कि शङ्ख तो शुक्ल ही होता है आप बलात्कार पीत क्यों कह रहे हैं पर वह यही उत्तर देता है कि आपकी दृष्टि विभ्रमात्मक है जिससे पीले शङ्खको शुक्ल कहते हो।

इससे यह सिद्ध हुआ कि जब तक मिथ्यादर्शनका सद्भाव है तबतक पर पदार्थसे आत्मीय बुद्धि नहीं जा सकती। जिन्हें सम्यग्ज्ञान अभीष्ट है उन्हें सबसे पहले अभिप्रायको निर्मल करनेका प्रयत्न करना चाहिये। जिनका अभिप्राय मलिन है वे सम्यग्ज्ञानके पात्र नहीं अतः सब परिग्रहोंमें महान् पाप मिथ्यात्व परिग्रह है। जबतक इसका अभाव नहीं तब तक आप कितने ही व्रत तप संयमादि ग्रहण क्यों न करें मोक्षमार्गके साधक नहीं। इस मिथ्यात्वके सद्भावमें ग्यारह अङ्ग और नौ पूर्वका तथा बाह्यमें मुनि धर्मका पालन करनेवाला भी नव ग्रैवेयकसे ऊपर नहीं जा सकता। अनन्तवार मुनि लिङ्ग धारण करके भी इसी संसार में रुलता रहता है।

मिथ्यात्वका निर्वचन भी सम्यक्त्वकी तरह ही दुर्लभ है क्यों कि ज्ञानगुणके बिना जितने अन्य गुण हैं वे सब निर्विकल्पक हैं। ज्ञान ही एक ऐसी शक्ति आत्मामें है कि जो सबकी व्यवस्था बनाये है—यही एक ऐसा गुण है जो परकी भी व्यवस्था करता है और अपनी भी। मिथ्यात्वके कार्य जो अतत्त्वश्रद्धानादिक हैं वे सब ज्ञानकी पर्याय हैं। वास्तवमें मिथ्यात्व क्या है यह मन वचन ज्ञानके गम्य नहीं। [illegible] कारण है इसका अनुमान किया जाता है ऐसे वातावरणसे

जाता है। जो जो वस्तुजात धनाढ्योंके बालकोंको अपकारक समझे जाते हैं वही वही वस्तुजात निर्धनोंके बालकोंके सहायक देखे जाते हैं। जगत्की रीति ऐसी विलक्षण है कि जिसके पास कुछ पैसा हुआ लोग उसे पुण्यशाली पुरुष कहने लगते हैं क्योंकि उनके द्वारा सामान्य मनुष्योंको कुछ सहायता मिलती है और वह इसलिये मिलती है कि सामान्य मनुष्य उन धनाढ्यों की असत् प्रशंसा करें। यह लोक जो कि धनाढ्यों द्वारा द्रव्यादि पाकर पुष्ट होते हैं चारण लोगोंका कार्य करते हैं यदि यह न हो तो उनकी पोल खुल जावे। बड़े बड़े प्रतिभाशाली कविराज जरा सी द्रव्य पानेके लिये ऐसे ऐसे वर्णन करते हैं कि साधारणसे साधारण धनाढ्यको इन्द्र, धनकुबेर तथा दानवीर, कर्ण आदि कहनेमें भी नहीं चूकते। यद्यपि वह धनाढ्यलोग उन्हें धन नहीं देना चाहते तथापि अपने ऐबों-दोषोंको छिपानेके लिये लाखों रुपये दे डालते हैं। उत्तम तो यह था कि कवियोंको प्रतिभाका सदुपयोग कर स्वात्माकी परणतिको निर्मल बनानेकी चेष्टा करते परन्तु चन्द चाँदीके टुकड़ोंके लोभसे लालायित होकर अपनी अलौकिक प्रतिभा विक्रय कर देते हैं। ज्ञान प्राप्तिका फल तो यह होना उचित था कि संसारके कार्योंसे विरक्त होवें पर वह तो दूर रहा केवल लोभके वशीभूत होकर आत्माको बाह्य पदार्थोंका अनुरागी बना लेते हैं। अस्तु,

मिथ्यात्व परिग्रहका अभाव हो जाने पर भी यद्यपि परिग्रह-का सद्भाव रहता है तथापि उसमें इसकी निजत्व कल्पना मिट जाती है अतः सब परिग्रहोंका मूल मिथ्यात्व ही है। जिन्हें संसार बन्धनसे छूटनेकी अभिलाषा है उन्हें सर्व प्रथम इसीका त्याग करना चाहिये क्योंकि इसका त्याग करनेसे सब पदार्थोंका त्याग सहज हो जाता है [illegible] इस प्रकार पाईजाने अपनी

सरल सौम्य एवं गम्भीर मुद्रामें जो लम्बा तत्त्वोपदेश दिया था उसे मैंने अपनी भाषामें यहां परिव्यक्त करनेका प्रयत्न किया है।

मैंने कहा—'बाईजी ! आखिर हम भी तो मनुष्य हैं मनुष्य ही तो महाव्रत धारण करते हैं और अनेक उपसर्ग—उपद्रव आने पर भी अपने कर्तव्यसे विचलित नहीं होते। उनका भी तो मेरे ही जैसा औदारिक शरीर होता है फिर मैं इस जरासे व्रतको धारण न कर सकूंगा ?'

बाईजी चुप हो रहीं पर श्रीदाऊचन्द्रजी सवालनवीस बोले—'जो आपकी इच्छा हो सो करो परन्तु व्रतको लेकर उसका निर्वाह करना परमावश्यक है। शीघ्रता करना अच्छा नहीं, हमने अनादि कालसे यथार्थ व्रत नहीं पाला यों तो द्रव्यलिङ्ग धारण कर अनन्तबार यह जीव ग्रैवेयक तक पहुंच गया परन्तु सम्यग्ज्ञान पूर्वक चारित्रके अभावमें संसार बन्धनका नाश नहीं कर सका। आपने जैनागमका अभ्यास किया है और प्रायः आपकी प्रवृत्ति भी उत्तम रही है परन्तु आपके व्यवहारसे हम आपकी अन्तरङ्ग परिणतिको जानते हैं और उसके आधार पर कह सकते हैं कि आप अभी व्रत लेनेके पात्र नहीं। यह हम अच्छी तरह जानते हैं कि आपकी प्रवृत्ति इतनी सरल है कि मनुष्य उससे अनुचित लाभ उठाना चाहते हैं अतः आप इन्हीं अनुचित कार्यों से खिन्न होकर व्रत लेनेके सम्मुख हुए हैं। आशा है आप हमारी बातपर पूर्ण रीतिसे विचार करेंगे।'

मैंने कहा—'आपका कहना अक्षरशः सत्य है परन्तु मेरी आत्मा यदि व्रत न लेवेगा तो बहुत खिन्न रहेगी अतः अब मैं किसी विशेष व्यक्तिके पास व्रत ले [illegible] कुछ नहीं होगा तो न सही पर मेरी जो यह बाह्य प्रवृत्ति [illegible] छूट जावेगी और [illegible] व्यर्थ [illegible] होता है उससे बच जा[illegible] मेरा विश्वास है कि मेरा यह

प्रवृत्ति रह गई है और न अष्ट मूलगुण धारण करनेकी प्रवृत्ति ही रही है। इनके बलपर ही तो आपका देशसंयम सुरक्षित रह सकेगा। यद्यपि बाईजीकी पूर्ण योग्यता है परन्तु अब उनका जीवन बहुत थोड़ा है अतः उनके पश्चात् तुम्हें पराधीन होना पड़ेगा। तुम्हारा ख्याल है कि मैं अपना ही क्या दो अन्य त्यागियोंका भी बाईजीके द्रव्यसे निर्वाह कर सकता हूँ परन्तु बहुत अंशोंमें तो तुमने उसे पहले ही व्यय कर दिया। यह मैं मानता हूँ कि अब भी जो अवशिष्ट है वह तुम्हारे लिये पर्याप्त है परन्तु मैं हृदयसे कहता हूँ कि बाईजीके स्वर्गवासके बाद तुम उसमेंका एक पैसा भी न रक्खोगे और उस हालतमें तुम्हें पराधीन ही रहना पड़ेगा। उस समय यह नहीं कह सकोगे कि हम अष्ट मूलगुण धारण करनेवालेके ही यहाँ भोजन करेंगे।

यदि अधिक आग्रह करोगे तो लोग तुम्हारे समक्ष प्रतिज्ञा भी धारण कर लेवेंगे परन्तु वह नाममात्रकी प्रतिज्ञा होगी। जैसे वर्तमानमें मनुष्य मुनिराजके समक्ष भी प्रतिज्ञा कर लेते हैं कि मेरे आजन्म शूद्र जलका त्याग है अत्र जल ग्रहण कीजिये पश्चात् उन्हें इस प्रतिज्ञाके छोड़नेमें कोई प्रकारका भय नहीं रहता। यही हाल आपके अष्टमूल गुणोंका होगा।

आप जानते हैं—१०० में ९० अस्पतालकी दवा सेवन करते हैं उनके अष्ट मूलगुण कहाँ हो सकते हैं? इसके सिवाय इस कालमें न्यायोपार्जित धनके द्वारा निष्पन्न आहारका मिलना प्राय: दुर्लभ है क्योंकि [illegible] जाने दीजिये बड़े बड़े रईस लोग भी आज [illegible] और धुड़नामें द्रव्यका संचय करते आते हैं [illegible] सम्पादन हो [illegible]। अब अत्र [illegible] बिना विचारे प्र[illegible] [illegible] यह उत्तम है परन्तु यथार्थ

रीतिसे पालन किया जाना चाहिये। केवल लौकिक मनुष्योंमें यह प्रसिद्धि हो जावे कि अमुक मनुष्य व्रती है...इसी दृष्टिसे व्रती होना कहां तक योग्य है ?

मैं यह भी मानता हूं कि आप साक्षर हैं तथा आपका पुण्य भी विशिष्ट है अतः आपकी व्रत शिथिलता भी आपकी प्रतिष्ठामें बाधक न होगी। मैं किसीकी परीक्षा लेनेमें संकोच नहीं करता परन्तु आपके साथ कुछ ऐसा स्नेह हो गया है कि आपके दोष देख कर भी नहीं कह सकता। इसीसे कहता हूँ कि यदि आप सदोष भी व्रत पालेंगे तो भी प्रशंसाके पात्र होंगे परन्तु परमार्थसे आप उस व्रतके पात्र नहीं।

प्रथम तो आपमें इतनी अधिक सरलता है कि प्रत्येक मनुष्य आपके प्रभावमें आजाता है फिर आपकी प्रतिभा और आगमका ज्ञान इतना अधिक है कि लोग आपके समक्ष मुंह भी खोलनेमें संकोच करते हैं परन्तु इससे क्या व्रतमें यथार्थता आ सकेगी ?

आप यह स्वयं जानते हैं कि व्रत तो वह वस्तु है कि जिसकी यथार्थता होनेपर संसार बन्धन स्वयमेव छूट जाता है अतः मेरी यही सम्मति है कि ज्ञानको पाकर उसका दुरुपयोग न करो ! मुझे भी कुन्दकुन्द महाराजके इन वचनोंकी स्मृति आती है कि 'हे प्रभो ! मेरे शत्रुको भी द्रव्यलिङ्ग न हो।' इसलिये आप कुछ दिन तक अभ्यास रूपसे व्रतोंका पालन करो पश्चात् जब सम्यक् अभ्यास हो जावे तब व्रत ग्रहण कर लेना। बस, अब आपकी जो इच्छा हो सो करो।'

इसके अनन्तर बाईजी बोलीं -

[illegible] आपके शब्दोंको सुनकर मुझे बहुत [illegible]

[illegible]

यह महान् दोष है कि यह पूर्वापर आलोचना किये विना ही कार्यको प्रारम्भ कर देता है—चाहे उसमें उत्तीर्ण हो या अनुत्तीर्ण। इसकी प्रकृति सरल है परन्तु उग्र है—क्रोधी है। यह ठीक है कि स्थायी क्रोधी नहीं, मायाचारी नहीं। दानी भी है परन्तु कहाँ देना चाहिये इसका विवेक नहीं। भोजनमें इसके विरुद्ध कुछ भी हुआ कि इसका क्रोध १०० डिग्री हो जाता है। थाली फोड़ दे, लोटा फोड़ दे, स्वयं भूखा मरे। मैं ही इसके इस अनर्गल क्रोधको सहती हूँ और सहनेका कारण यह है कि इसे प्रारम्भसे पुत्रवत् पाला है अब इसकी रक्षा करना मेरा कर्तव्य है। इन सब बातोंके होते हुए भी इसकी प्रवृत्ति धर्ममें दृढ़ है परन्तु यह भूल करता है इसका परिणाम व्रत पालनेके योग्य नहीं। फिर बात यह है कि मनुष्य जो प्रतिज्ञा लेता है उसका किसी तरह निर्वाह करता ही है यह भी करेगा पर उचित यही था कि अभी कुछ दिन तक अभ्यास करता।'

मैं कुछ कहना चाहता था, पर बाईजी मेरी मुद्राको देखकर आगे कहती गई कि 'यह अब किसीकी सुननेवाला नहीं अतः अब इस विषयकी कथा छोड़िये, जो इसके मनमें आवे सो करे परन्तु चरणानुयोगका मननकर त्याग करे तो अच्छा है। आजकल प्रत्येक बातमें विवाद चलता है। मैं क्यों विकल्पमें पड़ूँ जो भवितव्य होगा वही होगा।'

इतना कहकर बाईजी तटस्थ रह गईं, मैं व्रत पालनेकी चेष्टा करने लगा। अभ्यास तो पहले था ही नहीं अतः धीरे धीरे व्रत पालने लगा। प्रथम जैसा आगममें लिखा है वैसा नहीं होता था, अर्थात् त्रयोदशी या सप्तमीके दिन धारणाके बाद फिर दूसरी बार भोजनका त्याग होना चाहिये पश्चात् चतुर्दशी या अष्टमीको दोनों बार भोजनका त्याग और अमावास्या या नवमी

दो पारणाके बाद सायंकालके भोजनका त्याग...इसतरह चार भुक्तियोंका त्याग एक उपवासमें होना चाहिये और वह काल धर्मध्यानमें बिताना चाहिये—संसारके प्रपञ्चोंसे बचना चाहिये शान्तिपूर्वक काल यापन करना चाहिये पर हमारी यह प्रवृत्ति थी कि त्रयोदशी और सप्तमीके दिन सायंकालको भोजन करते थे केवल चतुर्दशी और अष्टमीके दिन दोनों समय भोजन नहीं करते थे, अमावस्या और नवमीको भी दोनों बार भोजन करते थे....यही हमारा उपवास था किन्तु स्वाध्यायमें काल यापन अवश्य करते थे। सामायिक तीनों काल करते थे परन्तु समय पर नहीं करते थे मध्याह्नका प्रायः चूक जाते थे पर श्रद्धा ज्योंकी त्यों थी। सबसे महती त्रुटि यह थी कि अष्टमी और चतुर्दशीको भी शिरमें तेल डालते थे, कच्चे जलसे स्नान करते थे, कहनेका तात्पर्य यह है कि मेरे व्रतमें चरणानुयोगकी बहुतसी गलतियां रहती थीं और उन्हें जानता भी था, परन्तु शक्तिकी हीनता जनित परिणामोंकी दृढ़ता न होनेसे यथा योग्य व्रत नहीं पाल सकता था अतः धीरे धीरे उनमें सुधार करने लगा। यह सब होनेपर भी मनमें निरन्तर यथार्थ व्रत पालनेकी ही चेष्टा रहती थी और यह भी निरन्तर विचारमें आता रहता था कि तुमने बाबाजी तथा बाईजीका कहना नहीं माना उसी का यह फल है पर अब क्या होता है ?

५४
पञ्चोंकी अदालत

एक बार हम और कमलापति सेठ बरायठामें परस्पर बातचीत कर रहे थे। सेठजीने कुछ गम्भीर भावसे कहा कि 'क्या कोई ऐसा उपाय है जिससे हमारे यहाँ विवाहमें स्त्रियोंका जाना बन्द हो जावे क्योंकि जहाँ स्त्री समाजकी प्रमुखता होती है वहाँ अनेक प्रकार अनर्थोंकी सम्भावना सहज ही हो जाती है। प्रथम तो नानाप्रकारके भण्ड वचन उनके श्री मुखसे निकलते हैं द्वितीय इतर समाजके सम्मुख नीचा देखना पड़ता है। अन्य समाजके लोग बड़े गर्वके साथ कहते हैं कि तुम्हारो समाजकी यही सभ्यता है कि स्त्री समाज निर्लज्ज होकर भण्ड गीतोंका आलाप करती है।'

मैंने कहा—'उपाय क्यों नहीं है? केवल प्रयोगमें लानेकी कमी है, आज शामको इस विषयकी चर्चा करेंगे।'

निदान हम दोनोंने रात्रिको शास्त्र प्रवचनके बाद इसकी चर्चा छेड़ी और फलस्वरूप बहुत कुछ विवादके बाद सबने विवाहमें स्त्री समाजका न जाना स्वीकार कर लिया। इसके बाद दूसरे दिन हम दोनों नीमटोरिया आये। यहाँ पर बरायठा ग्रामसे एक बरात आई थी। यहाँ पर जो लड़कीका मामा था उससे मामूली अपराध बन गया था अतः लोगोंने उसका विवाहमें आना

'बोध कहाँसे हो ? केवल पुस्तकें ही तो आपने पढ़ी हैं अभी लौकिक शास्त्रसे अनभिज्ञ हो, अभी आप बुन्देलखण्डके पञ्चोंके जालमें नहीं आये इसीसे यह सब परोपकार सूझ रहा है'... झुँझला कर उसने कहा।

'भाई साहब ! मैं आपके कहनेका कुछ भी रहस्य नहीं समझा, कृपया शीघ्र समझा दीजिये, बहुत विलम्ब हुआ'...... मैंने जिज्ञासा भावसे कहा।

'जल्दीसे काम नहीं चलेगा, यहाँ तो अपराधीको महीनों पञ्चोंकी खुशामद करनी पड़ती है तब कहीं उसकी बातपर विचार होता है, यह तो पञ्चोंकी अदालत है यहाँमें जाकर मामला तय होता है' . . बड़े गर्वके साथ उसने कहा। 'महाशय ! इन व्यर्थकी बातोंमें कुछ नहीं, उसकी औरत बहुत सुन्दर है— इसके बाद कहिये'..... मैंने झुँझला कर कहा।

'जब वह मन्दिरमें, कुए पर या अन्य कहीं जाती है उसके पैरकी आहट सुनकर लोग उसके मुखकी ओर ताकने लगते हैं और जब वह अपने साथकी औरतोंके साथ वार्तालाप करती है तब लोग कान लगाकर सुनने लगते हैं मैं कहाँ तक कहूँ ? उसके यहाँ निमन्त्रण होता है तो लोग उसका हाथ देखकर मोहित हो जाते हैं, अन्यकी क्या कहूँ ? मैं स्वयं एक बार उसके घर भोजनके लिये गया तो उसके पग देखकर मोहित हो गया, यही कारण है कि जिससे पञ्चोंने उसे विवाहमें बन्द कर दिया' .. उसने कहा।

'महाराज ! क्या कभी उसने पर पुरुषके साथ अनाचार भी किया है ?'...मैंने पूछा।

'सो तो सुननेमें नहीं आया'......उन्होंने कहा।

बहिष्कृत न किया जावे। यह भी नियम पास हो गया कि पंगतमें आलू बैंगन आदि अभक्ष्य पदार्थ न बनाये जावें, तथा रात्रिके समय मन्दिरमें शास्त्र प्रवचन हो और उसमें सब सम्मिलित हों।

यहां पर एक दरिद्र आदमी था उसके निर्वाहके लिये चन्दा इकट्ठा करनेकी बात जब कही, तब एक महाशयने बड़े उत्साहके साथ कहा कि चन्दाकी क्या आवश्यकता है? अपने दो मास भोजन मैं करा दूंगा। उनकी बात सुनकर पांच अन्य महाशयोंने भी दो दो मास भोजन कराना स्वीकार कर लिया। इस तरह हम दोनोंका यहां आना सार्थक हुआ।

उस समय हमारे मनमें विचार आया कि ग्रामीण जनता बहुत ही सरल और भोली होती है, उन्हें कोई उपदेश देनेवाला नहीं अतः उनके मनमें जो आता है वही कर बैठते हैं। यदि कोई निष्कपट भावसे उन्हें उपदेश देवे तो उस उपदेशका महान् आदर करते हैं और उपदेशदाताको परमात्मातुल्य मानते हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि विद्वान् ग्रामोंमें जाकर वहांके निवासियोंकी प्रवृत्तिको निर्मल बनानेकी चेष्टा करें।

५६

श्रीमान् बाबा गोकुलचन्द्रजी

बाबा गोकुलचन्द्रजी एक आदर्श त्यागी थे, आप ही
उद्योगसे इन्दौरमें उदासीनाश्रमकी स्थापना हुई थी। जब आ
इन्दौर गये और उनके उक्त त्यागियोंकी देखभाल
चित्र देखा तब श्रीमान् सर सेठ हुकमचन्दजी साहब
प्रभावित हो गये और आप दोनों भाइयोंने दस दस हजार
देकर बीस हजारकी रकमसे इन्दौरमें एक उदासीनाश्रम
स्थापित कर दिया। परन्तु आपकी भावना यह थी कि कुण्डल
पुर क्षेत्र पर भी इतर स्थानोंके सदृश आश्रमकी स्थाप
होना चाहिये अतः आप सिवनी, नागपुर, छिन्दवाड़ा, जबलपुर,
कटनी, दमोह आदि स्थानों पर गये और अपना मन्तव्य प्रक
किया। जनता आपके मन्तव्यसे सहमत हुई और उसने करीब
हजारकी लागतसे कुण्डलपुरमें एक उदासीनाश्रमकी स्थापना
कर दी।

आप बहुत ही सदाचारी व्यक्ति थे। आपके एक पुत्र भी
था जो कि आज प्रसिद्ध विद्वानोंकी गणनामें हैं। उसका नाम
पं० जगन्मोहनलालजी शास्त्री है। इनके द्वारा कटनी पाठशाला
सम्बन्ध चल रहा है तथा गुरुकुल पुरस्कृत और वर्णीगुरुकुल जबल
पुरके ये अधिष्ठाता हैं।

बाबाजीने कहा—'अच्छा आज ही व्रत ले लो, प्रथम
वीरप्रभुकी पूजा करो पश्चात् आओ व्रत दिया जावेगा।'

मैंने आनन्दसे श्रीवीरप्रभुकी पूजा की अनन्तर
विधिपूर्वक मुझे सप्तमी प्रतिमाके व्रत दिये। मैंने
चारियोंसे इच्छाकार किया और यह निवेदन किया कि मैं
शक्तिवाला क्षुद्र जीव हूँ आप लोगोंके सहवासमें इस
अभ्यास करना चाहता हूँ आशा है मेरी नम्र प्रार्थना पर
लोगोंकी अनुकम्पा होगी। मैं यथाशक्ति आप लोगोंकी
करनेमें सन्नद्ध रहूँगा।'

सबने हर्ष प्रकट किया और उनके समागममें आनन्दसे
जाने लगा।

बाबाजीने कहा—'अच्छा आज ही व्रत ले लो, प्रथम तो श्री वीरप्रभुकी पूजा करो पश्चात् आओ व्रत दिया जावेगा।'

मैंने आनन्दसे श्रीवीरप्रभुकी पूजा की अनन्तर बाबाजीने विधिपूर्वक मुझे सातवीं प्रतिमाके व्रत दिये। मैंने उपस्थित ब्रह्मचारियोंसे इच्छाकार किया और यह निवेदन किया कि मैं अल्पशक्तिवाला क्षुद्र जीव हूँ आप लोगोंके सहवासमें इस व्रतका अभ्यास करना चाहता हूँ आशा है मेरी नम्र प्रार्थना पर आप लोगोंकी अनुकम्पा होगी। मैं यथाशक्ति आप लोगोंकी सेवा करनेमें सन्नद्ध रहूँगा।'

सबने हर्ष प्रकट किया और उनके सम्पर्कमें आनन्दसे काल जाने लगा।

५७

पञ्चोंका दरबार

एक दिन मैंने बाबा गोकुलचन्द्रजीसे कहा—'महाराज! बड़ा-गांवके आसपास बहुतसे गोलालारीड़े घर अपनी जातिसे बाह्य हैं यदि आपका विहार इस क्षेत्रमें हो जाय तो उनका उद्धार सहज ही हो जाय। मैं आपकी सेवा करनेके लिये साथ चलूंगा।'

बाबाजीने स्वीकार किया, हम लोग बांदकपुर स्टेशनसे रेलमें बैठकर सलैया आगये और वहांसे ३ घन्टेमें बड़गांव पहुंच गये। सागरसे पं० मूलचन्द्रजी, कटनीसे पं० बाबूलालजी, रोठीसे श्री सिं० लक्ष्मणदासजी तथा रैंपुरासे लम्बरदार आदि बहुतसे सज्जन गण भी आ पहुंचे। सिंघई प्यारेलाल कुन्दीलालजी वहां घर थे ही।

रघुनाथ नारायणदास मोदीसे हम लोगोंने कहा कि सायंकाल पञ्चायत बुलानेका आयोजन करो। उन्होंने वैसा ही किया, हम लोगोंने बाबाजीकी प्रवचनशालामें सामायिक की रात्रिके ८ बजे सब महाशय एकत्र हो गये

मैंने कहा—'इस ग्रामके जो पञ्चने शुद्ध हो [illegible] उनको भी बुलाओ।' रघुनाथ मोदी स्वयं गये और [illegible] लोगोंको 'निमन्त्रण' अवस्था [illegible]

वर्षके लगभग होगी साथ ले आये। ग्रामके और लोग भी पञ्चायत देखनेके लिये आये। श्री बाबा गोकुलचन्द्रजी सर्व सम्मतिसे सभापति चुने गये। यहां सभापतिसे तात्पर्य सरपञ्चका है। मैंने ग्रामके पञ्च सरदारोंसे नम्र शब्दोंमें निवेदन किया कि—

'यह दुःखमय संसार है, इसमें जीव नाना दुःखोंके पात्र होते हुए चतुर्गतिमें भ्रमण करते करते बड़े पुण्यसे मनुष्य जन्म पाते हैं। मनुष्योंमें उत्पन्न होकर भी जैनकुलमें जन्म पाना चतुष्पथके रत्नकी तरह परम दुर्लभ है। आज रघुनाथ मोदी आपके जैनकुलमें जन्म लेकर भी ५० वर्षसे जातिबाह्य हैं और जाति बाह्य होनेके कारण सब धर्म कार्योंसे वञ्चित रहते हैं अतः इन सबका उद्धार कर आप लोग यशोभागी हूजिये। मेरे कहनेका यह तात्पर्य नहीं कि इन्हें निर्णयके बिना ही जातिमें मिला लिया जावे किन्तु निर्णयकी कसौटीमें यदि ये उत्तीर्ण हो जावें तो मिलानेमें क्या क्षति है.....?'

इतना कहकर मैं चुप होगया अनन्तर श्रीमान् प्यारेलालजी सिंघई जो इस प्रान्तके मुख्य पञ्च थे और पञ्च ही नहीं सम्पन्न तथा बहुकुटुम्बी थे बोले—

'आप लोग हमको भ्रष्ट करनेके लिये आये हैं जिन कुटुम्बों को आप मिलाना चाहते हैं उनकी जातिका पता नहीं। इन लोगोंने जो गोलालारोंके गोत्रोंके नाम बताकर अपनेको गोलालारे वंशका सिद्ध किया है वह सब कल्पित चरित्र है। आप लोग त्यागी हैं कुछ लौकिक मर्यादा तो जानते नहीं, केवल शास्त्रको पढ़कर परोपकारकी कथा जानते हैं। यदि लौकिक बातों का परिचय आप लोगोंको होता तो हमें भ्रष्ट करनेकी चेष्टा न करते। तथा आपने जो कहा कि कसौटी की कसमें यदि इनोंने

हो जायें तो इनकी शुद्धि कर लो ठीक कहा—परन्तु यह तो आप जानते हैं कि कसौटी पर सोना कसा जाता है पीतल नहीं कसा जाता। इसप्रकार यदि ये गोलालारे होते तो शुद्ध किये जाते. इनके कल्पित चरित्रसे हम लोग इन्हें शुद्ध करनेकी चेष्टामें कदापि शामिल नहीं हो सकते।'

इसके अनन्तर सब पञ्चोंमें कानाफूंसी होने लगी तथा नई पञ्च उठने लगे। मैंने कहा—'महानुभावो! ऐसी उतावली करना उचित नहीं, निर्णय कीजिये, यदि ये गोलालारे न निकलें तो इनकी शुद्धि तो दूर रहो अदालतमें नालिश कीजिये। इन्होंने हम लोगोंको धोखा दिया है।'

इसके अनन्तर धाकलवाले तथा रीठीवाले सिंघई बोले—'ठीक है, मैं तो यह जानता हूँ कि जब ये हमारे यहां जाते हैं तब जैनमन्दिरके दर्शन करते हैं और निरन्तर हमसे यही कहते हैं कि हमारे पूर्वजोंने ऐसा कौनसा गुरुतर अपराध किया कि जिससे हम सैकड़ों नर-नारी धर्मसे वञ्चित रहते हैं। धाकलवालोंने भी इसीका समर्थन किया तथा रेंपुरावाले लश्करिया भी इसी पक्षमें रहे। इसके बाद मैंने उस ८० वर्षके वृद्धसे कहा कि बाबा आपकी आयु तो ८० वर्षकी है और यह घटना पचास वर्षकी ही है अतः आपको तो सब कुछ पता होगा। कृपाकर कहिये कि क्या बात है?

वृद्ध बोला—'मैं कहता हूं परन्तु आप लोग परस्परके वैमनस्य से उस तत्त्वका अनादर न कर देना। पञ्च वही है जो सत्य न्याय [illegible] करते [illegible] है उनसे यथार्थ निर्णय नहीं होता तथा पञ्च वही [illegible] सत्य [illegible] इनको छिपाने का [illegible] करेगा। [illegible] विशाल है, जो स्वयं ही [illegible] न होगा [illegible]

आप लोगोंकी जो इच्छा हो—जैसा आपके मस्तिष्कमें आवे वैसी पञ्चायत करना। मैं तो जो जानता हूँ वह आपके समक्ष निवेदन करता हूँ।'

'पचास वर्ष पहलेकी बात है—रघुनाथ मोदीके पिता ने एक बार जाति भोज्य किया था उसमें कई ग्रामके लोग एकत्र हुए थे। पंगतके बाद इनके पिताने पञ्च लोगोंसे यह भावना प्रकट की कि यहाँ यदि मन्दिर बन जावे तो अच्छा हो। सबने स्वीकार किया, दवात कलम कागज मंगाया गया चन्दा लिखना प्रारम्भ हुआ। सबसे अच्छी रकम रघुनाथ मोदीके पिता ने लिखायी। एक ग्रामीण मनुष्यने चन्दा नहीं लिखाया उसपर इनके पिता बोले—'खानेको तो शूर हैं पर चन्दा देनेमें आनाकानी।' इस पर पञ्च लोग कुपित होकर उठने लगे, जैसे तैसे अन्तमें यह पञ्चायत हुई कि चूंकि रघुनाथके पिताने एक गरीबकी तौहीनी की अतः दो सौ रुपया मन्दिरको और एक पक्का भोजन पञ्चों को देवें नहीं तो जातिमें इन्हें न बुलाया जावे। बहुत कहां तक कहें? यह अपनी अकड़में आ गये और न दण्ड दिया न पंगत दी। यह विचार करते रहे कि हम धनाढ्य हैं हमारा कोई क्या कर सकता है? अन्तमें फल यह हुआ कि चार वर्ष बीत गये उन्हें कोई भी बिरादरीमें नहीं बुलाता था और न कोई उनके यहां आता था। जब लड़के लड़की शादीके योग्य हुए तब चिन्तामें पड़ गये। जिससे कहें वही उत्तर देवे कि जब पहले अपने प्रान्तके साथ व्यवहार हो जावे तभी हम आपके साथ विवाह सम्बन्ध कर सकते हैं अन्यथा नहीं। यह वहांसे चलकर पनागर जो कि जबलपुरके पास है पहुंचे। वहां पर प्रतिष्ठा थी वहां भी इन्होंने पञ्चोंसे कहा। उन्होंने यही कहा कि चूंकि तुमने पञ्चोंकी तौहीनी की है अतः यह पञ्चायत आज्ञा देती है कि २००) के स्थानमें ५००) दण्ड और १ पंगतके स्थानमें २

पंगत पची हो...यही तुम्हारा दण्ड है।' इन्होंने स्वीकार किया कि हम जाकर शीघ्र ही पंचोंकी आज्ञाके अनुकूल दण्ड देकर जातिमें मिल जायेंगे। यहां तो यह आये पर घर जाकर धनके नशामें मस्त हो गये और पंगत तथा दण्ड कुछ भी नहीं दिया। अब यह चिन्ता हुई कि लड़के लड़कियोंका विवाह किस प्रकार किया जावे? तब यह उपाय किया कि जो गरीब जैनी थे उन्हें पूंजी देकर अपने अनुकूल बना लिया और उनके साथ विवाह कर चिन्तासे मुक्त हो गये। मन्दिर जानेका कोई प्रतिबन्ध था नहीं इससे इन्होंने उस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। इस तरह यह अपनी संख्या घटाते गये जो कि आज ५० घरके ही अंदाज रहे होंगे। यह तो इनके विवाहकी बात रही पर इनमें जो रघुनाथ-दास नारायणदास मोदी हैं यह भद्र प्रकृति हैं। इसको यह भावना हुई कि मैं तो अपराधी हूं नहीं अतः जातिबाह्य रहकर धर्म कार्योंसे वञ्चित रहना अच्छा नहीं इसीलिये यह कई मालका जमींदार होकर भी दौड़ धूप द्वारा जातिमें मिलनेकी चेष्टा कर रहा है। यह भी इसका भाव है कि मैं एक मन्दिर बनवाकर पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा कराऊँ तथा ऐसा शुभ अवसर मुझे कब प्राप्त हो कि मेरे घर पर बिरादरीके मनुष्योंका भोजन हो और पात्रादिकोंको आहार दान देकर निज जीवन सफल करूं...... यह इनकी कथा है। आशा है आप पञ्च लोग इसका गंभीर दृष्टिसे न्याय करेंगे। श्री सिं० प्यारेलालजीने जो कहा है वह ठीक नहीं है क्योंकि इनकी आयु ४० वर्षकी ही है और मैं जो कह रहा हूं उसे ५० वर्ष हो गये। मुझे रघुनाथसे कुछ द्रव्य तो लेना नहीं और न मुझे इनके यहां भोजन करना है अतः मिथ्या भाषण कर पातकी नहीं बनना चाहता।

इसके लिये यह बाबाजी कथामें सत्पन्नका परिचय हुआ परन्तु प्यारेलाल [illegible] उनसे मन नहीं हुए अन्तमें यह [illegible]

उठने लगे तो मैंने कहा कि यह ठीक नहीं, कुछ निर्णय किये बिना उठ जाना न्यायके विरुद्ध है।

यहाँपर एक गोलालारे बैठे थे, उन्होंने कहा कि मैं जब विहार करता हूँ उसमें प्रान्त भरके सब गोलालारे बुलाये जावें तथा परवार और गोलापूर्व भी बुलाये जावें। चिट्ठीमें यह भी लिखाया जावे कि इस उत्सवमें रघुनाथ मोदीको शुद्ध करनेका विचार होगा अतः सब भाईयोंको अवश्य आना चाहिये और इनके विषयमें जिसे जो भी ज्ञात हो वह सामग्री साथ लाना चाहिये यह बात सबको पसन्द आई परन्तु जिसके यहाँ जल विहार होना था वह बहुत गरीब था उसने केवल दयाके वेगमें उत्सवका स्वीकार कर ली थी अतः मैंने रघुनाथ मोदीसे कहा कि आप इसे तीन सौ रुपये दे देवें। उन्होंने ननु नच किये बिना तीन सौ रुपये दे दिये। इसके बाद मैंने कहा कि तुम भी दो पंगतोंका कच्चा सामान तैयार रखना, सम्भव है तुम्हारी कामना सफल हो जाय। यह कहकर हम लोग कटनी चले गये।

कटनीमें पण्डित बाबूलालजी प्रयत्नशील व्यक्ति थे उनके साथ परस्पर विचार किया कि चाहे कुछ भी हो परन्तु इन लोगों को जातिमें मिला लेनेका पूर्ण प्रयत्न करना है। यदि ये लोग कुछ दिन और न मिलाये गये तो जाति च्युत हो जावेंगे।

विचार तो किया पर जब कुछ उपाय न सूझा तो अन्तमें यह निर्णय किया कि इनकी जाति का पड़िया-गोत्रकी परम्परा जाननेवाला बुलाया जावे। बड़ाबासागरके पास मड़िया गांव है वहाँसे पड़िया बुलाया गया और उससे इनकी वंशावली पूछी गई उसने कण्ठस्थकी तरह इनकी वंशावली बता दी। एक आदि गोत्रका अन्तर पड़ा वह सुधार दिया गया।

चार दिन बाद चिट्ठी आ गई कि अमुक दिन बड़गांवमें जल विहार है दो पंगतें होंगी आप लोग गोट सहित पधारें इसमें रघुनाथ मोदीकी पञ्चायत भी होगी। हमने सागरसे प्यारेलाल मलैया, पं० मुन्नालालजी तथा पं० मूलचन्द्रजी सुपरिन्टेन्डेन्टको भी बुला लिया। कटनीसे पण्डित बाबूलालजी, श्री जुगलचन्द्र जी गोलालारे, श्रीमान् बाबा गोकुलचन्द्रजी, श्री अमरचन्द्र तथा अन्य त्यागीगण, रीठीसे लक्ष्मण सिंघई और आकलके कई भाई इस प्रकार हम लोग बड़गांव पहुंच गये। खेदके साथ लिखना पड़ता है कि हमें जो चिट्ठी दी गई थी वह एक दिन विलम्बसे दी गई थी अतः हम दूसरे दिन तब पहुँच सके जब कि जल विहार समाप्त हो चुका था विमान मण्डपमें जा रहा था और वहां पहुँचनेके बाद ही लोग अपने अपने घर जानेके उद्यममें लग जाते। केवल मण्डप और जिनेन्द्रदेव ही वहां रह जाते।

उस समय मेरे मनमें एक अनोखी सूझ उठी मैंने गानेवाले से कहा कि तू पेट दर्दका बहाना कर डेरा पर चला जा तेरा जो ठहरा होगा वह मैं दूंगा। वह चला गया अतः विमान पन्द्रह मिनटमें ही मंडपमें पहुंच गया। मैंने झट शास्त्र प्रवचनका प्रबन्ध कर पं० मूलचन्द्रजी को बैठा दिया और पंडितसे कह दिया कि आध घण्टामें ही पूर्ण कर देना तथा रघुनाथ मोदीसे कहा कि यदि आप जातिमें मिलना चाहते हैं तो कुटुम्ब सहित मण्डप के सामने खड़े हो जाओ और आप तथा नारायन दोनों ही पञ्चोंके समक्ष हाथ जोड़कर रहो कि या तो हमें जातिमें मिलाओ या एक दम पृथक् कर जाओ। हम बहुत दुखी हैं हमारी व्यथा पर आप एक घड़ीका समय देनेका कष्ट करें। रघुनाथ मोदीने हम तो बात स्वीकार कर ली और शास्त्र प्रवचनके बाद जब . . व लोग जानेको उद्यत हुए तब रघुनाथ मोदीने बड़ी विनयके

साथ प्रार्थना की जिससे सब लोग रुक गये और सबने यह प्रतिज्ञा की कि रघुनाथ मोदीका निर्णय करके ही आज मण्डप त्यागेंगे।

पञ्चायत प्रारम्भ हो गई, ग्रामके अन्य बिरादरीके लोग भी बुलाये गये। प्रथम ही श्रीमूलचन्द्रजी बिलौआने प्रस्ताव किया कि 'आज जीवनमरणका प्रश्न है अतः सब भाइयोंको परस्परका वैमनस्य भूल जाना चाहिये। अपराध सबसे होता है उसकी क्षमा ही करना पड़ती है, अपराधियोंकी कोई पृथक् नगरी नहीं, वैसे तो संसार ही अपराधियोंका घर है अपराधसे जो शून्य हो जाता है वह यहाँ रहता ही नहीं, मुक्ति नगरीको चला जाता है।'

इसके अनन्तर श्रीमान् मलैयाजी बोले कि 'बात तो ठीक है परन्तु निर्णय छानबीन कर ही होना चाहिये अतः मेरी नम्र प्रार्थना है कि जो महाशय इस विषयको जानते हों वे शुद्ध हृदयसे इस विषयको स्पष्ट करें।'

इसके बाद प्यारेलाल सिंघई बोले कि बहुत ठीक है परन्तु जिनका पचास वर्षसे गोलालारोंके साथ कोई सम्बन्ध नहीं उनके विषयमें पञ्चायत करना कहाँतक संगत है? सो आप ही जानें।' इनके भतीजे भी इन्हींके पक्षमें बोले। मैंने कहा—'आपका कहना न्यायसंगत है किन्तु कोई मनुष्य अस्सी वर्षका इस विषयको जानता हो और निष्पक्ष भावसे कहता हो तो निर्णय होनेमें क्या आपत्ति है?'

श्री सिंघईजी बोले—'वह अस्सी वर्षका वृद्ध गोलालारे जातिका होना चाहिये।' यह सुनकर उपस्थित महानुभावोंको बहुत क्षोभ हुआ। सब महाशय एक स्वरसे बोल उठे—'सिंघईजीका बोलना अन्यायपूर्ण है, कोई जातिका हो इस विषयमें जो निष्पक्ष भावसे कहेगा वह हम लोगोंको मान्य होगा

हम लोग न्याय करनेके लिये आये हैं, आज न्याय करके ही आसन छोड़ेंगे।' इतनेमें वह वृद्ध जो कि पहली पञ्चायतमें आया था बोलनेको उद्यमी हुआ। वह बोला—

'पञ्च लोगो! मैंने पहली ही सभामें कह दिया था कि रघुनाथ मोदीके पूर्वजोंने हठ की और पञ्चोंके फैसलेको नहीं माना उसीके फलस्वरूप आज उनकी सन्तानकी यह दुर्दशा हो रही है। यह सन्तान निर्दोष है तथा इनके पूर्वज भी निर्दोष थे। यदि आप लोग इन्हें न मिलावेंगे तो ये केवल जातिसे ही च्युत न होंगे वरन धर्म भी परिवर्तन कर लेंगे। संसार अपार है इसमें नाना प्रकृतिके मनुष्य रहते हैं बिना संघटनके संसारमें किसी भी व्यक्तिका निर्वाह नहीं होता अतः इन्हें आप लोग अपनावें। जब कि पंचोंने इनकी पंगत लेना स्वीकार की थी तब यह विवेचना नहीं वह तो अपने आप सिद्ध हो जाता है। बस, अधिक बोलना अच्छा नहीं समझता।'

पञ्चोंने वृद्ध बाबाकी कथाका विश्वास किया केवल प्यारेलाल सिंघईको वृद्धका कहना रुचिकर नहीं हुआ, उठकर घर चले गये। मैंने बहुत रोका पर एक न सुनी। मनमें खुशी हुई कि अच्छा हुआ विघ्न तो टला परन्तु फिर विचार आया कि रघुनाथ मोदीका निर्वाह तो इन्हींसे होगा अन्य लोगोंके मिला लेनेसे क्या होता है? पर किया क्या जावे?....इसी विचारमें कुछ निद्रा आ गई। इतनेमें ही एक महाशय बोले—'क्या यह समय सोनेका है?' निद्रा भंग हो गई, पञ्च लोग परस्पर विचारमें निमग्न थे ही। अन्तमें यह तय किया कि रघुनाथ मोदीको मिला लिया जावे। इसीके बीच ब बापूलालजी कटनी बोल उठे कि पहले पंचायत [illegible] जाय और उसके द्वारा इनके गोत्रोंकी [illegible] [illegible] [illegible] निकले तो मिलानेमें कौनसा [illegible] है

इनकी बात सकल पञ्चोंने स्वीकृत की, एक महाशय बोले कि सिंघई प्यारेलालको बुलाया जावे। मैं बड़ा चिन्तित हुआ कि हे भगवन्! क्या होनेवाला है? अन्तमें जो व्यक्ति बुलानेके लिये भेजा गया मेरे साथ उसका परिचय था। मैं पेशाबके बहाने बाहर गया और उससे कह आया कि 'तुम सिंघईके घर न जाना, बीचसे ही लौट आना और पञ्चोंको यह उत्तर देना कि सिंघई प्यारेलालजीने कहा है कि हम ऐसे अन्याय करनेवाले पञ्चोंमें नहीं आना चाहते।' इतना कहकर वह तो सिंघईजीके घरकी ओर गया और मैं पञ्च लोगोंमें शामिल हो गया।

इतनेमें श्री प्यारेलालजी मलैया बोले कि—'महानुभाव! आज हमारी जातिकी संख्या चौदह लाखमात्र रह गई यदि इसी तरहकी पद्धति आप लोगोंकी रही तो क्या होगा? सो कुछ समझमें नहीं आता अतः इसमें विलम्ब करनेकी कोई बात नहीं। रघुनाथ मोदीको जातिमें मिलाया जावे और दण्डके एवजमें इनसे २ पंगतें ली जावें तथा जातिके बालकोंके पढ़नेके लिये एक विद्यालय स्थापित कराया जावे।'

इस पर बहुतसे महानुभावोंने सम्मति दी और पण्डित मूलचन्द्रजीको भी अत्यन्त हर्ष हुआ। वह बोले—'केवल विद्यालयसे कुछ न होगा, साथमें एक छात्रावास भी होना आवश्यक है। यह प्रान्त विद्यासे पिछड़ा है यद्यपि कटनीमें विद्यालय है फिर भी जो अत्यन्त गरीब हैं उनका बाहर जाना अतिकठिन है। उनके माँ बाप उन्हें कटनी तक भेजनेमें भी असमर्थ हैं।'

मूलचन्द्रजीकी बात सबने स्वीकार की। अनन्तर रघुनाथ मोदीसे पूछा गया कि क्या आपको स्वीकार है? उन्होंने कहा—'मैं स्वीकार आदिकी बात तो नहीं जानता दस हजार रुपया दे

उन्होंने कहा—'पञ्च लोग जो फैसला देवेंगे वह हमें शिरसा मान्य है। यदि पञ्च महाशय उनके यहां कल ही भोजन करनेके लिये प्रस्तुत हों तो मैं भी आप लोगोंमें सम्मिलित रहूँगा परन्तु अब महीनों टालना उचित नहीं।'

हम मनमें बहुत हर्षित हुए। अब पञ्चोंने मिलकर यह फैसला कर दिया कि दो सौ पचास परवार सभाको, दो सौ पचास गोलापूर्व सभाको, दो सौ पचास गोलालारे सभाको दो सौ पचास नैनागिर क्षेत्रको, दस हजार विद्यालयको तथा दो पंगत यदि रघुनाथ मोदी सहर्ष स्वीकार करें तो कल ही पंगत लेकर जातिमें मिला लिया जावे और दण्डका रुपया नक़द लिया जावे एवं प्रातःकाल ही पंगत हो जावे फिर कभी पञ्च जुड़ने की आवश्यकता नहीं।

इस फैसले को सुनकर रघुनाथ मोदी और उनके भाई नारायणदासजी मोदी पुलकितवदन हो गये। उन्होंने उसी समय ग्यारह हजार लाकर पञ्चोंके समक्ष रख दिये। पञ्चोंने मिलकर रघुनाथ मोदीको मय कुटुम्बके गले लगाया और आज्ञा दी कि प्रातःकाल ही सहभोज हो। इस पञ्चायतमें प्रातःकाल हो गया। पञ्चायतसे उठकर हम बाबा गोकुलचन्द्रजी तथा अन्य त्यागीवर्ग सामायिक करनेके लिये चले गये और अन्य पञ्चलोग शौचादि क्रियाके लिये बाहर गये।

दो घण्टाके बाद मन्दिरमें श्रीमान् बाबाजीका प्रभावशाली प्रवचन हुआ। अनन्तर सब लोग अपने अपने स्थानों पर चले गये। जहां हम ठहरे थे, वहीं पर रघुनाथकी बहिनने भोजन बनाया। दस बजेके बाद भोजन हो गया पंगतका बुलौआ हुआ पञ्च लोग आ गये सानन्द पक्का भोजन परोसा गया पर

भोजन करनेमें एक दूसरेका मुख ताकने लगे। यह देख बाबाजीने कहा कि मुख ताकनेकी क्या बात है? पहले तो हम लोग इनके यहां स्त्री आदिके द्वारा बनाया भोजन करके यहां आये हैं इस बातको पं० मुन्नालालजी अच्छी तरह जानते हैं। पं० मुन्नालालजीने भी कहा कि मैं भी उस भोजनमें शामिल था अतः आप निःसंकोच भोजन कीजिये। सब लोग फिर भी हिचकिचाते रहे इतनेमें श्रीयुत भैया प्यारेलालजी सागरने ग्रास उठाया और जिनेन्द्रदेवकी जय कहते हुए भोजन शुरू कर दिया। फिर क्या था आनन्दसे सब भोजन करने लगे बीचमें रघुनाथदासको भी शामिल कर लिया। दूसरे दिन दाल भात कढ़ी और शाग पूड़ीका भोजन हुआ। इस तरह पञ्च लोगोंने ५० वर्षसे च्युत एक कुटुम्बका उद्धार कर दिया। एकका ही नहीं उनके आश्रित अनेक कुटुम्बोंका उद्धार हो गया।

यह सब काण्ड समाप्त होनेके बाद मैं श्रीयुत बाबाजीके साथ कुण्डलपुर चला गया। बाबाजीकी मेरे ऊपर निरन्तर अनुकम्पा रहती थी। उनका आदेश था कि—

जैनधर्म कल्याण करनेमें एक ही है अतः जहां तक तुमसे न सके निरन्तर भावसे इसका पालन करना और यथाशक्ति इसका चार करना। हमारी अवस्था तो वृद्ध हो गई, हमारे बाद यह आश्रम लना कठिन है क्योंकि इसमें जितने त्यागी हैं उनमें संचालनकी ि नहीं तुम इस योग्य कुछ हो परन्तु तुम इतने स्थिर नहीं कि एक न पर रह सको। कहीं रहो परन्तु आत्मकल्याणसे वञ्चित न रहना। ारे साथ जो [illegible] है वह एक रत्न है निरपेक्ष निर्लोभ [illegible] है इसका साथ न छोड़ना तथा श्री चिरौंजाबाईने तुम्हें [illegible] तक सेवा करना [illegible] हो सकता [illegible] हैं कि तुम [illegible] होओ,

५८

धर्मका ठेकेदार कोई नहीं

परुआसागरसे तार आया कि आप बाईजीको लेकर शीघ्र ही आवें वहां सर्राफ मूलचन्द्रजीके पुत्ररत्न हुआ है। तार ही नहीं, लेनेके लिये एक मुनीम भी आ पहुँचा। हम और बाईजी मुनीमके साथ बरुआसागर पहुँच गये।

मूलचन्द्रजी सर्राफके कोई उत्तराधिकारी नहीं था अतः सदा चिन्तित रहते थे, पर अब साठ वर्षकी अवस्थामें पुत्ररत्नके उत्पन्न होनेसे उनकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा।

बाईजीने कहा—'भैया ! कुछ दान करो, उसी समय पचास मन गेहूं गरीबोंको बांट दिया गया तथा मन्दिरमें श्रीजीका विधान कराया। ग्यारह दिनके बाद नाम संस्कार किया गया। पूजन विधान सम्पन्न हो जानेके बाद सौ नाम कागजके टुकड़ोंमें लिखकर एक थालीमें रख दिये। अनन्तर एक पांच वर्षकी कन्यासे कहा कि इनमेंसे एक कागजकी पुड़िया निकालो। वह निकाले और उसीमें डाल देवे। चतुर्थ बार उससे कहा कि पुड़िया थालीके बाहर डाल दो। उसने एक पुड़िया बाहर डाल दी जब उसे खोला तो उसमें श्रेयान्सकुमार नाम निकला। अब क्या था ? सब लोग कहने लगे कि 'देखो वर्णीजीको पहले से ही .. न था अन्यथा आपने तो नाम पहले जो कहा था कि सर्राफ

मूलचन्द्रजीके बालक होगा और उसका नाम श्रेयान्सकुमार होगा. सच कैसे निकलता ? इत्यादि शब्दों द्वारा बहुत प्रशंसा करने लगे। पर मैंने कहा—'भाई लोगो ! मैं तो कुछ नहीं जानता था, यह तो घुणाक्षरन्यायसे सत्य निकल आया। आप लोगोंकी जो इच्छा हो सो कहें ?'

यहां एक बात विलक्षण हुई जो इस प्रकार है हम लोग स्टेशन पर मूलचन्द्रजी के मकानमें रहते थे पासमें कहार लोगों का मोहल्ला था। एक दिन रात्रिको ओलोंकी वर्षा हुई। इतनी विकट कि मकानोंके खप्पर फूट गये। हम लोग रजाई आदिको ओढ़कर किसी तरह ओलोंके कष्टसे बचे। पड़ोसमें जो कहार थे वे सब राम राम कहकर अपना प्रार्थना कर रहे थे। वे कह रहे थे कि—

'हे भगवन् ! इस कष्टसे रक्षा कीजिये, आपत्ति कालमें आपके सिवाय ऐसी कोई शक्ति नहीं जो हमें कष्टसे बचा सके।' इनमें एक दस वर्षकी लड़की भी थी, वह अपने माता पितासे कहती है कि 'तुम लोग व्यर्थ ही राम राम रट रहे हो। यदि कोई राम होता तो इस आपत्ति कालमें हमारी रक्षा न करता। हमने उनका कौनसा अपराध किया है जो इतनी निर्दयतासे ओले बरसा रहे है। निर्दयताका भी कुछ ठिकाना है ? देखो, हमारे घरके खपरा चूर चूर हो गये हैं शिर पर खटाखट ओलों-की वर्षा पड़ रही है, वस्त्र तक हमारे घरमें पर्याप्त नहीं। कहीं तक कहा जावे ? न माँ के पास तो धोतियां हैं और न पिताजी के पास। आप लोग एक ही धोतीसे अपना निर्वाह करते हैं जब दिन भर मेहनत करते हैं तब कहीं जाकर शामको अन्न मिलता है वह भी पेट भर नहीं मिलता। पिताजी ! आपने राम राम जपते अपना जन्म तो बिता दिया पर रामने एक भी दिन सकट

में सहायता न दी, यदि कोई राम होते तो क्या सहायता न करते। पड़ोसमें देखो धनिकों का मकान है उनके हजारों मन गल्ला है अनेक प्रकारके वस्त्रादि हैं नाना प्रकारके भूषण हैं, दूध आदिकी कमी नहीं है, पास ही में उनका बाग है जिसमें आम, अमरूद, केला आदिके पुष्कल वृक्ष हैं जिनमें उन्हें ऋतु ऋतुके फल मिलते रहते हैं, चार मास तक ईखका रस मिलता है जिससे खीर आदिकी सुलभता रहती है। यहां तो हमारे घरमें अन्नका दाना नहीं, दूधकी बात छोड़ो छाछ भी मांगने नहीं मिलती, यदि मिले भी तो लोग उसके एवजमें पास मांग लेते हैं। इस विपत्तिमय जीवन की कहानी कहां तक कहूं? अतः पिताजी! न कोई राम है और न रहीम है यदि कोई राम-रहीम होता तो उसके दया होती और वह ऐसे अवसरमें हमारी रक्षा करता। यह कहांका न्याय है कि पड़ोसवालेको लाखोंकी सम्पत्ति और हम लोगोंको उदर भर भोजन के भी लाले। यद्यपि मैं बालिका हूं पढ़ी लिखी नहीं कि किसी आधारसे बात कर सकूं परन्तु अपनी इस विपत्तिसे इतना अवश्य जानती हूं कि जो नीम बोवेगा उसके नीमका ही पेड़ होगा और जब वह फलेगा तब उसमें निंबोरी ही होगी, जो आमका बीज बोवेगा उसके आम ही का फल लगेगा। जैसा बीज पृथ्वी माताने डाला जावेगा वैसा ही माता फल देवेगी। पिताजी! आपने जन्मान्तर में कोई अच्छा कार्य नहीं किया जिससे कि तुम्हें सुखकी सामग्री मिलती और न मेरी माताने कोई सुकृत किया अन्यथा ऐसे दरिद्रके घर इनका विवाह नहीं होता। यह देखनेमें सुन्दर हैं इसलिये कमसे कम अच्छे घरानेकी बहू बेटियां इन्हें घृणाकी दृष्टि से नहीं देखती यह इनके कुछ सुकृतका ही फल है। मैं भी अभागिनी हूं जिसने कि आपके यहां जन्म ली। न तो मुझे पेट भर खाना मिलता है और न तन ढकनेको वस्त्र ही। जब मैं भी

के साथ अच्छे घरोंमें जाती हूँ तब लोग दयाकर रोटीका टुकड़ा दे देते हैं बहुत दया हुई तो एक आधा फटा-पुराना-बेकाम-वस्त्र दे देते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकला कि तुमने उस जन्ममें बहुत पाप किये अतः अब ओलोंकी वर्षासे मत डरो और न राम राम चिल्लाओ। राम हो या न हो मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं परन्तु हमारी रक्षा हमारे भाग्यके ही द्वारा होगी। न कोई रक्षक है और न कोई भक्षक है। इस समयमें आपसे कुछ कहना चाहती हूँ वह यह कि—

यदि तुम इन सब आपत्तियोंसे बचना चाहते हो तो एक काम करो, देखो तुम प्रति दिन सैकड़ों मछलियोंको मारकर अपनी आजीविका करते हो। जैसी हमारी जान है वैसी ही अन्यकी भी है। यदि तुम्हें कोई सुई चुभा देता है तो कितना दुःख होता है। जब तुम मछलीकी जान लेते हो तब उसे जो दुःख होता है उसे वही जानती होगी। मछली ही नहीं जो भी जीव आपको मिलता है उसे आप निःशङ्क मार डालते हैं अभी परसोंकी ही बात है आपने एक सर्पको लाठीसे मार डाला। पड़ोसमें बाईजीने बहुत मना किया पर तुमने यही उत्तर दिया कि काल है इसे मारना ही उत्कृष्ट है। अतः मैं यही भिक्षा मांगती हूँ कि चाहे भिक्षा मांगकर पेट भर लो परन्तु मछली मारकर पेट मत भरो। संसारमें करोड़ों मनुष्य हैं क्या सब हिंसा करके ही अपना पालन पोषण करते हैं ?

लड़कीकी ज्ञानभरी बातें सुनकर पिता एकदम चुप रह गया और कुछ देर बाद उससे पूछता है कि बेटी! तुझे इतना ज्ञान कहाँसे आया ? वह बोली कि मैं पढ़ी लिखी तो हूँ नहीं परन्तु बाईजीके पास जो पण्डितजी हैं वे प्रति दिन शास्त्र बांचते हैं एक दिन बांचते समय उन्होंने बहुतसी बातें कहीं जो मेरी समझमें

नहीं आई पर एक बात में अच्छी तरह समझ गई वह यह कि इस अनादि निधन संसारका कोई न तो कर्ता है न धर्ता है और न विनाश कर्ता है। अपने अपने पुण्य पापके आधीन सब प्राणी हैं। यह बात आज मुझे और भी अधिक जँच गई कि यदि कोई बचानेवाला होता तो इस आपत्तिसे न बचाता।

इसके सिवाय एक दिन बाईजीने भी कहा था कि परको सताना हिंसा है और हिंसासे पाप होता है। फिर आप तो हजारों मछलियोंकी हिंसा करते हैं अतः सबसे बड़े पापी हुए। कसाईके तो गिनती रहती है पर तुम्हारे वह भी नहीं।

पिताने पुत्रीकी बातोंका बहुत आदर किया और कहा कि 'बेटी! हम तुमसे बहुत प्रसन्न हैं और जो यह मछलियोंके पकड़नेका जाल है उसे अभी तुम्हारे ही सामने ध्वस्त करता हूँ।'

इतना कहकर उसने गुरसीमें आग जलाई और उस पर वह जाल रखने लगा। इतनेमें उसकी स्त्री बोली कि 'व्यर्थ ही क्यों जलाते हो, इसको बेचनेसे दो रुपये आजावेंगे और उनमें एक धोती जोड़ा लिया जा सकेगा।' पुरुष बोला कि 'यह हिंसाका आयतन है जहां जावेगा वहीं हिंसामें सहकारी होगा अतः नंगा रहना अच्छा परन्तु इस जालको बेचना अच्छा नहीं।' इस तरह उसने बातचीतके बाद उस जालको जला दिया और स्त्री पुरुषने प्रतिज्ञा की कि अब आजन्म हिंसा न करेंगे।

यह कथा हम और बाईजी सुन रहे थे बहुत ही प्रसन्नता हुई और मनमें विचार आया कि देखो समय पाकर दुष्टसे दुष्ट भी [illegible] आजाते हैं। आखिर [illegible] प्रकार अपने आप अहिंसक हो [illegible] पर इसने किस प्रकार समझा [illegible] न समझ सके।

इसके अनन्तर ओला पड़ना बन्द हुआ। प्रातःकाल नित्य क्रियासे निवृत्त होकर जब हम मन्दिरजी पहुँचे तब ८ बजे वे दोनों जीव आये और उत्साहसे कहने लगे कि हम आजसे हिंसा न करेंगे। मैंने प्रश्न किया—क्यों? उत्तरमें उनने रात्रिकी राम कहानी आनुपूर्वी सुना दी। जिसे सुनकर चित्तमें अत्यन्त हर्ष हुआ और श्री समन्तभद्र स्वामीका यह श्लोक स्मरण द्वारा सामने आगया कि—

'सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातङ्गदेहजम् ।
देवा देवं विदुर्भस्मगूढाङ्गारान्तरौजसम् ॥'

हम लोगोंकी यह महती अज्ञानता है कि किसीको सर्वथा तुच्छ नीच या अधम मान बैठते हैं। न जाने कब किसके काललब्धि आजावे? जातिके कहार महाहिंसक, कौन उन्हें उपदेश देने गया कि आप लोग हिंसा छोड़ दो? जिस लड़कीके उपदेशसे माता पिता एकदम सरल परिणामी होगये उस लड़कीने कौनसी पाठशालामें शिक्षा पाई थी? दस वर्षकी अबोध बालिकामें इतनी विज्ञता कहांसे आगई? इतनी छोटी उमरमें तो कपड़ा पहिरना ही नहीं आता परन्तु जन्मान्तरका संस्कार था जो समय पाकर उदयमें आगया अतः हमें उचित है कि अपने संस्कारोंको अति निर्मल बनानेका सतत प्रयत्न करें। इस अभिमानको त्याग देवें कि हम तो उत्तम जाति हैं सहज ही कल्याणके पात्र हो जावेंगे। यह कोई नियम नहीं कि उत्तम कुलमें जन्ममात्रसे ही मनुष्य उत्तम गतिका पात्र हो और जघन्य कुलमें जन्म लेनेसे अधम गतिका पात्र हो। यह सब तो परिणामोंकी निर्मलता और कलुषता पर निर्भर है। इसप्रकार हम, बाईजी और मूलचन्द्र जी परस्पर कथा करने लगे इतनेमें वह लड़की बोली 'बाईजी' इन दोनोंको क्या आता है ?"

मैंने कहा—'बेटी! तुमको धन्यवाद देता हूं, आज तूने यह उत्कृष्ट कार्य किया जो महापुरुषों द्वारा साध्य होता है। तुम्हारे माता पिताने जो हिंसाका त्याग किया है प्रशंसनीय है, तुमसे सर्वोस, बहुत प्रसन्न हैं और तुम लोगोंको जिसकी आवश्यकता पड़े मुनिसंघसे ले सकते हो।'

तब लड़कीका पिता बोला—'मैंने हिंसाका त्याग किया है उसका यह तात्पर्य नहीं कि आप लोगोंसे कुछ याचना करनेके लिये आया हूं। मैं तो केवल आप लोगोंको अहिंसक जानकर आपके सामने उस पापको छोड़नेके लिये आया हूं। आपसे क्या मांगू? हमारा भाग्य ही ऐसा है कि मजदूरी करना और जो मिले सन्तोषसे खाना। आजतक मछलियां मारकर उदर भरते थे अब मजदूरी करके उदर पोषण करेंगे। अभी तो हमने केवल हिंसा करना ही छोड़ा था पर अब यह भी नियम करते हैं कि आजसे मांस भी नहीं खावेंगे तथा हमारे यहां जो देवीका बलिदान होता था वह भी नहीं करेंगे। कोई कोई वैष्णव लोग बकराके स्थानमें भूरा कुम्हड़ा चढ़ाते हैं हम यह भी नहीं चढ़ावेंगे केवल नारियल चढ़ावेंगे। बस, अब हम लोग जाते हैं क्योंकि खेत गोड़ना है.....'

इतना कहकर वे तीनों चले गये और हम लोग भी उन्हीकी चर्चा करते हुए अपने स्थान पर चले आये इतनेमें बाईजी बोलीं—'बेटा! तुम भूल गये ऐसे भद्र जीवोंको मदिरा और मधु भी छुड़ा देना था।'

मैंने कहा—'अभी क्या बिगड़ा है? उन्हें बुलाता हूं, पास ही तो उनका घर है।'

जब उन्हें पक[illegible] [illegible] आगये, मैंने उनसे कहा—'भाई' [illegible] भूल [illegible] कि आपने मांस खाना तो छोड़

दिया पर मेंपर और मदिरा नहीं छोड़ी अतः इन्हें भी छोड़ दीजिये।' लड़की बोली—'हां पिताजी! यही मेंपर न! जो दवाईमें कभी कभी काम आती है यह तो बड़ी बुरी चीज है,

[illegible]

लगता है। बाप बोला—'बेटी! ठीक है, जब मांस ही जिससे कि पेट भरता था छोड़ दिया तब अब न मदिरा पीवेंगे और न मधु ही खावेंगे। हम जो प्रतिज्ञा करते हैं उसका निर्वाह भी करेंगे।'

हम वर्णीजी और बाईजीकी बात तो नहीं कहते क्योंकि यह साधु लोग हैं परन्तु बड़े बड़े जैनी व ब्राह्मण लोग अस्पतालकी दवा खाते हैं जहां भंगी और मुसलमानोंके द्वारा दवा दी जाती है। उस दवामें मांस मदिरा और मेंपरका संयोग अवश्य रहता है। बड़े आदमियोंकी बात करो तो यह लोग न जाने हम लोगोंकी क्या दशा करेंगे? अतः इनकी बात न करना ही अच्छा है। अपनेको क्या करना है? 'जो करेगा सो भोगेगा।' परन्तु बात तो यह है कि जो बड़े पुरुष आचरण करते हैं वही नीच श्रेणीके करने लग जाते हैं। जो भी हो हमको क्या करना है? यह फिर कहने लगा कि वर्णीजी! कुछ चिन्ता न करना, हमने जो व्रत लिया है मरण पर्यन्त कष्ट सह लेने पर भी उसका भंग न करेंगे। अच्छा अब जाते हैं......यह कहकर वे चले गये और हम लोग आनन्द सागरमें निमग्न होगये। मुझे ऐसा लगा कि धर्मका कोई ठेकदार नहीं है।

— — —

५८

रसखीर

भोजन करके बैठे ही थे कि श्री वर्णी मोतीलालजी आ गये। उनके साथ भी वही कहारवाली बातचीत होती रही। दूसरे दिन विचार हुआ कि आज रसखीर खाना चाहिये। श्री सर्राफ मूलचन्द्रजीसे रस मंगवाया हम और वर्णी मोतीलालजी उसके सिद्ध करनेमें लग गये।

बाईजीने कहा—'भैया ११ बज गये अब भोजन कर लो।' हमने एक न सुनी और खीरके बनानेमें ११॥ बजा दिये। सामायिकका समय हो गया अतः निश्चय किया कि पहले सामायिक किया जाय और बादमें निश्चिन्तताके साथ भोजन।

सामायिकके बाद १२॥ बजे हम दोनों भोजनके लिये बैठे। बाईजीने कहा—'अच्छी खीर बनायी।' मैंने उत्तर दिया—'उत्तम पदार्थका मिलना कठिनतासे होता है।' बाईजी ठीक कहकर रोटी परोसने लगीं। मैंने कहा—'पहले खीर परोसिये।' उन्होंने कहा—'भोजनके पश्चात् खाना।' हमने कहा—'जब पेट भर जावेगा तब क्या खावेंगे?' उन्होंने कहा—'अभी खीर गरम है।' हमने कहा—[illegible]

[illegible]

एक ग्रास मोतीलालजीने भी हाथमें लिया। एक एक ग्रास मुँहमें जानेके बाद ज्यों ही दूसरा ग्रास उठाने लगे त्यों ही दो मक्खियाँ परस्पर लड़ती हुई आईं और एक हमारी तथा दूसरी मोतीलालजीकी थालीमें गिर गईं। खीर गरम थी अतः गिरते ही दोनोंका प्राणान्त हो गया। अन्तराय आ जानेसे हम दोनों उस दिन भोजनसे वञ्चित रहे। बाईजी बोलीं—'भैया! लोलुपता अच्छी नहीं।' मैं सुनकर चुप रह गया।

इस प्रकरणके लिखनेका अर्थ यह है कि जो वस्तु भाग्यमें नहीं होती वह थालीमें आने पर भी चली जाती है और जो भाग्यमें होती है वह द्वीपान्तरसे भी आ जाती है। अतः मनुष्यको उचित है कि सुख दुखमें समता भाव धारण करे।

इतनेमें ही श्री बिहारी मोदी और श्री रज्जीलाल सिंघई बोले कि आप चिन्ता मत करें। श्री स्वर्गीय डाकनलालजी का मकान जो कि घटियाके मन्दिरसे लगा हुआ है उसमें पाठशाला ले चलो और अभी चलो उसे देख लो। हम सब मकान देखनेके लिये गये और देखकर निश्चय किया कि इसे झाड़ बुहारकर स्वच्छ किया जावे अनन्तर पाठशाला इसी मे लाई जावे। इतने अनादरके साथ चैत्यालयके मकानमें रहना उचित नहीं।

चार दिनमें मकान दुरुस्त हो गया और पाठशाला उसमें आ भी गई परन्तु उसमें कई कष्ट थे। यदि एक हजार रुपया मरम्मतमें लगा दिया जावे तो सब कष्ट दूर हो जावें पर रुपये कहाँसे आवें ? पाठशालामें विशेष धन न था मांग चूंगकर काम चलता था। पर दैव बलवान् था, श्री बट्टे दाऊ जो कि रैली ब्रदर्सके दलाल थे मुझे चिन्तित देखकर बोले कि इतने चिन्तित क्यों हो ? मैंने कहा कि जो पाठशाला चमेली चौकमें थी वह श्री डाकनलाल सिंघई के मकानमें आ गई परन्तु वहां अनेक कष्ट हैं। मकान स्वच्छ नहीं, यह अभी एक हजार रुपया मरम्मतके लिये चाहता है। पाठशालाके पास द्रव्य नहीं कैसे काम चले ?

आप उसी वक्त हमारे साथ पाठशालामें आये और जहाँ श्री डाकनलाल सिंघईके बैठनेका स्थान था एक कुदारी मंगाकर वहां आपने खोदा तो तीन सौ रुपये निकल गये। दूसरे दिनसे ही मरम्मतका काम चालू कर दिया। अब एक कच्ची अटारी थी हमने दाऊसे कहा कि इसे गिरवा कर छत बनवा दी जावे। दाऊने कहा ठीक है—वहीं पर उन्होंने एक भीत खोदी जिससे सात सौ रुपये निकल गये। इस तरह एक हजार रुपयेमें अनायास ही पाठशालाके योग्य मकान बन गया और आनन्दपूर्वक बालक पढ़ने लगे।

६२

मोराजीके विशाल प्राङ्गणमें—

श्री ढाकनलाल सिंघईके मकानमें भी विद्यालयके उपयुक्त स्थान नहीं था किसी तरह गुजर हो होती थी। गृहस्थीके रहने लायक मकान और विद्यालयके उपयुक्त मकानमें बड़ा अन्तर होता है।

श्री बिहारीलालजी मोदी और सिंघई रज्जीलालजी मन्दिर के मुहतमिम थे। उन्होंने एक दिन मुझसे कहा—कि यदि विद्यालयको पुष्कल जमीन चाहते हो तो श्री मोराजीकी जगह, जिसमें कि एक अपूर्व दरवाजा है जो आज पचीस हजारमें न बनेगा तथा मधुर जलसे भरे हुए दो कूप हैं पाठशालाके संचालकोंको दे सकते हैं किन्तु पाठशालावाले यह प्रतिज्ञा पत्र लिख देवें कि जबतक पाठशाला चले तब तक हम उस पर काबिज रहें और यदि दैव प्रकोपसे पाठशाला न चले तो मकानवालोंको सौंप देवेंगे।

इसपर पाठशालाके कुछ अधिकारियोंने पहले तो सम्मति न दी परन्तु समझाने पर सब सम्मत होगये। अब चिन्ता इस बातकी हुई कि मकान कैसे बने? पाठशालाके अधिकारियोंने कमेटी कर यह निश्चय किया कि फिलहाल पांच हजार रुपया लगा कर एक मंजला कच्चा मकान बना लिया जावे और इसका भार

श्रीमान् फरोड़ीमल्लजीको सौंपा जावे। श्रीमान् फरोड़ीमल्लजी ने इस भारको सहर्ष स्वीकार किया। आप पाठशालाके मन्त्री भी थे, तीन मासमें आपने मकान तय्यार कर दिया और पाठशाला श्री दाऊनलालजीके मकानसे मोराजी भवनमें आगई। यहां आनेपर सब व्यवस्था ठीक हो गई। यह बात आश्विन सुदी ९ सं० १९८० की है।

कई कारणोंसे श्री फरोड़ीमल्लजीने पाठशालाके मंत्री पदसे स्तीफा दे दिया। आपके स्थानमें श्री पूर्णचन्द्रजी बजाज मन्त्री हुए। आप बहुत ही योग्य और विशालहृदयके मनुष्य हैं, बड़े गम्भीर हैं, गुस्सा तो आप जानते ही नहीं हैं। आपकी दुकानमें श्री पन्नालालजी बड़कुर संजावी थे जिनकी बुद्धि बहुत ही विशाल और सूक्ष्म थी। आपके विचार कभी संकुचित नहीं रहे आप सदा ही पाठशालाकी उन्नतिमें परामर्श देते रहते थे और समय समय पर स्वयं भी सहायता देते थे।

पाठशालाका कोष बहुत ही कम है और व्यय ५००) मासिक है...यह देखकर अधिकारी वर्ग सदा सचिन्त रहते थे।

एक बार सिंघईजीके मन्दिरमें शास्त्र प्रवचन हुआ उस समय मैंने पाठशालाकी व्यवस्था समाजके सामने रख दी फल स्वरूप श्री मोदी धर्मचन्द्रजीने कहा कि यदि वर्णीजी देहातमें जैनधर्मका प्रचार करें तो मैं सौ रुपया मासिक पाठशालाको देने लगूं। मैंने भ्रमण स्वीकार किया और सौ रुपया मासिक मिलने लगा। इसी प्रकार श्रीयुत कमरयाजीने कहा कि यदि पण्डित दयाचन्द्रजी हमको दोपहर बाद एक घण्टा स्वाध्यायके लिये देवें तो सौ रुपया मासिक हम देवेंगे,...इस प्रकार किसी तरह पाठशालाकी आर्थिक व्यवस्था सुधरी परन्तु स्थायी आमदनीके बिना मेरी चिन्ता कम नहीं हुई।

कुछ दिनके बाद श्री मोदीजीने सहायता देना बन्द कर दिया पर कमरयाजी बराबर देते रहे। पाठशालामें क्वीन्स कालेजके अनुसार पठनक्रम था इससे बड़े बड़े आक्षेप आने लगे परन्तु भावी अच्छा था इससे सब विघ्न दूर होते गये। पढ़ाईके लिये अध्यापक उच्च श्रेणीके थे अतः उस ओरसे मैं निश्चिन्त रहता था परन्तु धनकी चिन्ता निरन्तर रहा करती थी। यद्यपि पाठशालाके सभापति श्री सिंघई कुन्दनलालजी और उपसभापति श्री चौधरी कन्हैयालाल हुकमचन्द्रजी मानिक चौक वाले हमको निरन्तर साहस और उपदेश दिया करते थे कि आप चिन्ता मत करो, अनायास ही कोष हो जावेगा तथापि मेरी चिन्ता कम न होती थी। सिंघईजी तथा चौ० हुकमचन्द्रजी

[illegible]

खर्च होता जाता था अतः मूलधनकी क्षमता निरन्तर रहा करती थी। कुछ भी रहो परन्तु जब मैं मोराजीके विशाल प्राङ्गणमें बहुतसे छात्रोंको आनन्दसे एक साथ खेलते कूदते और विद्याध्ययन करते देखता था तब मेरा हृदय हर्षातिरेकसे भर जाता था।

कलशोत्सवमें श्री पं० अम्बादासजी शास्त्रीका भाषण

संवत् १९७२ की बात है, सागरमें श्री टीकाराम प्यारेलालजी मलैयाके यहां कलशोत्सवका आयोजन हुआ। उसमें पण्डितोंके बुलानेका भार मेरे ऊपर छोड़ा गया। मैंने भी सब पण्डितोंके बुलानेकी व्यवस्था की जिसके फलस्वरूप श्रीमान् पण्डित माणिकचन्द्रजी न्यायाचार्य, श्रीमान् पं० वंशीधरजी सिद्धान्तशास्त्री, श्रीमान् व्याख्यानवाचस्पति पं० देवकीनन्दनजी, श्रीमान् वाग्मीभूषण पं० तुलसीरामजी काव्यतीर्थ तथा श्रीमान् निखिल विद्यावारिधि पण्डित अम्बादासजी शास्त्री जो कि हिन्दू विश्वविद्यालय बनारसमें संस्कृतके प्रिन्सपल थे—इस उत्सवमें सम्मिलित हुए। आपका शानदार स्वागत हुआ उसी समय आयोजित आमसभामें जैन धर्मके अनेकान्तवादपर आपका मार्मिक भाषण हुआ जिसे श्रवण कर अच्छे अच्छे विद्वान लोग [illegible] आपने सिद्ध किया कि—

[illegible] है अन्यथा संसार और मोक्षकी [illegible] क्योंकि सर्वथा नित्य माननेमें परिणाम [illegible] मानोगे तो नित्य माननेमें [illegible] [illegible] लिखा है—

'नित्यत्वैकान्तपक्षेऽपि विक्रिया नोपपद्यते ।
प्रागेव कारकाभावः क्व प्रमाणं क्व तत्फलम् ॥'

यह सिद्धान्त निर्विवाद है कि पदार्थ चाहे नित्य मानो चाहे अनित्य किसी न किसी रूपसे रहेगा ही। यदि नित्य है तो किस अवस्थामें है ? यहां दो ही विकल्प हो सकते हैं या तो शुद्ध स्वरूप होगा या अशुद्ध स्वरूप होगा। यदि शुद्ध है तो सर्वदा शुद्ध ही रहेगा क्योंकि सर्वथा नित्य माना है और इस दशामें संसार प्रक्रिया न बनेगी। यदि अशुद्ध है तो सर्वथा संसार ही रहेगा और ऐसा माननेसे संसार एवं मोक्षकी जो प्रक्रिया मानी है उसका लोप हो जावेगा अतः सर्वथा नित्य मानना अनुभवके प्रतिकूल है।

यदि सर्वथा अनित्य है ऐसा माना जाय तो जो प्रथम समयमें है वह दूसरेमें न रहेगा और तब पुण्य पाप तथा उसके फलका सर्वथा लोप हो जावेगा। कल्पना कीजिये किसी आत्माने किसीके मारनेका अभिप्राय किया वह क्षणिक होनेसे नष्ट हो गया अन्यने हिंसा की, क्षणिक होनेके कारण हिंसा करनेवाला भी नष्ट हो गया बन्ध अन्यको होगा, क्षणिक होनेसे बन्धक आत्मा नष्ट हो गया फलका भोक्ता अन्य ही हुआ...इस प्रकार यह क्षणिकत्वकी कल्पना श्रेष्ठ नहीं, प्रत्यक्ष विरोध आता है अतः केवल अनित्यकी कल्पना सत्य नहीं। जैसा कि कहा भी है—

'परिणामिनोऽप्यभावात्क्षणिकं परिणाममात्रमिति वस्तु।
तस्यामिह [illegible] न स्यात्कारणमथापि कार्यं वा ॥'

बहुतोंकी यह मान्यता है कि 'कारणसे कार्य सर्वथा भिन्न है, कारण वह कहलाता है जो पूर्व क्षणवर्ती हो, और कार्य वह है जो उत्तर क्षणवर्ती हो।' परन्तु ऐसा माननेमें सर्वथा कार्य

कारण भाव नहीं बनता। जब कि कारणका सर्वथा नाश हो जाता है तब कार्यकी उत्पत्तिमें उसका ऐसा कौन सा अंश शेष रह जाता है जो कि कार्यरूप परिणमन करेगा? कुछ ध्यानमें नहीं आता। जैसे, दो परमाणुओंसे द्व्यणुक होता है यदि वे दोनों सर्वथा नष्ट हो गये तो द्व्यणुक किससे हुआ? समझमें नहीं आता। यदि सर्वथा असत्से कार्य होने लगे तो मृत पिण्डके अभावमें भी घटकी उत्पत्ति होने लगेगी पर ऐसा देखा नहीं जाता इससे सिद्ध होता है कि परमाणुका सर्वथा नाश नहीं होता किन्तु जब वह दूसरे परमाणुके साथ मिलनेके सन्मुख होता है तब उसका सूक्ष्म परिणमन बदलकर कुछ वृद्धिरूप हो जाता है और जिस परमाणुके साथ मिलता है उसका भी सूक्ष्म परिणमन बदलकर वृद्धिरूप हो जाता है...इसी प्रकार जब बहुतसे परमाणुओंका सम्बन्ध हो जाता है तब स्कन्ध बन जाता है। स्कन्ध दशामें उन सब परमाणुओंका स्थूलरूप परिणमन हो जाता है और ऐसा होनेसे वह चक्षुरिन्द्रियके विषय हो जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि वे सब परमाणु स्कन्ध दशामें जितने थे उतने ही हैं केवल उनकी जो सूक्ष्म पर्याय थी वह स्थूल भावको प्राप्त हो गई। एवं यदि कारणसे कार्य सर्वथा भिन्न हो तो कार्य होना असम्भव हो जावे क्योंकि संसारमें जितने कार्य हैं वे निमित्त और उपादान कारणसे उत्पन्न होते हैं उनमें निमित्त तो सहकारीमात्र है पर उपादान कारण कार्यरूप परिणमनको प्राप्त होता है। जिस प्रकार सहकारी कारण भिन्न है उस प्रकार उपादान कारण कार्यसे सर्वथा भिन्न नहीं है किन्तु उपादान अपना पूर्वपर्यायको त्याग कर ही उत्तर अवस्थाको प्राप्त होता है इसी उत्तर अवस्थाका नाम कार्य है। यह नियम सर्वत्र लागू होता है—आत्मामें भी यह नियम लागू होता है—आत्मा भी सर्वथा भिन्न कार्यको उत्पन्न न

करती। जैसे सब आस्तिक महाशयोंने आत्माकी संसार और मुक्ति दो दशाएं मानी हैं यहां पर यह प्रश्न स्वाभाविक है कि यदि कारणसे कार्य सर्वथा भिन्न है तो संसार और मुक्ति ये दोनों कार्य किस द्रव्यके अस्तित्वमें हैं सिद्ध करना चाहिये। यदि पुद्गल द्रव्यके अस्तित्वमें हैं तो आत्माकी मुक्ति प्रमुख्या सम्यग्‌ यम नियम व्रत तप आदिका उपदेश देना निरर्थक है क्योंकि आत्मा तो सर्वथा निर्लेप है अतः अगत्या मानना पड़ेगा कि आत्माकी ही अशुद्ध अवस्थाका नाम संसार है। अब यहां पर यह विचारणीय है कि यदि संसार अवस्था आत्माका कार्य है और कारणसे कार्य सर्वथा भिन्न है तो आत्माका उससे क्या बिगाड़ हुआ? उसे संसार मोचनके लिये जो उपदेश दिया जाता है उसका क्या प्रयोजन है? अतः कहना पड़ेगा कि जो अशुद्ध अवस्था है यह आत्माका ही परिणमन विशेष है, वही आत्मा को संसारमें नाना यातनाएं देता है अतः उसका त्याग करना ही श्रेयस्कर है। जैसे, जल स्वभावसे शीत है परन्तु जब अग्निका सम्बन्ध पाता है तब उष्णावस्थाको प्राप्त हो जाता है, इसका यह अर्थ हुआ कि जिस प्रकार जलका पहले शीत पर्यायके साथ तादात्म्य था उसी प्रकार अब उष्ण पर्यायके साथ तादात्म्य हो गया परन्तु जलत्वकी अपेक्षा वह नित्य रहा। यह ठीक है कि उष्ण पर्याय अस्वाभाविक है—परपदार्थजन्य है अतः हेय है। इसी तरह आत्मा एक द्रव्य है उसकी जो संसार पर्याय है वह औपाधिक है उसके सद्भावमें आत्माके नाना विरुद्ध परिणाम होते हैं जो कि आत्माके लिये अहितकर हैं। जैसे जब तक आत्माकी संसार अवस्था रहती है तब तक यह आत्मा ही कभी मनुष्य हो जाता है, कभी पशु बन जाता है, कभी देव तो कभी नारकी हो जाता है तथा उन उन पर्यायोंके अनुकूल अनन्त

६४

वैशाखिया श्री पन्नालालजी गढ़ाकोटा

एक मास तक देहातमें भ्रमण करता रहा। इसी भ्रमणमें गढ़ाकोटा पहुँचा जो विशेष उल्लेखनीय है। यहाँपर श्री पन्नालालजी वैशाखिया बड़े धार्मिक पुरुष थे। आपके १००००) का परिग्रह था, आप प्रातःकाल सामायिक करते थे अनन्तर शौचादि क्रिया से निवृत्त होकर मन्दिर जाते थे और तीन घंटा वहाँ रहकर पूजन पाठ तथा स्वाध्याय करते थे।

[illegible]

मुग्ध हो जाते थे। आपको समयसारका अच्छा ज्ञान था, आप भी मन्दिरमें बहुत काल लगाते थे। यहाँ पर श्री शोधिया दरयाव सिंहजी भी कभी कभी इन्दौरसे आ जाया करते थे। आप यद्यपि सर सेठ साहबके पास इन्दौरमें रहने लगे थे पर आपका घर गढ़ाकोटा ही था। आप बड़े निर्भीक वक्ता थे। उन दिनों दैवयोगसे आपका भी समागम मिल गया। आपका शिक्षाके विषयमें यह सिद्धान्त था कि बालकों को सबसे पहले धर्मकी शिक्षा देना चाहिये जिससे कि वे धर्मसे च्युत न हो सकें। इसमें उनकी प्रबल युक्ति यह थी कि देखो अंग्रेजीके विद्वान् प्रथम धर्मकी शिक्षा न पानेसे इस व्यवहार धर्मको दम्भ बताने लगते हैं अतः पहले धर्म विद्या पढ़ाओ पश्चात् संस्कृत। पर मेरा कहना

यह था कि बालकों को धर्ममें दिग्दर्शन तथा पूजनकी शिक्षा तो दी ही जाती है अतः बनारसमें प्रथम परीक्षा दिलानेके बाद यदि धर्मशास्त्रका अध्ययन कराया जावे तो लड़के व्युत्पन्न होंगे। कहनेका तात्पर्य यह है कि वहाँपर आनन्दसे धर्म चर्चामें पन्द्रह दिन बीत गये।

पन्नालालजी वैशाखिया तीन घण्टा मन्दिरमें बिताते थे पश्चात् भोजन करते थे फिर सामायिकके बाद एक बजे दुकान पर जाते थे। आपके कपड़ेका व्यापार था आपका नियम था कि एक दिनमें ५०) का ही कपड़ा बेचना अधिकका नहीं और एक रुपये पर एक आना मुनाफा लेना अधिक नहीं। आपसे ग्राहक मोल तोल नहीं करता था। यहाँतक देखा गया कि यदि कोई ग्राहक विवाहके लिये १००) का कपड़ा लेने आया तो आपने ५०) ५०) के हिसाबसे दो दिनमें दिया। आप चार बजे तक ही दुकानमें रहते थे पश्चात् घर चले जाते थे। आपकी धर्मपत्नी मुलाबाई बड़ी सुशीला थी। आपके तीन या चार किसान थे जो आपसे ३००) या ४००) कर्ज लिये थे कुछ अनाज भी लिये थे पर आपको कभी भी उनके घर नहीं जाना पड़ा। वह लोग घर पर आकर गल्ला व रुपया दे जाते तथा ले जाते थे। आपका भोजन ऐसा शुद्ध बनता था कि अतिथि—त्यागी ब्रह्मचारीके भी योग्य होता था।

अन्तमें आपका मरण समाधिपूर्वक हुआ, आपकी धर्मपत्नी मुलाबाई पतिशोकसे दुखी हुई परन्तु सुबोध थी अतः सागर [illegible] बाईजीके पास सुखपूर्वक रहने लगी तथा विद्याभ्यास [illegible] लगी। उसे नाटक समयसार कण्ठस्थ था वह बाईजीको [illegible] मुझे भाई मानने लगी।

[illegible] चलकर मैं सागर आगया।

—

६५
चन्देकी धुनमें

एक मास बहुत परिश्रम करना पड़ा इससे शरीर थक गया। एक दिन भोजन करनेके बाद मध्याह्न में सामायिकके लिये बैठा, बीचमें निद्रा आने लगी। निद्रामें क्या देखता हूँ कि एक आदमी आया और कहता है कि 'वर्णीजी ! हमारा भी चन्दा लिख लो।'

मैंने कहा—'आप तो बड़े आदमी हैं यदि कलशोत्सव पर आते तो १०००) से कम न लेते परन्तु क्या करूं ? यह तो समय गया अब पछतानेसे क्या लाभ ? आप ही कहिये क्या देवेंगे ?

उन्होंने कहा—'तीन सौ रुपया देवेंगे ?

मैं बोला—'यह आपको शोभा नहीं देता, आप विवेकी हैं विद्याके रसको जानते हैं अत ऐसा व्यवहार आपके योग्य नहीं।

वह बोले—'अच्छा चारसौ रुपया ले लो।'

मैंने कहा—'फिर वही बात, ठीक ठीक कहिये।'

वह बोले—'५००) ये हैं नकद लीजिये।'

मैंने दोनों हाथोंसे रुपये फेंक दिये और निद्रा भंग हो गई जमीन पर पैर पड़ा अचानकसे गिर जानेसे आवाज हुई। [illegible] आगे [illegible] [illegible] सामायिक करने [illegible]

पोछते हो।'। मैंने कहा—'सामायिकमें स्वप्न आगया।' इसका तात्पर्य यह है कि जो धारणा हृदयमें हो जाती है वही तो स्वप्नके समयमें आती है। इसप्रकार सागर पाठशालाके ध्रौव्य फण्डमें २६०००) के लगभग रुपया होगया। श्री सिंघई कुन्दनलालजीके पिता फारेलालजीने भी अपने स्वर्गवासके समय ३०००) तीन हजार दिये।

६६

श्री सिंघई रतनलालजी

इतनेमें ही श्री सिंघई रतनलालजी साहब जो कि बहुत ही होनहार और प्रभावशाली व्यक्ति थे तथा पाठशालाके कोषाध्यक्ष थे, कोषाध्यक्ष ही नहीं पाठशालाकी पूरी सहायता करते थे और जिन्होंने सर्व प्रथम अच्छी रकम बोलकर कलशोत्सवके समय हुए पद्रह हजार रुपयोंके चन्देका श्री गणेश कराया था, एकदम ज्वरसे पीडित हो गये। आपने बाईजीको बुलाया और कहा—

बाईजी! अब पर्यायका कोई विश्वास नहीं, डालचन्द्र अभी बालक है परन्तु इसकी रक्षा इसका पुण्य करेगा मैं कौन हूँ? मैं अब परलोककी यात्रा कर रहा हूँ, मेरी माँ व गृहिणी सावधान हैं। मेरी माताका आपसे घनिष्ठ सम्बन्ध है अतः आप इन्हें शोक सागरमें निमग्न न होने देंगी, इनका आपमें अटल विश्वास है। डालचन्द्र मेरा छोटा भाई है इसकी रुचि पूजन तथा स्वाध्यायमें निरन्तर रहती है तथा इसे कोई व्यसन नहीं यह बड़ी प्रसन्नताकी बात है। मुझे किसी बातकी चिन्ता नहीं यदि है तो केवल इस बातकी कि इस प्रान्तमें कोई विद्यायतन नहीं है। दैवयोगसे यह एक विद्यालय हुआ है परन्तु उसमें यथेष्ट द्रव्य नहीं परन्तु अब क्या कर सकता हूँ? यदि मेरी आयु अवशेष रहती तो थोड़े ही

कालमें एक लाख रुपया औषधालय को देना पर अब कर्मोंकी चिन्तासे क्या लाभ? मैं दस हजार रुपए विद्यादानमें देता हूं।'

बाईजीने कहा—'भैया! यही मनुष्य पर्यायका सार है।'

सि० रतनलालजीने उसी समय दस हजार रुपए पृथक् करा दिये और छोटे भाईसे कहा—

'ज्ञानचन्द्र! संसार अनित्य है इसमें कदापि प्रीति करना न करना न्यायमार्गसे जीवन बिताना, जो तुम्हारी आय है उसमें सन्तोष रखना जो अपने धर्मायतन हैं उनकी रक्षा करना तथा जो अपने यहां विद्यालय है उसकी निरन्तर चिन्ता रखना। पुण्योदयसे यह मानुष तन मिला है इसे व्यर्थ न खोना, अब हमारा जो सम्बन्ध था वह छूटता है, सो को हमारे वियोगका दुःख न हो, यह जो तुम्हारी भौजाई और उनका बालक है वे दुःखी न होने पावें। हम तो निमित्तमात्र हैं प्राणियोंके पुण्य पापके उदय ही उनके सुख दुःख दाता हैं। अब हम कुछ घंटाके ही मेहमान हैं, कहां जावेंगे? इसका पता नहीं परन्तु हमें धर्म पर दृढ़ विश्वास है इससे हमारी सद्गति ही होगी।'

'बाईजी अब हमारी अन्तिम जयजिनेन्द्र है' रतनलालजीका ऐसा भाषण सुनकर सबकी धर्ममें दृढ़ श्रद्धा हो गई। बाईजी वहांसे चलकर कटरा आई कि आध घंटा बाद सुननेमें आया कि रतनलालजी स्वर्गवासी हो गये। आपके शवके साथ हजारों [illegible] सम्मिलित [illegible] सभा धर्मचर्चा सुनकर [illegible] अपने [illegible] परन्तु [illegible]

६८

जैन जातिभूषण श्री सिघई कुन्दनलालजी

सिघई कुन्दनलालजी सागरके सर्वश्रेष्ठ सहृदय व्यक्ति हैं। आपका हृदय दयासे सदा परिपूर्ण रहता है। जबतक आप सामने आये हुए दुःखी मनुष्यको शक्त्यनुसार कुछ दे न लें तबतक आपको संतोष नहीं होता। न जाने आपने कितने दुःखी परिवारोंको धन देकर, अन्न देकर वस्त्र देकर, और पूंजी देकर सुखी बनाया है। आप कितने ही अनाथ छोटे छोटे बालकोंको जहां कहींसे ले आते हैं और अपने खर्चसे पाठशालाओंमें पढ़ाकर उन्हें सिलसिलेसे लगा देते हैं। आप प्रतिदिन पूजन स्वाध्याय करते हैं अतिशय भद्र परिणामी हैं प्रारम्भसे ही पाठशालाके सभापति होते आरहे हैं और आपका वरद हस्त सदा पाठशालाके ऊपर रहता है।

एक दिन आप बाईजीके यहां बैठे थे साथमें आपके साले कुन्दनलालजी घीवाले भी थे। मैंने कहा—'भैया, सागर इतना बड़ा शहर है परन्तु यहां पर कोई धर्मशाला नहीं है।' उन्होंने कहा—हो जावेगा।

दूसरे ही दिन श्री कुन्दनलालजी घीवालोंने कटराके चुंगी पर लेकर 'कुन्दनलाल' [illegible] नामक [illegible] (लागत ३५००) [illegible] [illegible] इतना [illegible] बनानेका [illegible] दिया। [illegible]

वह [illegible]) को लगाया है और सिंघई जी की धर्मशालाके मध्यमें प्राप्त है। हम उसी मकानमें रहने लगे।

एक दिन मैंने सिंघईजीसे कहा कि यह सब तो ठीक हुआ परन्तु आपके मन्दिरमें सरस्वती भवनके लिये एक मकान जुदा होना चाहिये। आपने तीन मासके अन्दर ही सरस्वती भवनके नाम से एक मकान बनवा दिया जिसमें ५०० आदमी आनन्दसे शास्त्र प्रवचन सुन सकते हैं। महिलाओं और पुरुषोंके बैठनेके पृथक् पृथक् स्थान हैं।

एक दिन सिंघईजी पाठशालामें आये, मैंने कहा यहां और तो सब सुभीता है परन्तु सरस्वतीभवन नहीं है। विद्यालयकी शोभा सरस्वती मन्दिरके बिना नहीं। कहनेकी देर थी कि आपने मोराजी के उत्तरकी सेनामें एक विशाल सरस्वती भवन बनवा दिया।

'सरस्वती भवनका उद्घाटन समारोहके साथ होना चाहिये और इसके लिये जयधवल तथा धवल सिद्धान्तराज आना चाहिये' .आपसे मैंने कहा।

'कहा कहां मिल सकेंगे ?....आपने कहा।

'सीताराम शास्त्री सहारनपुरमें हैं उनसे हमारा घनिष्ठ सम्बन्ध है उनके पास दोनों ही सिद्धान्तराज हैं परन्तु २०००) लिखाईके मांगते हैं' मैंने कहा।

'मंगा लीजिए' आपने प्रसन्नतासे उत्तर दिया।

मैंने [illegible] सिद्धान्तराज मंगा लिये जब शास्त्रीजी ग्रन्थ लेकर [illegible] के अतिरिक्त कुन्दकुन्द ग्रन्थ और [illegible] [illegible] भवनके उद्घाटनके [illegible] [illegible] सम्मेलन रह दिया कि [illegible]

प्रतिमा भी पधरा दो जिससे निरन्तर पूजा होती रहेगी। सरस्वती भवनमें क्या होगा ? उससे तो केवल पढ़े लिखे लोग ही लाभ उठा सकेंगे। सिंघेनजीके मनमें बात जम गयी, फिर क्या था ? पत्रिका छप गई कि अमुक तिथिमें सरस्वती भवनमें प्रतिमाजी विराजमान होंगी।

यह सब देखकर मुझे मनमें बहुत व्यग्रता हुई। मेरा कहना था कि मोराजीमें एक चैत्यालय तो है ही अब दूसरेकी आवश्यकता क्या है ? पर सुननेवाला कौन था ? मैं मन ही मन व्यग्र होता रहा।

एक दिन सिंघईजीने निमन्त्रण किया। मैंने मनमें ठान ली कि चूंकि सिंघईजी हमारा कहना नहीं मान रहे हैं अतः उनके यहाँ भोजनके लिये नहीं जाऊंगा। जब यह बात बाईजीने सुनी तब हमसे बोलीं—

'भैया ! कल सिंघईजीके यहाँ निमन्त्रण है।'

मैंने कहा—'हाँ, है तो परन्तु मेरा विचार जानेका नहीं है।'

बाईजीने कहा—'क्यों नहीं जानेका है ?'

मैंने कहा—'वे सरस्वती भवनमें प्रतिमाजी स्थापित करना चाहते हैं।'

बाईजीने कहा—'बस यही, पर इसमें तुम्हारी क्या क्षति हुई ? मान लो, यदि तुम भोजनके लिये न गये और इस कारण सिंघईजी तुमसे अप्रसन्न हो गये तो उनके द्वारा पाठशालाको जो सहायता मिलती है वह मिलती रहेगी क्या ?'

मैंने कहा—'न मिले हमारा क्या जावेगा ?'

इतना उत्तर सुनकर बाईजीने कहा कि 'तुम अत्यन्त नादान

हो। तुमने कहा—हमारा क्या जायगा? अरे मूर्ख? तेरा तो सर्वस्व चला जायगा। आखिर तुम यही तो चाहते हो कि विद्यालयके द्वारा छात्र पण्डित बनकर निकलें और जिनधर्मकी प्रभावना करें। यह विद्यालय आजकल धनिक वर्गके द्वारा ही चल रहे हैं यद्यपि पण्डित लोग चाहें तो चला सकते हैं परन्तु उनके पास द्रव्यकी त्रुटि है यदि उनके पास पुष्कल द्रव्य होता तो वे कदापि पराधीन होकर अध्ययन-अध्यापनका कार्य नहीं करते अतः समय को देखते हुए इन धनवानोंसे मिलकर ही अभीष्ट कार्यकी सिद्धि हो सकेगी। आज पाठशालामें ६००) मासिकसे अधिक व्यय है यह कहांसे आता है? इन्हीं लोगोंकी बदौलत तो आता है? अतः भूलकर भी न कहना कि मैं सिंघईजीके यहां भोजनके लिये नहीं जाऊँगा।'

मैंने बाईजीकी आज्ञाका पालन किया।

सरस्वती भवनके उद्घाटनके पहले दिन प्रतिमाजी विराजमान करनेका मुहूर्त होगया दूसरे दिन सरस्वती भवनके उद्घाटनका अवसर आया। मैंने दो अलमारी पुस्तकें सरस्वती भवनके लिये भेंट कीं। प्रायः उनमें हस्त लिखित ग्रन्थ बहुत थे। न्यायदीपिका, परीक्षामुख, आप्तपरीक्षा, प्रमेयकमलमार्तण्ड, अष्टसहस्री, सूत्र जी सटीक, सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक, जैनेन्द्र व्याकरण, समयसार, प्रवचनसार, आदिपुराण आदि अनेक शास्त्र हस्तलिखित थे।

उद्घाटन सागरके प्रसिद्ध वकील स्वर्गीय श्रीरामकृष्ण रावके द्वारा हुआ। अन्तमें मैंने कहा कि उद्घाटन तो होगया परन्तु इसकी रक्षाके लिये कुछ द्रव्यकी आवश्यकता है। सिंघईजीने २५०१) दान किये अब मैंने आपकी धर्मपत्नीसे कहा कि यह द्रव्य बहुत अल्प है अतः आपके द्वारा भी कुछ होना चाहिये आप सुनकर

प्रतिमा भी पधरा दो जिससे निरन्तर पूजा होती रहेगी। सरस्वती भवनसे क्या होगा? उससे तो केवल पढ़े लिखे लोग ही लाभ उठा सकेंगे। सिंघेनजीके मनमें बात जम गयी, फिर क्या था? पत्रिका छप गई कि अमुक तिथिमें सरस्वती भवनमें प्रतिमाजी विराजमान होंगी।

यह सब देखकर मुझे मनमें बहुत व्यग्रता हुई। मेरा कहना था कि मोराजीमें एक चैत्यालय तो है ही अब दूसरेकी आवश्यकता क्या है? पर सुननेवाला कौन था? मैं मन ही मन व्यग्र होता रहा।

एक दिन सिघईजीने निमन्त्रण किया। मैंने मनमें ठान ली कि चूंकि सिघईजी हमारा कहना नहीं मान रहे हैं अतः उनके यहां भोजनके लिये नहीं जाऊंगा। जब यह बात बाईजीने सुनी तब हमसे बोलीं—

'भैया! कल सिघईजीके यहां निमन्त्रण है।'

मैंने कहा—'हाँ, है तो परन्तु मेरा विचार जानेका नहीं है।'

बाईजीने कहा—'क्यों नहीं जानेका है?'

मैंने कहा—'वे सरस्वती भवनमें प्रतिमाजी स्थापित करना चाहते हैं।'

बाईजीने कहा—'बस यही, पर इसमें तुम्हारी क्या क्षति हुई? मान लो, यदि तुम भोजनके लिये न गये और उस कारण सिघईजी तुमसे अप्रसन्न होगये तो उनके द्वारा पाठशालाको जो सहायता मिलती है वह मिलती रहेगी क्या?'

मैंने कहा—'न मिले हमारा क्या जायगा?'

हमारा उत्तर सुनकर बाईजीने कहा कि 'तुम अत्यन्त नादान

म्भको देखकर समवसरणके दरयकी याद आ जाती है। सागरमें प्रतिवर्ष महावीर जयन्तीके दिन विधिपूर्वक मानस्तम्भ और तत्स्थ प्रतिमाओंका अभिषेक होता है जिसमें समस्त जैन नर-नारियोंका जमाव होता है।

इस प्रकार सिंघई कुन्दनलालजी के द्वारा सतत-धार्मिक कार्य होते रहते हैं ऐसा परोपकारी जीव चिरायु हो। आपके लघु भ्राता श्री नाथूरामजी सिंघईने भी दस हजार रुपया लगाकर एक गंगा जमुनी चांदी सोनेका विमान बनवा कर मन्दिरजी को समर्पित किया है। जो बहुत ही सुन्दर है तथा सागरमें अपने ढंगका एक ही है।

६९

द्रोणगिरि

द्रोणगिरि सिद्ध क्षेत्र बुन्देलखण्डके तीर्थ क्षेत्रोंमें सबसे अधिक रमणीय है। हरा भरा पर्वत और समीप ही बहती हुई युगल नदियाँ देखते ही बनती हैं। पर्वत अनेक कन्दराओं और निर्झरों से सुशोभित है। श्री गुरुदत्त आदि मुनिराजोंने अपने पवित्र पाद रजसे इसके कण कणको पवित्र किया है। यह उनका मुक्तिस्थान होनेसे निर्वाणक्षेत्र कहलाता है। यहां आनेसे न जाने क्यों मनमें अपने आप असीम शान्तिका संचार होने लगता है।

यहां ग्राममें एक और ऊपर पर्वत पर सत्ताईस जिन मन्दिर हैं। ग्रामके मन्दिर में श्री ऋषभदेव स्वामीकी शुभ्रमय विशाल प्रतिमा है पर निरन्तर अँधेरा रहनेसे उसमें चमगीदड़ें रहने लगीं जिससे दुर्गन्ध आती रहती थी।

.. दिन सिंघईजी से कहा—'द्रोणगिरि क्षेत्र के गांवके ... रहती हैं जिससे बड़ी अविनय होती है य ... एक वेदी बन जावे और प्रकाशके लिये खिड़किया ... तो बहुत अच्छा हो।'

सिंघईजी के विचार हृदयमें ... ओ पसा गई अतः उनमें ... बोले कि 'अपनी इच्छानुसार ... ३ ? मैं मैं ... निकाल दी जिसने ... पाँच ... दी

उसने उत्तमसे उत्तम वेदी बना दी। मैं स्वयं वेदी और कारीगर को लेकर द्रोणगिरि गया तथा मन्दिरमें यथास्थान वेदी लगवा दी एवं प्रकाशके लिये खिड़कियां रखवा दीं। मन्दिरकी दालानमें चार स्तम्भ थे उन्हें अलग कर ऊपर गार्डर डलवा दिये जिससे स्वाध्यायके लिये पुष्कल स्थान निकल आया। पहले वहां दस आदमी कष्टसे बैठ पाते थे अब वहां पचास आदमियोंके बैठने लायक स्थान हो गया।

वहां एक बात विशेष यह हुई कि जहां हम लोग ठहरे थे, वहां दरवाजेमें मधु मक्खियोंने छत्ता लगा लिया जिससे आने जानेमें असुविधा होने लगी। माळियोंने विचार किया कि जब सब सो जावें तब धून कर दिया जावे जिससे मधु मक्खियां उड़ जावेंगी। ऐसा करनेसे सहस्रों मक्खियां मर जातीं अतः यह बात सुनते ही मैंने माळियोंसे कहा कि भाई! वेदी जड़ी जावे चाहे नहीं जड़ी जावे पर यह कृत्य तो हम नहीं देख सकते। तुम लोग भूलकर भी यह कार्य नहीं करना। मरोला माली धार्मिक था, उसने कहा कि आप निश्चिन्त रहिये हम ऐसा काम न करेंगे। अनन्तर हम श्री जिनेन्द्रदेवके पास प्रार्थना करने लगे कि "हे प्रभो! आपकी मूर्तिके लिये ही वेदी बन रही है। यदि यह उपद्रव रहा तो हम लोग प्रातःकाल धूंआ करेंगे। हम तो आपके सिद्धान्तके ऊपर विश्वास रखते हैं पर जीवोंको पीड़ा पहुंचाकर धन नहीं चाहते। आपके ज्ञानमें जो आया है वही होगा। सम्भव है यह विघ्न टल जावे...इस प्रकार प्रार्थना करके सो गये। प्रातः काल उठनेके बाद क्या देखते हैं कि वहां पर एक भी मधु मक्खी नहीं है। फिर क्या था [illegible] दिनमें वे देखो उड़ गई। पश्चात् [illegible] वेदिकामें विधिवत् [illegible]
[illegible] हो गये

६९

द्रोणगिरि

द्रोणगिरि सिद्ध क्षेत्र बुन्देलखण्डके तीर्थ क्षेत्रोंमें सबसे अधिक रमणीय है। हरा भरा पर्वत और समीप ही बहती हुई युगल नदियां देखते ही बनती हैं। पर्वत अनेक कन्दराओं और निर्झरों से सुशोभित है। श्री गुरुदत्त आदि मुनिराजोंने अपने पवित्र पाद रजसे इसके कण कणको पवित्र किया है। यह उनका मुक्तिस्थान होनेसे निर्वाणक्षेत्र कहलाता है। यहां आनेसे न जाने क्यों मनमें अपने आप असीम शान्तिका संचार होने लगता है।

यहां ग्राममें एक और ऊपर पर्वत पर सत्ताईस जिन मन्दिर हैं। ग्रामके मन्दिर में श्री ऋषभदेव स्वामीकी शुभ्रवर्ण विशाल प्रतिमा है पर निरन्तर अँधेरा रहनेसे उसमें चमगीदड़ें रहने लगीं जिससे दुर्गन्ध आती रहती थी।

मैंने एक दिन सिंघईजी से कहा—'द्रोणगिरि क्षेत्र के गांवके मन्दिरमें चमगीदड़ें रहती हैं जिससे बड़ी अविनय होती है यदि देशी पत्थरकी एक वेदी बन जावे और प्रकाशके लिये खिड़कियां रख दी जावें तो बहुत अच्छा हो।'

सिंघईजी के विशाल हृदयमें यह बात भी समा गई अतः हमसे बोले कि 'अपनी इच्छाके अनुसार बनवा लो।' मैंने भैयाटाल मिस्त्रीको जिसने कि मानस्तम्भ बनाया था, सब बातें समझा दीं

पन्द्रह दिन बाद उसकी मौत आ गई अतः अपने आप मर गई इसलिये ऐसा दण्ड देना अनुचित नहीं।'

बहुतसे कहने लगे ठीक है पर बहुतसे पुरानी रूढ़िवाले कुछ सहमत नहीं हुए अन्तमें यह निर्णय हुआ कि वे सत्यनारायणकी एक कथा करवावें और ग्राम भरके घर पीछे एक आदमीका भोजन करावें ...इस प्रकार शुद्धि हुई। बेचारे ब्राह्मणके सौ रुपया खर्च हो गये। मैं बहुत खिन्न हुआ तब ब्राह्मण बोला—आप खेद न करिये मैं अच्छा निपट गया अन्यथा गङ्गाके कम करने पड़ते और तब मेरी गृहस्थी ही समाप्त हो जाती। यह तो यहांके रूढ़िवाद का एक उदाहरण है इसी प्रकार यहां न जाने प्रतिवर्ष कितने आदमी रूढ़ियोंके शिकार होते रहते हैं।

७०

रूढ़िवादका एक उदाहरण

यह प्रान्त अज्ञान तिमिर व्याप्त है अतः अनेक कुरूढ़ियोंका शिकार हो रहा है। क्या जैन क्या अजैन सभी पुरानी लीकको पीट रहे हैं और धर्मकी ओटमें आपसी वैमनस्यके कारण एक दूसरेको परेशान करते रहते हैं। इसी द्रोणगिरिकी बात है। नदीके घाटपर एक ब्राह्मणका खेत था उसका लड़का खेतकी रखवाली करता था एक गाय उसमें चरनेके लिये आई और उसने भगानेके लिये एक छोटा सा पत्थर उठाकर मार दिया। गाय भाग गई दैवयोगसे वही गाय पन्द्रह दिन बाद मर गई। ग्रामके ब्राह्मण तथा इतर समाजवालोंने उस बालकको ही नहीं उसके सर्व कुटुम्बको हत्याका अपराध लगा दिया। बेचारा बड़ा दुखी हुआ। अन्तमें पञ्चायत हुई मैं भी वहीं था।

बहुतोंने कहा कि इन्हें गङ्गाजीमें स्नान करा कर पश्चात् हत्याकरनेवालोंकी जैसी शुद्धि होती है वैसी ही इनकी होनी चाहिये। मैंने कहा—'भाई! प्रथम तो इनसे हिंसा हुई नहीं निरपराध दोषी बनाना न्यायसंगत नहीं। इनके लड़केने गाय भगानेके लिये छोटासा पत्थर मार दिया। उसका अभिप्राय गाय भगानेका था मारनेका नहीं। यथार्थमें उसके पत्थरसे गाय नहीं मरी
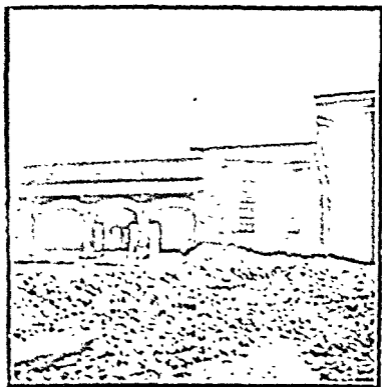
पूज्य श्री वर्णीजी द्वारा स्थापित द्रोणगिरि पाठशाला का परिवर्धित रूप मलहरा गुरुकुल। इसकी स्थापना में श्री सिं० कुन्दनलालजी व मलैया बालचन्द्रजी बी० एस० सी० सागरवालों ने तथा श्री सिं० वृन्दावन-जी मलहरावालोंने विशेष सहायता दी है।

[पृ० ३१८]

७१

द्रोणगिरि क्षेत्रपर पाठशालाकी स्थापना

मैं जब पपौराके परवारसभाके अधिवेशनमें गया तब वहाँ सेंदपा (द्रोणगिरि) निवासी एक भाई गया था। उसने कई पण्डितोंसे निवेदन किया कि द्रोणगिरिमें एक पाठशाला होनी चाहिये परन्तु सबने निषेध कर दिया। अन्तमें मुझसे भी कहा कि 'वर्णीजी ! द्रोणगिरिमें पाठशालाकी महती आवश्यकता है।' मैंने कहा—'अच्छा जब आऊँगा तब प्रयत्न करूंगा।'

जब द्रोणगिरि आया तब उसका स्मरण हो आया अतः पाठशालाके खोलनेका प्रयास किया। पर इस ग्राममें क्या धरा था ? यहां जैनियोंके केवल दो तीन घर हैं जो कि साधारण परिस्थितिके हैं। मेलाके अवसर पर अवश्य आसपासके लोग एकत्रित हो जाते हैं पर मेला अभी दूर था, इसलिये विचारमें पड़ गया। इतनेमें ही घुवारामें जलविहार था वहां जानेका अवसर मिला। मैंने वहां एकत्रित हुए लोगोंको समझाया कि—

'देखो, यह प्रान्त विद्यामें बहुत पीछे है आप लोग जलविहार में सैकड़ों रुपये खर्च कर देते हो कुछ विद्यादानमें भी खर्च करो। यदि क्षेत्र द्रोणगिरिमें एक पाठशाला हो जावे तो अनायास ही इस प्रान्तके बालक जैनधर्मके विद्वान् हो जावेंगे।'
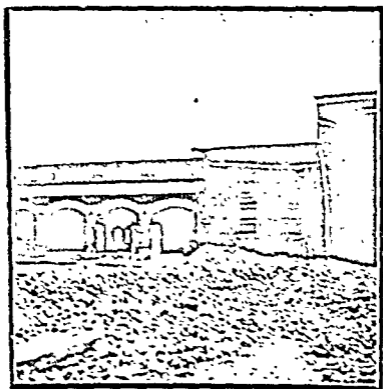
पूज्य श्री वर्णीजी द्वारा स्थापित द्रोणगिरि पाठशाला का परिवर्धित रूप मलहरा गुरुकुल। इसकी स्थापना में श्री सि० कुन्दनलालजी व मलैया बालचन्द्रजी बी० एस: सी: सागरवालों ने तथा श्री सि० वृन्दावन-जी मलहरावालोंने विशेष सहायता दी है।

[पृ० ३५८]

इस प्रान्तमें आप बहुत धार्मिक व्यक्ति हैं। अनेक संस्थाओं
यथासमय सहायता करते रहते हैं। हमारे साथ आपका बहु
घनिष्ट सम्बन्ध है, आप निरन्तर हमारी चिन्ता रखते हैं।
पाठशालाका नाम श्रीगुरुदत्त दि० जैन पाठशाला रखा गया।

दया ही मानवका प्रमुख कर्तव्य है

द्रोणगिरिसे लौट कर हम लोग सागर आ गये एक दिनकी बात है कि—मैं पं० वेणीमाधवजी व्याकरणाचार्य और छात्रगणके साथ सायंकालके चार बजे शौचादि क्रियासे निवृत्त होनेके लिये गांवके बाहर एक ताल पर गया था। वहीं कूप पर हाथ पैर धोनेकी तैयारी कर रहा था कि इतनेमें एक औरत बड़े जोरसे रोने लगी। हम लोगोंने पूछा—'क्यों रोती हो?' उसने कहा—'हमारे पैरमें कांटा लग गया है।' हमने कहा—'बतलाओ हम निकालते हैं।' परन्तु बार बार कहने पर भी वह पैरको न छूने देती थी कहती थी कि 'मैं जातिकी कोरिन तथा स्त्री हूं आप लोग पण्डित हैं कैसे पैर छूने दूं?' मैंने कहा—'बेटी! यह आपत्तिकाल है, इस समय पैर छुवानेमें कोई हानि नहीं।' बमुश्किल उसने एक लड़केसे कहा—'बेटा देखो।' लड़केने पैर देख कर कहा—'इसमें खजूरका कांटा टूट गया है जो बिना सडसीके निकलनेका नहीं।'

सड़कके ऊपर एक लुहारकी दुकान थी वहां एक छात्र संडसी लेने भेजा। छात्रने बड़े अनुनयसे सडसी मांगी पर उसने न दी। [illegible] [illegible]

कहा—'चलिये।' मैंने कहा—'नहीं जाऊंगा, कृपाकर आप भी पन्द्रह मिनट ठहर जाइये।' वह मेरे आग्रहसे ठहर गये।

उसने अपनी कथा सुनाना प्रारम्भ किया—

'सर्व प्रथम उसने सीतारामका स्मरणकर कहा कि हे मङ्गलमय भगवान्! तेरी लीला अपरम्पार है मैं क्या था और क्या होगया! अथवा आपका इसमें क्या दोष? मैं ही अपने पतित कर्तव्योंसे इस अवस्थाको प्राप्त हुआ हूँ। मैं जातिका नीच नहीं, ब्राह्मण हूँ मेरे सुन्दर स्त्री तथा दो बालक हैं जो कि अब गोरखपुर चले गए हैं। मैं पुलिसमें हवालदार था, मेरे पास पांच हजार नकद रुपये थे, बीस रुपया मासिक वेतन था।

एक दिन मैं एक अफसरके यहां वेश्याका नाच देखनेके लिये चला गया। वहां जो वेश्या नृत्य कर रही थी उसे देखकर मैं मोहित होगया। दूसरे दिन जब उसके घर गया तब उसने जाल में फँसा लिया। बहुत कहनेसे क्या लाभ? मेरे पास जो सम्पत्ति थी वह मैंने उसे दे दी जब रुपया न रहा तब औरतके आभूषण देने लगा। पता लगने पर औरतने मुझे बहुत कुछ समझाया और कहा कि 'आपको इस प्रवृत्तिको धिक्कार है, सुन्दर पत्नीको छोड़कर इस अकार्यमें प्रवृत्ति करते हुए आपको लज्जा न आई। अब मैं अपने बालकोंको लेकर अपने पिताके घर जाती हूँ, वहीं पर इन्हें शिक्षित बनाऊगी, यदि आपकी प्रवृत्ति अच्छी हो जाय तो घर आ जाना, यह सब पापका फल है आपने पुलिसके मुहकमामें रहकर जो गरीबोंको सताया है उसीका यह प्रत्यक्ष फल भोग रहे हो और आगे भोगोगे.. ..' इतना कहकर वह अपने पिताके घर चली गई।

जब मेरे पास कुछ नहीं रहा तब इधर वेश्याने अपने पास

७४

महिला का विवेक

सागरमें मन्त्री पूर्णचन्द्रजी बहुत बुद्धिमान् विवेकी हैं उनके मित्र श्री पन्नालालजी बड़कुर थे। आप दोनोंकी परस्पर संज्ञातमें कपड़े की दुकान थी। दोनोंमें सहोदर भाइयों जैसा प्रेम था। दैवयोगसे श्री पन्नालालजी का स्वास्थ्य खराब होने लगा। आप चार मास पाठशालाके स्वच्छ भवनमें रहे परन्तु स्वास्थ्य बिगड़ता ही गया चार मास बाद आप घर आ गये अन्तमें आपको जलोदर रोग हो गया।

एक दिन पेशाब बन्द हो गई जिससे बेचैनी अधिक बढ़ गई। सदरसे डाक्टर साहब आये उन्होंने मध्यान्हमें मदिराका पान करा दिया। यद्यपि इसमें न उनकी स्त्रीकी सम्मति थी और न पूर्णचन्द्र जी की ही राय थी फिर भी कुटुम्बके कुछ लोगोंने बलात्कार पान करा दिया।

उनकी धर्मपत्नीने मुझे बुलाया परन्तु मैं उस दिन दमोह गया था। जब चार बजेकी गाड़ीसे वापिस आया और मुझे उनकी अधिक बीमारीका पता चला तो मैं शीघ्र ही उनके घर चला गया। उनकी धर्मपत्नीने कहा—'वर्णीजी! मेरे पतिकी अवस्था शोचनीय है अतः इन्हें सावधान करना चाहिये साथ ही

इनसे दान भी कराना चाहिये अतः अभी तो आप जाईये और सायंकालकी सामायिक कर आ जाईये।

मैं कटरा गया और सामायिक आदिकर शामके ७ बजे बड़कुरजी के घर पहुंच गया। जब मैं वहां पहुँचा तब चमेलीचौक की अस्पतालका डाक्टर था उसने एक आदमीसे कहा कि हमारे साथ चलो हम दवाई देंगे उसे एक छोटे ग्लाससे पिला देना, इन्हें शान्तिसे निद्रा आ जावेगी। पन्द्रह मिनट बाद वह आदमी दवाई लेकर आ गया। छोटे ग्लासमें दवाई डाली गई उसमें मदिराकी गन्ध आई। मैंने कहा—'यह क्या है?' कोई कुछ न बोला, अन्तमें उनकी धर्मपत्नी बोली 'मदिरा है यद्यपि पूर्णचन्द्र जी ने और मैंने काफी मना किया था फिर भी उन्हें दोपहरको मदिरा पिला दी गई और अब भी वही मदिरा दी जा रही है।'

मैंने कहा— 'पांच मिनटका अवकाश दो, मैं श्री पन्नालालजी से पूछता हूँ।' मैंने उनके शिरमें पानीका छींटा देकर पूछा—'भाई साहब! आप तो विवेकी हैं, आपको जो दवाई दी जा रही है वह मदिरा है क्या आप पान करेंगे?' उन्होंने शक्ति भर जोर देकर कहा—'नहीं आमरणान्त मदिराका त्याग।' सुनते ही सबके होश ठिकाने आ गये और औषधि देना बन्द कर दिया। सबकी यही सम्मति हुई कि यदि प्रातःकाल इनका स्वास्थ्य अच्छा रहा तो औषधि देना चाहिये।

[illegible] मैंने [illegible] से कहा कि आपको धर्मपत्नीकी [illegible] आपको कुछ विश्वास नहीं। [illegible] देना है [illegible] [illegible] अनु[illegible] [illegible] है [illegible] [illegible]

ही देना चाहिये और मन्त्री पूर्णचन्द्रजी से कहा कि आप आज ही दुकानमें विद्यालयके जमा कर लो तथा मेरे नाम लिख दो। अब इन्हें समाधिमरण सुनानेका अवसर है वह स्वयं सुनाने लगी और पन्द्रह मिनट बाद श्री पन्नालालजी बड़कुरका शान्तिसे समाधिमरण हो गया।

इसके बाद उनकी धर्मपत्नीने उपस्थित जनताके समक्ष कहा कि यह संसार है इसमें जो पर्याय उत्पन्न होती है वह नियमसे नष्ट होती है अतः हमारे पतिकी पर्याय नष्ट हो गई। चूंकि ऐसी होना ही अतः इसमें आप लोगोंको शोक करना सर्वथा अनुचित है। यद्यपि आपके बड़े भ्राता व भतीजेका बन्धु वियोग जन्य हानि हुई परन्तु यह अनिवार्य थी। इसमें शोक करनेकी कौन सी बात? हम प्रति दिन पाठ पढ़ते हैं—

> 'राजा राणा छत्रपति हाथिन के असवार।
> मरना सबको एक दिन अपनी अपनी बार॥
> दल बल देवी देवता मात पिता परिवार।
> मरती बिरियाँ जीव को कोई न राखन हार॥'

जब कि यह निश्चय है तब शोक करनेकी क्या बात है? शोक करनेका मूल कारण यह है कि हम उस पर पदार्थको अपना मानते हैं यदि इनमें हमारी यह धारणा न होती कि यह हमारे हैं तो आज यह कुअवसर न आता। अस्तु आपको जो इच्छा हो उसकी शान्तिके लिए जो उचित हो वह कीजिये परन्तु मैं तो अन्तरङ्गमें शोक नहीं चाहती। हाँ, शोक व्यवहारमें दिखानेके लिये कुछ करना ही होगा। इतना कहकर वह मूर्छित हो गई।

अनन्तर श्री पन्नालालजीका शवदाह संस्कार हुआ।

७५

बालादपि सुभाषितं ग्राह्यम्

इसके पहले की बात है—वण्डामें पञ्चकल्याणक थे हम वह गये । न्यायदिवाकर पण्डित पन्नालालजी प्रतिष्ठाचार्य थे आप बहुत ही प्रतिभाशाली थे। बड़े बड़े धनाढ्य और विद्वान् भी आपके प्रभावमें आ जाते थे। 'उस समय विद्याका इतना प्रचार न था अतः आपकी प्रतिष्ठा थी' यह बात नहीं थी। आप वास्तवमें पण्डित थे। अच्छे अच्छे ब्राह्मण पण्डित भी आपकी प्रतिष्ठा करते थे। छत्रपुर (छतरपुर) के महाराज तो आपके अनन्यभक्त थे। जब आप छत्रपुर जाते थे तब राजमहलमें आपका व्याख्यान कराते थे।

आपने बहुत ही विधिपूर्वक प्रतिष्ठा कराई, जनताने अच्छा धर्म लाभ लिया। राज्यगद्दीके समय मुझे भी बोलनेका अवसर आया। व्याख्यानके समय मेरा हाथ मेज पर पड़ा जिससे मेरी अंगूठीका हीरा निकल गया। सभा विसर्जन होनेके बाद डेरामें आये और आनन्दसे सो गये। प्रातःकाल सामायिकके लिये जब पद्मासन लगाई और हाथ पर हाथ रक्खा तब अगूठी गड़ने लगी। मनमें विचार आया कि इसका हीरा निकल गया है इसी लिये इसका स्पर्श कठोर लगने लगा है फिर इस विकल्पको त्याग सामायिक करने लगा। सामायिकके बाद जब देखा तब सचमुच

अगूठीमें हीरा न था। मनमें खेद हुआ कि पांच सौ रुपए का हीरा चला गया। जिससे कहूँगा वही कहेगा कि कैसे निकल गया? बाईजी भी रंज करेंगी अतः किसीसे कुछ नहीं कहना जो हुआ सो हुआ। ऐसा ही तो होना था, इसमें खेदकी कौन सी बात है? जब तक हमारी अंगूठी में था तब तक हमारा था जब चला गया तब हमारा न रहा अतः सन्तोष करना ही सुखका कारण है। परन्तु फिर भी मनमें एक कल्पना आई कि यदि किसीको मिल गया और उसने कांच जानकर फेंक दिया तो व्यर्थ ही जावेगा अतः मैंने स्वयं सेवकोंको बुलाया और उनके द्वारा मेलामें यह घोषणा करा दी कि वर्णीजी की अगूठीमें से हीरा निकल कर कहीं मंडपमें गिर गया है जो कि पांच सौ रुपए का है। यदि किसीको मिल जावे तो काच समझकर फेंक न दे। उन्हीं को दे देवे 'यदि न देनेके भाव हों तो उसे बाजारमें पाचसौ रुपया से कममें न देवे अथवा न बेचे तो मुद्रिकामें जड़वा लेवे।'

वह हीरा जिस बालकको मिला था उसने अच्छा कांच समझ कर रख लिया था। जब मैं भोजन कर रहा था तब हीरा लेकर आया और भोजन करनेके बाद यह कहते हुए उसने दिया कि यह हीरा मुझे सभा मण्डपमें जहां कि नृत्य होता था मिला था। मैंने चमकदार देखकर इसे रख लिया था जिस समय मिला था उस समय यह दूसरा बालक भी वहीं था। यदि यह न होता तो संभव है हमारे भाव लोभके हो जाते और आपको न देता। इस कथासे कुछ तत्त्व नहीं परन्तु एक बात आपसे कहना हमारा कर्तव्य है। यद्यपि हम बालक हैं, हमारी गणना शिक्षकोंमें नहीं और आप तो वर्णी हैं हजारों आदमियोंको व्याख्यान देते हैं शास्त्रप्रवचन करते हैं, त्यागका उपदेश भी देते हैं और बहुतसे

७६

श्रीगोम्मटेश्वर यात्रा

संवत् १९७६ की बात है—अगहनका मास था शरदऋ
प्रकोप वृद्धिपर था। इसी समय सागर जैन समाजका विचार
श्रीगिरिनारजी तथा जैनबद्रीकी वन्दना करनेका स्थिर हो गया।
अवसर देख बाईजीने मुझसे कहा—'बेटा! एक बार जैनबद्री
की यात्राके लिये चलना चाहिये। मेरे मनमें श्री १००८ गोम्म
टेश्वर स्वामीकी मूर्तिके दर्शन करनेकी बड़ी उत्कण्ठा है।'

मैंने कहा—'बाईजी! सात सौ रुपया व्यय होगा, ललिताको
भी साथ ले जाना होगा।' उन्होंने कहा—'बेटा! रुपयोंकी चिन्ता
न करो।' उसी समय उन्होंने यह कहते हुए सात सौ रुपये सामने
रख दिये कि मैं यह रुपये यात्राके निमित्त पहलेसे ही रक्खे थी।
इतनेमें मुलाबाईने भी यात्राका पक्का विचार कर लिया, श्री
कमलापतिजी बरायठावालोंका भी विचार स्थिर हो गया और
श्रीयुत गुलाबी जो कि पं० मनोहरलालजी वर्णीके पिता थे,
यात्राके लिये तैयार हो गये। एक जैनी कटरा बाजारमें था,
मुलाबाईने उसे साथ ले जानेका निश्चय कर लिया। इस प्रकार
हम लोगोंका यात्राका पूर्ण विचार स्थिर हो गया सब सामग्रीकी
योजना की गई और शुभ मुहूर्तमें प्रस्थान करनेका निश्चय
किया गया।

श्रीसिंघई कुन्दनलालजी जो हमारे परमस्नेही हैं आये और हमसे कहने लगे कि आनन्दसे जाईये और तीनसौ रुपया मेरे लेते जाईये। इनके सिवाय दो सौ रुपया यह कहते हुए और दिये कि जहां आप समझें वहां भवभण्डारमें दे देना। मैंने बहुत कुछ कहा परन्तु उन्होंने एक न मानी। जब मैं यात्राके लिये चलने लगा तब स्टेशन तक बहुत जनता आई और सबने नारियल भेंट किये।

हम सागर स्टेशनसे चलकर बीना आये। यहां श्री सिंघई परमानन्दजी अपने घर ले गये तथा एक रात्रि नहीं जाने दिया। आप बड़े ही धर्मात्मा पुरुष थे। बीनामें श्री जैन मन्दिर बहुत रमणीक है, तथा उससे लगा हुआ पाठशालाका बोर्डिंग भी है जिसका व्यय श्री सिंघई श्रीनन्दनलालजीके द्वारा सम्यक् प्रकारसे चलता है। यहां भोजन कर नासिकका टिकिट लिया। मार्गमें भेलसा स्टेशन पर बहुतसे सज्जन मिले और श्रीफल भेंटमें दे गये।

रात्रिके समय नासिक पहुँचे वहांसे तांगाकर श्री गजपन्था जी पहुंच गये। सात बलभद्र और आठ करोड़ मुनि जहांसे मुक्ति को प्राप्त हुए उस पर्वतको देखकर चित्तमें बहुत प्रसन्नता हुई। मनमें यह विचार आया कि ऐसा निर्मल स्थान धर्म साधनके लिये अत्यन्त उपयुक्त है। यदि यहां कोई धर्मसाधन करे तो सब [illegible] सुलभ हैं, जल वायु उत्तम है तथा खाद्य पेय पदार्थ भी [illegible] मिलते हैं परन्तु मूल कारण तो परिणामोंकी स्वच्छता है [illegible] है अतः मनका विचार मनमें रह जाता है।

[illegible] पूजन [illegible] रने [illegible] स्टेशनसे [illegible] [illegible]

उसीमें ठहर गये। मैं दहलानके मकानमें चला गया। यहां पर क्या देखता हूँ कि एक मनुष्य बैठा हुआ है और उसके कण्ठमें एक पुष्पमाला पड़ी हुई है। मेरा मन उसके देखनेमें लग गया। मैं विचारता हूँ कि ऐसा सुन्दर मनुष्य तो मैंने आजतक नहीं देखा अतः बार बार उसकी ओर देखता रहा। अन्तमें मैंने कहा—'साहब इतने निश्चल बैठे हैं जैसे ध्यान कर रहे हों पर

फिर देखा और बड़े आश्चर्यके साथ कहा 'अरे! यह तो प्रतिमा है।' वास्तवमें मैंने उतनी सुन्दर प्रतिमा अन्यत्र तो नहीं देखी। अस्तु, यहां पर दो दिन रहे, किला देखने गये, उसमें कई जिन मन्दिर हैं जिनकी कला कुशलता देखकर शिल्पि विद्याके निष्णात विद्वानोंका स्मरण हो आता है। आजकल पत्थरोंमें ऐसा बारीक काम करनेवाले शायद ही मिलेंगे। यहां पर कई चैत्यालयोंमें ताम्रकी मूर्तियां देखनेमें आईं।

यहांसे चलकर आरसीकेरी आये और वहांसे चलकर मन्दगिरि। यहां पर श्रीमान् स्वर्गीय गुरमुखराय सुखानन्दजीकी धर्मशाला है जो कि बहुत ही मनोज्ञ है। यहां हम लोगोंने नदीके ऊपर बालुका चबूतरा बनाकर श्री जिनेन्द्रदेवका पूजन किया। बहुत ही निर्मल परिणाम रहे। यहीं पर मेरा अत्यन्त

दृष्ट चाकू गिर गया। इसकी तारीफ सुनकर आपको भारतके कारीगिरों पर श्रद्धा होगी। ओरछाके एक लुहारसे वह चाकू लिया था। लेते समय कारीगिरने उसकी कीमत पांच रुपया मांगी। मैंने कहा—'भाई राजिस चाकूकी भी तो इतनी कीमत नहीं होती, झूठ मत बोलो।' वह बोला—'आप राजिस

चाकूको लड़ाकर इसके गुणकी परीक्षा करना।' मैंने पाँच रुपये दे दिये। दैवयोगसे मैं झांसीसे बरुआसागर आता था, रेलमें एक आदमी मिल गया, उसके पास राजिस चाकू था। वह बोला—'हिन्दुस्तान के कारीगिर ऐसा चाकू नहीं बना सकते।' मैंने कहा—'देखो भाई! यह एक चाकू हमारे पास है।' उसने मुख बनाकर कहा—'आपका चाकू किस कामका? यदि मैं राजिस चाकू इसके ऊपर पटक दूँ तो आपका चाकू टूट जावेगा।' मैंने कहा—'आप ऐसा करके देख लो, आज इसकी परीक्षा हो जावेगी पाँच रुपयेकी बात नहीं।' उसने कहा—'यह तो एक आनाका भी नहीं।' मैंने कहा—'जल्दी परीक्षा कीजिये।' उसने ज्यों ही अपना राजिस चाकू मेरे चाकू पर पटका त्यों ही वह मेरे चाकूकी धारसे कट गया। यह देख मुझे विश्वास हुआ कि भारतमें भी बड़े बड़े कारीगिर हैं परन्तु हम लोग उनकी प्रतिष्ठा नहीं करते। केवल विदेशी कारीगिरोंकी प्रशंसा कर अपनेको धन्य समझते हैं। अस्तु

यहाँसे नौ मील श्रीगोम्मटस्वामीका बिम्ब था। उसके मुखभागके दर्शन यहींसे होने लगे। भोजन करनेके बाद चार बजे श्री जैनबिद्री पहुँच गये। चूंकि ग्राममें कुछ प्लेगकी शिकायत थी अतः ग्रामके बाहर एक गृहस्थके घर पर ठहर गये, रात्रिभर आनन्दसे रहे और श्री गोम्मटस्वामीकी चर्चा करते रहे। प्रातःकाल स्नानादि कार्यसे निवृत्त हो कर श्री गोम्मटस्वामीकी वन्दनाको चले। ज्यों ज्यों प्रतिमाजीका दर्शन त [illegible] त्यों त्यों हृदयमें आनन्दकी लहरें उठती थीं। जब [illegible] पहुँच गये तब आनन्दका पारावार न रहा। बड़ी भक्तिसे [illegible] जो आनन्द आया वह वर्णनातीत है प्रतिमाकी [illegible] करनेके लिये हमारे पास सामग्री नहीं परन्तु

हृदयमें जो उत्साह हुआ वह हम ही जानते हैं, कहनेमें असमर्थ हैं। इसके बाद नीचे चतुर्विंशति तीर्थङ्करोंकी मूर्तिके दर्शन किये पश्चात् श्री भट्टारकके मन्दिरमें गये। वहांकी पूजन विधि देख आश्चर्यमें पड़ गये। यहां पर पूजनकी जो विधि है वह उत्तर भारतमें नहीं। यहां शुद्ध पाठका पढ़ना आदि योग्य रीतिसे होता है परन्तु एक बात हमारी दृष्टिमें अनुचित प्रतीत हुई वह यह कि यहां जो द्रव्य चढ़ाते हैं उसे पुजारी ले जाते हैं और अपने भोजनमें लाते हैं।

यहांका वर्णन श्रवणबेलगोलाके इतिहाससे आप जान सकते हैं। यहां पर मनुष्य बहुत ही सज्जन हैं। एक दिनकी बात है—मैं कूपके ऊपर स्नान करनेके लिये गया और वहां एक हजार रुपया के नोट छोड़ आया। जब भोजन कर चुका तब स्मरण आया कि नोटका बटुवा तो कूप पर छोड़ आये। एकबार व्याकुलता आई। बाईजी ने कहा—'इतनी आकुलता क्यों?' मैंने कहा—'नोट भूल आया।' बाईजी बोलीं—'चिन्ता न करो प्रथम तो नोट मिल जावेंगे, यह जगद्विख्यात बाहुबली स्वामी का क्षेत्र है तथा हम शुभ परिणामोंसे यात्रा करनेके लिये आये हैं। इसके सिवाय हमारा जो धन है वह अन्यायोपार्जित नहीं है यह हमारा दृढ़ विश्वास है। द्वितीय यदि न मिले तो एक तार सिंघई कुन्दनलाल जी को दे दो रुपया आजावेंगे, चिन्ता करना व्यर्थ है, जाओ कूप पर देख आओ।'

मैं कूप पर गया तो देखता हूँ कि बटुवा जहां पर रखा था वहीं पर रखा है। मैंने आश्चर्यसे कहा कि यहां पर जो स्त्री पुरुष थे उनमें से किसी ने यह बटुवा नहीं उठाया। वे बोले—'क्यों उठाते? क्या हमारा था?' उन्होंने अपनी भाषा कर्णाटकीमें उत्तर दिया पर वहीं जो दो भाषाका जाननेवाला था मैंने उससे उनका अभिप्राय समझा।

धर्मायतनोंकी रक्षा करना कठिन हो रहा है यहीं पर मठके सामने छोटीसी टेकरी पर एक विशाल मन्दिर है जिसमें वेदीके चारों तरफ सुन्दर सुन्दर मनोहारी बिम्ब हैं। इसके अनन्तर एक मन्दिर सरोवर में है उसके दर्शनके लिये गये। बादमें श्री नेमिनाथ स्वामी की श्याममूर्तिके दर्शन किये। मूर्ति पद्मासन थी, अन्दर और भी अनेक मन्दिरोंके दर्शन किये। यहीं पर एक विशाल मानस्तम्भ है जिसके दर्शन कर यही स्मरण होता है कि इसके दर्शनसे प्राणियोंके मान गल जाते थे यह असम्भव नहीं। सब मन्दिरों के दर्शन कर डेरे पर आ गये।

रात्रिके समय आरती देखने गये। एक पर्दा पड़ा था, पुजारी मन्त्र द्वारा आरती पढ़ रहा था। जब पर्दा खुला तब क्या देखता हूँ कि जगमग ज्योति हो रही है। चावलोंकी तीस या चालीस फूली फूली पुड़ी, केला नारियल आदि फलोंकी पुष्कलतासे वेदी सुशोभित हो रही है। देखकर बहुत ही आश्चर्य में पड़ गया, चित्त विशुद्ध भावोंसे पूरित होगया। वहां दो दिन रहे पश्चात् श्री मूडबिद्रीको प्रस्थान कर गये।

एक घण्टेके बाद मूडबिद्री पहुँच भी गये। यहां पर भी हमारे चिर परिचित श्री नेमिसागरजी मिल गये। यहांके मन्दिरों की शोभा अवर्णनीय है। एक मन्दिर जिसको त्रलोक्यतिलक कहते हैं अत्यन्त विशाल है, इसमें प्रतिमाओंका समूह है, सभी [illegible] रमणीक हैं। एक प्रतिमा स्फटिकमणिकी बहुत ही [illegible] है। सिद्धान्त मन्दिरके दर्शन किये, रत्नमयी बिम्बोंके दर्शन किये। दर्शन करानेवाले ऐसी सुन्दर रचनासे दर्शन कराते हैं कि समवसरणका बोध परोक्षमें हो जाता है। ऐसा सुन्दर दृश्य देखनेमें आता है कि मानों स्वर्गका चैत्यालय हो। यहीं पर ताड़पत्रों पर लिखे गये सिद्धान्त शास्त्रोंके

दर्शन किये। यह नगर किसी कालमें धनाढ्य महापुरुषोंकी वस्ती रहा होगा, अन्यथा इतने अमूल्य रत्नोंके बिम्ब कहांसे आवे। धन्य है उन महानुभावोंको जो ऐसी अमर कीर्ति कर गये। यहां पर श्री भट्टाचार्यजी थे जो बहुत ही वृद्ध और विद्वान् थे। आप दो घण्टा भी जिनेन्द्रदेवकी अर्चामें लगाते थे। अर्चा ही में नहीं, स्वाध्यायका भी आपको व्यसन था तथा कोषके रक्षक भी थे। आपकी भोजनशालामें कितने ही ब्रह्मचारी त्यागी आजावें सबके भोजनका प्रबन्ध था। हमारे लिये जिस वस्तुकी आवश्यकता पड़ी वह आपके द्वारा मिल गई। इसके सिवाय हमारे चिर परिचित नेमिसागर छात्रने सब प्रकार आतिथ्य सत्कार किया। नारियलका गिरीका तो इतना स्वाद हमने कहीं नहीं पाया। इस तरह तीन दिन हमारे इतने आनन्दसे गये कि जिस का वर्णन नहीं कर सकते।

वहांसे फिर बेलगांव हो कर पूना आगये और पूनासे बम्बई न जाकर मनमाड़ आ गये। वहांसे एलोराकी गुफा देखनेके लिये दौलताबाद चले आये। वहांके मन्दिरके दर्शन कर गुफा देखने गये। बीचमें एक रोजा गांव मिलता है वहीं पर डाक बंगलामें ठहर गये। बंगलासे एक मील दूर गुफा थी, वहां गये। गुफा क्या है महल है, प्रथम तो कैलाश गुफाको देखा। गुफासे यह न समझना कि दो या चार मनुष्य बैठ सकें। इसके बीचमें एक मन्दिर और चारों ओर चार बरामदा। तीन बरामदा इतने बड़े कि जिनमें प्रत्येकमें पांच सौ आदमी आ सकें। चतुर्थ बरामदेमें सम्पूर्ण देवताओंकी मूर्तियां थीं। बीचमें एक बड़ा आंगन था. आंगनमें एक शिवजीका मन्दिर था जो कि एक ही पत्थरमें खुदा हुआ है। मन्दिरके सामनेका भाग ड्योढ़ीदार तीनों ओर भीत पर हाथी खुदे हुए हैं ऊपर

जानेके लिये सीढ़ियां भी उसी मन्दिरमें हैं, छत है, शिखर है, कलशा भी है और खूबी यह कि यह सब एक पत्थरकी रचना है। इत्यादि कहां तक लिखें ? यहांसे श्री पार्श्वनाथ गुफा देखने गये। भीतर जाकर देखते हैं तो मन्दिरके इतने बड़े खम्भे दिखे कि जिनका घेर चार गजसे कम न होगा। मूर्तियोंकी रचना अपूर्व है। बहुत ही
देखने गये यह भी
तो जन बिम्बका ही
हैं जो एक से एक बढ़ कर हैं।

एक बात विचारणीय है कि यहां सब धर्मवालोंके मन्दिर पाये जाते हैं। उन लोगोंमें परस्पर कितना सौमनस होगा। आज तो साम्प्रदायिकताने भारतको गारत बना दिया। धर्म तो आत्माकी स्वाभाविक परिणति है। उपासनाके भेदसे जनतामें परस्पर बहुत ही वैमनस्य हो गया है जो कि दुःखका कारण बन रहा है। यह आत्मा अनादिसे अनात्मीय पदार्थोंमें आत्मबुद्धिकी कल्पना कर अनन्त संसारका पात्र बन रहा है। इसे न तो कोई नरकमें जाता है और न कोई स्वर्ग। यह अपने ही शुभाशुभ कर्मोंके द्वारा स्वर्गादि गतियोंमें भ्रमण करनेका पात्र होता है। मनुष्य जन्म पानेका तो यह कर्तव्य था कि अपने सदृश सबकी रक्षामें प्रयत्नशील होते। जैसे दुःख अपने लिये इष्ट नहीं वैसे ही अन्यको भी नहीं। फिर हमें अन्यको कष्ट देनेका क्या अधिकार ? अस्तु,

यह गुफा हैदराबाद राज्यमें है, राज्यके द्वारा यहांका प्रबन्ध

कि हम जो कुछ उचित या अनुचित करें वही उचित है और जो

अन्य लोग करते हैं वह सब मिथ्या है। इसने मतों की मूर्तिका मूल कारण इन्हीं मनुष्योंके परिणामोंका ही [illegible] है। धर्म तो आत्मा का वह [illegible] है [illegible] न तो आत्मा [illegible] [illegible] [illegible] हो और न [illegible] आत्माओं वह उपदेश दे वह भी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। परन्तु अब तो हिंसादि पञ्च पापोंके पोषक होकर भी आपको धार्मिक बननेका प्रयत्न करते हैं और अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा देते हैं जैसे बकरा काटकर भी कहते हैं कि भगवती माता प्रसन्न होती है। गोकुशी करके परवरदिगार जहाँपनाह को प्रसन्न करनेकी चेष्टा की जाती है। यह सब अनात्मीय पदार्थों में आत्मा मानने का फल है। यही कारण है कि यहां भी गुफाओंमें जो मूर्तियां हैं उनके बहुतसे अङ्ग भङ्ग किये गये हैं। विशेष क्या लिखें? यहां जैसी गुफा भारतवर्षमें अन्य नहीं।

यहांसे आकर दौलताबादका किला देखा। यह भी दर्शनीय वस्तु है मीलों लम्बी सुरङ्ग है। एक सुरङ्गमें मैं चला गया एक फर्लांग गया फिर भयसे लौट आया। आने जानेमें कोई कष्ट नहीं हुआ। चपरासी बोला—'यदि चले जाते तो चार फर्लांग बाद सुन्दर मार्ग मिल जाता।' किला देखकर हम लोग फिर रेल के द्वारा स्टेशन आ गये और वहांसे गाड़ीमें बैठकर गिरिनारकी यात्राके लिये चल दिये।

रात्रिका समय था। बाईजीने श्री नेमिनाथजी के भजन और बारहमासी आदिमें पूर्ण रात्रि सुख पूर्वक बिता दी। प्रातःकाल होते होते सूरतकी स्टेशन पर पहुंच गये और वहांसे धर्मशालामें जाकर ठहर गये। दर्शन पूजनकर फिर रेलमें सवार हो श्री गिरनारजी के लिये प्रस्थान किया। वहां पहुंचने पर शहरकी धर्मशालामें ठहर गये। श्री नेमिनाथ स्वामीके दर्शन कर मार्ग

प्रयासको भूल गये । बादमें तलहटी पहुंचे और वहांसे श्री गिरिनार पर्वत पर गये ।

पर्वत पर श्री नेमिनाथ स्वामीका दर्शन कर गद्गद् हो गये। पर्वतके ऊपर नाना प्रकारके पुष्पोंकी बहार थी । कुन्द जातिके पुष्प बहुत ही सुन्दर थे । दिगम्बर मन्दिरके दर्शनकर श्वेताम्बर मन्दिरमें गये । यात्रियोंके लिये इस मन्दिरमें सब प्रकारकी सुविधा है । भोजनादिका उत्तम प्रबन्ध है । यदि कोई वास्तविक विरक्त हो और यहां रहकर धर्म साधनकी इच्छा रखता हो तो इस मन्दिरमें बाह्य साधनोंकी सुलभता है । दिगम्बरोंका मन्दिर रमणीक है और श्री नेमिनाथ स्वामीकी मूर्ति भी अत्यन्त मनोज्ञ है परन्तु यदि कोई रहकर धर्मसाधन करना चाहे तो कुछ भी प्रबन्ध नहीं क्योंकि यहां तो पर्वतके ऊपर रहना महान् अविनय का कारण समझते हैं । जहां अविनय है वहां धर्मकी संभावना कैसी ? क्या कहें ? लोगोंने धर्मका रहस्य बाह्य कारणों पर मान रक्खा है और इसी पर बल देते हैं । पर वास्तविक बात यह है कि जहां बाह्य पदार्थोंकी मुख्यताका आश्रय किया जाता है वहां अभ्यन्तर धर्मकी उद्भूति नहीं होती । विनय अविनयकी भी मर्यादा होती है । निमित्त कारणोंकी विनय उतनी ही योग्य है जो आभ्यन्तरमें सहायक हो जैसे सम्यग्दर्शनका प्रतिपादक जो द्रव्यागम है उसको हम मस्तकसे अञ्जलि लगाकर विनय करते हैं क्योंकि उसके द्वारा हमको अर्थागम और ज्ञानागमकी प्राप्ति होती है केवल पुस्तककी विनय करनेसे अर्थागम और ज्ञानागम का लाभ न होगा । पर्वत परम पूज्य है—हमें उसकी विनय करना चाहिये यह सबको इष्ट है परन्तु क्या इसका यह अर्थ है कि पर्वत पर जाना ही नहीं चाहिये ? क्योंकि यात्राका साधन पदयात्रा है फिर जहां पदतलोंसे सम्बन्ध होगा वहां यदि अविनय मान लो जावे तो यात्रा ही निषिद्ध हो जावेगी, सो तो

नहीं हो सकता। इसी प्रकार पर्वतों पर रहनेसे जो शारीरिक क्रियाएं आहार विहारकी हैं वे तो करनी ही पड़ेंगी। वहां रहकर मानसिक परिणामोंकी निर्मलताका सम्पादन करना चाहिये।

इस प्रकार ऊहापोह करते हुए हम लोग एक मील न चले होंगे कि साधु लोगोंका अखाड़ा मिला। कई गाय भी वहां पर थीं अनेक बाह्यसाधन शरीरके पुष्टिकर थे। साधु लोग भी शरीर से पुष्ट थे और श्री रामचन्द्रजी के उपासक थे। कल्याण इच्छुक अवश्य हैं परन्तु परिग्रह ने उसमें बाधा डाल रक्खी है। यदि यह परिग्रह न हो तो कल्याणका मार्ग पास ही है परन्तु परिग्रह पिशाच तो हृदय पर अपना ऐसा प्रभाव जमाये है जिससे घरका त्याग किसी उपयोगमें नहीं आता। घरका त्यागना कोई कठिन वस्तु नहीं परंतु आभ्यन्तर मूर्छा त्यागना सरल भी नहीं। त्याग तो आभ्यन्तर ही है, आभ्यन्तर कषायके बिना बाह्य वेषका कोई महत्त्व नहीं। सर्प बाह्य कांचली छोड़ देता है परन्तु विष नहीं त्यागता अतः उसका बाह्य त्याग कोई महत्त्व नहीं रखता। इसी प्रकार कोई बाह्य वस्त्रादि तो त्याग दे और अन्तरङ्ग रागादि नहीं त्यागे तो उस त्यागका क्या महत्त्व? धान्यके ऊपरी छिलकाका त्याग किये बिना चावलका मल नहीं जाता अतः बाह्य त्यागकी भी आवश्यकता है परन्तु इतने ही से कोई चाहे कि हमारा कल्याण हो जावेगा सो नहीं। धान्यके छिलकाका त्याग होने पर भी चावलमें लगे हुए कणको दूर करनेके लिये कूटनेकी आवश्यकता है। फिर भला जिनके बाह्य त्याग नहीं उनके तो अन्तरङ्ग त्यागका हेतु भी नहीं। मैं किसी अन्यमतके साधुकी अपेक्षा कथन नहीं करता परन्तु मेरी निजी सम्मति तो यह है कि बाह्यत्याग बिना अन्तरङ्गत्याग नहीं होता और यह भी नियम नहीं कि बाह्य-त्याग होने पर आभ्यन्तरत्याग हो ही जावे। हां, इतना अवश्य

है कि बाह्यत्याग होनेसे ही अन्तरङ्गत्याग हो सकता है। दृष्टान्त जितने मिलते हैं सर्वांशमें नहीं मिलते अतः वस्तुस्वरूप विचारना चाहिये दृष्टान्त तो साधक है। अब हमको प्रकृतमें आना चाहिये। जहां हमारे परिणामोंमें रागादिकसे उदासीनता आवेगी वहां स्वयमेव बाह्य पदार्थोंसे उदासीनता आ जावेगी। पर पदार्थके ग्रहण करनेमें मूल कारण रागादिक ही हैं। बाह्य पदार्थ ही न होते तो अनाश्रय रागादिक न होते ऐसा कुतर्क करना न्यायमार्गसे विरुद्ध है। जिस प्रकार जीव द्रव्य अनादि कालसे स्वतःसिद्ध है उसी प्रकार अजीव द्रव्य भी अनादिसे ही स्वतःसिद्ध है। कोई किसीको न तो बनाने वाला है और न कोई किसीका विनाश करनेवाला है। स्वयमेव यह प्रक्रिया चली आ रही है—पदार्थोंमें परिणमन स्वयमेव हो रहा है। कुम्भकारका निमित्त पाकर घट बन जाता अवश्य है पर न तो कुम्भकार मिट्टी में कुछ अतिशय कर देता है और न मिट्टी कुम्भकारमें कुछ अतिशय पैदाकर देती है। कुम्भकारका व्यापार कुम्भकारमें होता है और मिट्टीका व्यापार मिट्टीमें। फिर भी लौकिक व्यवहार ऐसा होता है कि कुम्भकार घटका कर्ता है। यह भी निर्मूल कथन नहीं इसे सर्वथा न मानना भी युक्ति संगत नहीं। यहां मनमें यह कल्पना आई कि साधुता तो संसार दुःख हरनेके लिये रामबाण औषधि है परन्तु नाम साधुतासे कुछ तत्त्व नहीं निकलता 'आंखोंके अन्धे नाम नैनसुख'।

यहांसे चलकर श्री नेमिनाथ स्वामीके निर्वाणस्थानको जो कि पञ्चम टोंक पर है चल दिये। आध घण्टा बाद पहुँच गये वह स्थान पर एक छोटी सी मढ़िया बनी हुई है। कोई तो इसे आदमबाबा मानकर पूजते हैं कोई दत्तात्रेय मानकर उपासना करते हैं और जैनी लोग श्री नेमिप्रभुजी मानकर उपासना करते

है। अन्तिम जानेवालोंमें हम लोग थे। हमने तथा कमलापति सेठ, स्वर्गीय पाईजी और स्वर्गीय मुलाबाई आदिने आनन्दसे श्री नेमिनाथ स्वामीकी भावपूर्वक पूजा की इसके बाद आध घण्टा यहां ठहरे, स्थान रम्य था परन्तु दस बज गये थे अतः अधिक नहीं ठहर सके। यहांसे चलकर एक घण्टा बाद सेसा वन (सहस्राम्रवन) में आ गये। यहां की शोभा अवर्णनीय है। सघन आम्र वन है, उपयोग स्थिरताके लिये एकान्त स्थान है परन्तु क्षुधाबाधाके कारण एक घण्टा बाद पर्वतके नीचे जो धर्मशाला है उसमें आ गये और भोजनादिसे निश्चिन्त हो सो गये। तीन बजे उठे, थोड़ा काल स्वाध्याय किया। यहां पर ब्रह्मचारी [illegible]पुरवालोंसे परिचय हुआ। आप बहुत ही विलक्षण आदमी हैं यहां रहकर आप धर्म साधन करते हैं परन्तु जैसे आपने स्थान चुना वैसे परिणाम न चुना अन्यथा फिर यहांसे अन्यत्र जाने की इच्छा न होती। मनुष्य चाहता तो बहुत है परन्तु कर्तव्य पथमें उसका अंश भी नहीं लाता। यही कारण है कि आजन्म [illegible] वैसी दशा रहती है। चक्कर भी इतना जोर का हो जाता है परन्तु ऐसकी सीमा [illegible] बाहर नहीं हो रहती होती। इसी प्रकार इस संसारी जीवका स्वभाव है—इसी चतु- र्गतिके भीतर ही घूमता रहता है। जिन प्रभावसे इस चतुर्गतिमें भ्रमण न हो उस ओर लक्ष्य नहीं। जो उपाय हम कर रहे हैं पुनःपुनः जीवने किये नहीं। इससे परे जो वस्तु है वह हमारे ध्यानमें नहीं आती अतः निरन्तर इसीमें चक्कर खाते रहते हैं। [illegible] ब्रह्मचारी [illegible]

[illegible]

यहाँ दो दिन रहकर पश्चात् यहाँसे आबूके लिये प्रयाण किया। यहाँ बहुत स्थान परोपकारके हैं परन्तु उन्हें देखने का न तो प्रयास किया और न रुचि ही हुई। यहाँसे चलकर आबूरोड पर आये और यहाँसे मोटरमें बैठकर पहाड़के ऊपर गये। पहाड़के ऊपर जानेका मार्ग सर्पकी चालके समान लहराता हुआ घुमावदार है। ऊपर जाकर दिगम्बर मन्दिरमें ठहर गये। बहुत ही भव्य मूर्ति है यहाँ पर श्वेताम्बरोंके मन्दिर बहुत ही मनोज्ञ हैं उन्हें देखनेसे ही उनकी कारीगिरीका परिचय हो सकता है। कहते हैं कि उस समय उन मन्दिरोंके निर्माणमें सोलह करोड़ रुपये लगे थे परन्तु वर्तमानमें तो अरबमें भी वैसी सुन्दरता आना कठिन है! इन मन्दिरोंके मध्य एक छोटा सा मन्दिर दिगम्बरों का भी है। यहाँसे ६ मील दूरी पर एक देलवाड़ा है जहाँ एक पहाड़ी पर श्वेताम्बरोंके विशाल मन्दिरमें ऐसी भी प्रतिमा है जिसमें बहुभाग सुवर्णका है। एक सरोवर भी है जिसके तटपर सङ्गमर्मरकी ऐसी गाय बनी हुई है जो दूरसे गायके सदृश ही प्रतीत होती है। यहाँ पर दो दिन रहकर पश्चात् अजमेर आ गये। यहाँ श्री सोनी भागचन्द्रजी रहते हैं जो कि वर्तमानमें जैनधर्मके संरक्षक हैं, महोपकारी हैं। आपके मन्दिर नशियाजी आदि अपूर्व-अपूर्व स्थान हैं उनके दर्शन कर चित्तमें अति शान्ति आई। यहाँ दो दिन रहकर जयपुर आ गये और नगरके बाहर नशियाजीमें ठहर गये। यहाँ पर सब मन्दिरोंके दर्शन किये। मन्दिरोंकी विशालताका वर्णन करना बुद्धि बाह्य है। यहाँ पर जैन विद्यालय है जिसमें मुख्य रूपसे संस्कृतका पाठन होता है। [illegible] भण्डार भी विशाल है। धर्म साधनकी सब सुविधाएं [illegible] यहाँ पर हैं। यहाँ तीन दिन रहकर आगरा आये और यहाँसे सीधे सागर चले आये। सागरकी जनताने बहुत ही शिष्टताका व्यवहार किया। कोई सौ नारियल भेंटमें आये।

यह सब होकर भी चित्तमें शान्ति न आई।

७७

गिरिनार यात्रा

सन् १९२१ की बात है अहमदाबादमें कांग्रेस थी, पं० मुन्नालालजी और राजधरलालजी वरया आदिने कहा कि कांग्रेस देखनेके लिये चलिये।' मैंने कहा—'मैं क्या करूंगा?' उन्होंने कहा—'बड़े बड़े नेता आवेंगे अतः उनके दर्शन सहज ही हो जावेंगे, देखो उन महानुभावोंकी ओर कि जिन्होंने देशके हितके लिये अपने भौतिक सुखको त्याग दिया जो गवर्नमेण्ट द्वारा नाना यातनाओंको सह रहे हैं, जिन्होंने लौकिक सुखको लात मार दी है और जो निरन्तर ४० करोड़ जनताका कल्याण चाहते रहते हैं। आज भारत वर्षकी जो दुर्दशा है वह किसीसे छिपी नहीं है जिस देशमें घी दूधकी नदियां बहती थीं वहां आज करोड़ों पशुओंकी हत्या होनेसे रुधिरकी नदियां बह रही हैं। शुद्ध घी दूधका अभावसा हो गया है जहां आर्ष वाक्योंकी ध्वनिसे पृथिवी गूंजती थी वहां पर विदेशी भाषाका ही दौर-दौरा है। जहां पर पण्डित लोग किसी पदार्थकी प्रमाणता सिद्ध करनेके लिये अमुक ऋषिने अमुक शास्त्रमें ऐसा लिखा है... इत्यादि व्यवस्था देते थे वहाँ अब साहब लोगोंके वाक्य ही प्रमाण मान जाते हैं अतः नेता लोग निरन्तर यह यत्न करते रहते हैं कि हमारा देश पराधीनताके बन्धनसे मुक्त हो जावे। कांग्रेसमें जानेसे उन महानुभावोंके व्याख्यान सुननेको मिलेंगे और सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि श्रीगिरिनार सिद्धक्षेत्रकी [illegible] अनायास हो जावेगी।'

मैं श्रीगिरिनारजी की यात्राके लोभसे कांग्रेस देखनेके लिये चला गया और अहमदाबादमें श्रीछोटेलालजी सुपरिन्टेन्डेन्टके यहाँ ठहर गया। यहाँ पर श्रीब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी और श्रीशान्तिसागरजी छाणीवाले ब्रह्मचारी वेठामें पहलेसे ही ठहरे थे। हम तीनोंका निमन्त्रण एक सेठके यहां हुआ। चूंकि मुझे ज्वर आता था अतः घर पर पथ्यसे भोजन करता था परन्तु उस दिन पूड़ी शाक मिली। खीर भी बनी थी जो उन्होंने मुझे परोसना चाही पर मैंने एक बार मना कर दिया परन्तु जब दूसरी बार खीर परोसनेके लिये आये तब मैंने लालच वश ले ली। फल उसका यह हुआ कि वेगसे ज्वर आगया, बहुत ही वेदना हुई जिससे उस दिनका कांग्रेसका अधिवेशन नहीं देख सका।

दूसरे दिन ज्वर निकल गया अतः कांग्रेसका अधिवेशन देखनेके लिये गया। वहांका प्रबन्ध सराहनीय था, क्या होता था कुछ समझमें नहीं आया किन्तु वहां पेपरोंमें सब समाचार आनुपूर्वी मिल जाते थे। कहनेका तात्पर्य यह है कि जिनका देश है वे तो पराधीन होनेसे भिक्षा मांग रहे हैं और जिनका कोई स्वत्व नहीं वे पुरुषार्थ बलसे राज्य कर रहे हैं। ठीक ही तो कहा है—

'वीरभोग्या वसुन्धरा'

जिन लोगोंका इस भारतवर्षपर जन्मसिद्ध अधिकार है वे तो असंघटित होनेसे दास बन रहे हैं और जिनका कोई स्वत्व नहीं वे यहांके प्रभु बन रहे हैं। जब तक इस देशमें परस्पर मनोमालिन्य और अविश्वास रहेगा तब तक इस देशकी दशा सुधरना कठिन है। यदि इस देशमें आज परस्पर प्रेम हो जावे तो विना रक्तपातके भारत स्वतन्त्र हो सकता है परन्तु राही होना असम्भव है। '८ कनवजिया ९ चूल्हे' की कहावत यहीं चरितार्थ होती है। परस्पर मनोमालिन्य का मूल कारण अनेक

मनोंको तृप्ति है। एक दूसरेके शत्रु बन रहे हैं। जो वास्तविक धन है यह जो संसार बन्धनका घातक है उस ओर हमारी दृष्टि नहीं। धर्म तो अहिंसामय है वेद भी यही बात कहता है 'मा हिंस्यात् सर्वभूतानि' तथा 'अहिंसा परमो धर्मः' यह भी अनादि मन्त्र है। जैन लोग इसे अब तक मानते हैं। यद्यपि उनकी भारतमें बहुत अल्प संख्या है फिर भी उसे व्यवहारमें लानेके लिये सतत प्रयत्नशील रहते हैं। श्री महात्मा गांधीने भी इसे अपनाया है और उनका प्रभाव भी जनतामें व्याप्त हो रहा है...यह प्रसन्नताकी बात है। अस्तु,

हम लोग कार्यक्रम देखकर श्री गिरिनारजी की यात्राके लिये अहमदाबादसे प्रस्थान कर स्टेशन पर गये और जूनागढ़का टिकिट लेकर ज्यों ही रेलमें बैठे त्यों ही मुझे ज्वरने आ मारा बहुत बेचैनी हो गई। यद्यपि साथमें पं० मुन्नालालजी और राजधरलालजी बरया थे परन्तु मैंने किसी से कुछ संकेत नहीं किया चुपचाप पड़ गया। पास ही एक वकील बैठे थे जो राजकोटके रहनेवाले थे और श्वेताम्बर सम्प्रदायके थे। उनसे राजधर बरयाका सम्भाषण होने लगा। बहुत कुछ बात हुई अन्तमें राजधर बरयाने वकील साहबसे कहा कि मैं तो विशेष पढ़ा नहीं कर सकता यदि आपको विशेष [illegible] करना है तो यह बतलाये देता कि सामने लेटे हुए हैं [illegible] आप उनसे कुछ समाधान करिये। बरयाने मुझे जगाया और कहा कि यह वकील साहब बहुत ही शिष्ट पुरुष हैं आपसे [illegible] चर्चा करना चाहते हैं।

मैं उठकर बैठ गया और कुछ समय तक हमारी वकील साहबसे तत्त्व चर्चा होती रही। [illegible]

मैं श्रीगिरिनारजी की यात्राके लोभसे कांग्रेस देखनेके लिये चला गया और अहमदावादमें श्रीछोटेलालजी सुपरिन्टेन्टेन्टके यहां ठहर गया। यहां पर श्रीब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी और श्रीशान्तिसागरजी छाणीवाले ब्रह्मचारी वेठामें पहलेसे ही ठहरे थे। हम तीनोंका निमन्त्रण एक सेठके यहां हुआ। चूंकि मुझे ज्वर आता था अतः घर पर पथ्यसे भोजन करता था परन्तु उस दिन पूड़ी शाक मिली। खीर भी बनी थी जो उन्होंने मुझे परोसना चाही पर मैंने एक बार मना कर दिया परन्तु जब दूसरी बार खीर परोसनेके लिये आये तब मैंने लालच वश ले ली। फल उसका यह हुआ कि वेगसे ज्वर आगया, बहुत ही वेदना हुई जिससे उस दिनका कांग्रेसका अधिवेशन नहीं देख सका।

दूसरे दिन ज्वर निकल गया अतः कांग्रेसका अधिवेशन देखनेके लिये गया। वहांका प्रबन्ध सराहनीय था, क्या होता था कुछ समझमें नहीं आया किन्तु वहां पेपरोंमें सब समाचार आनुपूर्वी मिल जाते थे। कहनेका तात्पर्य यह है कि जिनका देश है वे तो पराधीन होनेसे भिक्षा मांग रहे हैं और जिनका कोई स्वत्व नहीं वे पुरुषार्थ बलसे राज्य कर रहे हैं। ठीक ही तो कहा है—

'वीरभोग्या वसुन्धरा'

जिन लोगोंका इस भारतवर्षपर जन्मसिद्ध अधिकार है वे तो असंघटित होनेसे दास बन रहे हैं और जिनका कोई स्वत्व नहीं वे यहांके प्रभु बन रहे हैं। जब तक इस देशमें परस्पर मनोमालिन्य और अविश्वास रहेगा तब तक इस देशकी दशा सुधरना कठिन है। यदि इस देशमें आज परस्पर प्रेम हो जावे तो बिना रक्तपातके भारत स्वतन्त्र हो सकता है परन्तु यही होना असम्भव है। '८ कनवजिया ९ चूल्हे' की कहावत यहीं चरितार्थ होती है। परस्पर मनोमालिन्य का मूल कारण अनेक

आपकी प्रकृति सौम्य थी अतः आपने कहा कि अच्छा, इसपर विचार करेंगे अभी मैं इस सिद्धान्तको सर्वथा नहीं मानता। हां सिद्धान्त उत्तम है यह मैं मानता हूं।

मैंने कहा—'कल्याणका मार्ग तो पक्षसे बहिर्भूत है।' आपने कहा—'ठीक है परन्तु जिसकी वासनामें जो सिद्धान्त प्रवेश कर जाता है उसका निकलना सहज नहीं। काल पाकर ही वह निकलता है। सब जानते हैं कि शरीर पुद्गल द्रव्यका पिण्ड है इसके भीतर आत्माके अंशका भी सद्भाव नहीं है। यद्यपि आत्मा और शरीर एक क्षेत्रावगाही हैं फिर भी आत्माका अंश न पुद्गलात्मक शरीरमें है और न पुद्गलात्मक शरीरका आत्मामें ही है। इतना सब होने पर भी जीवका इस शरीरके साथ अनादिसे ऐसा मोह हो रहा है कि वह अहर्निश इसीकी सेवामें प्रयत्नशील रहता है। वह इसके लिये जो जो अनर्थ करता है वह किसीसे गोप्य नहीं है।'

मैं बोला—'ठीक है परन्तु अन्तमें जिसका मोह इससे छूट जाता है वही तो सुमार्गका पात्र होता है। पर द्रव्यके सम्बन्धसे जहां तक मूर्च्छा है वहां तक कल्याणका पथ नहीं। हम अपनी दुर्बलतासे वस्त्रको न त्याग सकें यह दूसरी बात है परन्तु उसे राग बुद्धिसे रखकर भी अपने आपको अपरिग्रही मानें यह खटकनेकी बात है।'

अन्तमें आपने कहा—'यह विषय विचारणीय है।'

मैं बोला—'आपकी इच्छा'

इसके बाद मैंने कहा कि मुझे निद्रा आती है अतः कृपा कर आप अपने स्थान पर पधारिये आपके सद्भावमें मैं लेट नहीं सकता। आप एक वकील हैं पर कहनेमें आपको जरा भी कष्ट न होगा, झट कह उठोगे कि देखो यह लोग धार्मिक कहलाते हैं और हमारे बैठे हुए सो गये यहां असभ्यता इन लोगोंमें है।'

वकील साहब बोले—'आप सो जाइये, मैं किस प्रकारके मनुष्य हूं ? आपको थोड़ी देरमें पता लग जावेगा। सभ्यता असभ्यता विद्यासे नहीं जानी जाती, मेरा तो यह सिद्धान्त और अनुभव है कि चाहे संस्कृतका विद्वान् हो, चाहे भाषाका हो और चाहे अंग्रेजीका डाक्टर हो जो सदाचारी है वह सभ्य है और जो असदाचारी है वह असभ्य है। अन्य कथा जाने दीजिये जो अपढ़ होकर भी सदाचारी हैं वे सभ्यगणनामें गिननेके योग्य हैं और जो सर्व विद्याओंके पारगामी होकर भी सदाचारसे रिक्त हैं वे असभ्य हैं।'

वकील साहबकी विवेकपूर्ण बात सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ और मेरे मनमें विचार आया कि आत्माकी अनन्त शक्ति है न जाने किस आत्मामें उसके गुणोंका विकास हो जावे। यह कोई नियम नहीं कि अमुक जातिमें ही सदाचारी हो अमुकमें नहीं।

मैंने कहा—'महाशय! मैं आपके इस सुन्दर विचारसे सहमत हूं अब मैं लेटता हूं, अपराध क्षमा करना' इतना कहकर मैं लेट गया। चूंकि ज्वर था ही अतः पैरोंमें तीव्र वेदना थी। मनमें ऐसी कल्पना होती थी कि यदि नाई मिलता तो अभी मालिश करवा लेता एक कल्पना यह भी होती थी कि वरयाजीसे

[illegible]

[illegible]

[illegible]

कहा—'वकील साहब आप यह क्या कर रहे हैं ?' उन्होंने —'कोई हानिकी बात नहीं, मनुष्य मनुष्य हीके तो काम आता है आप निश्चिन्ततासे सो जाओ।' मैं अन्तरङ्गसे मुग्ध हुआ क्योंकि यही तो चाहता था, कमने यह सुयोग स्वयं मिला दिया। लिखनेका तात्पर्य यह है कि यदि उदय [illegible] हो तो

जहां जिस वस्तुकी संभावना न हो वहां भी वह वस्तु मिल जाती है और उदय निर्बल हो तो हाथमें आई हुई वस्तु भी पलायमान हो जाती है। इस प्रकार दस बजेसे लेकर तीन बजे तक वकील साहब मेरी वैयावृत्य करते रहे जब प्रातःकालके तीन बजे तब वकील साहबने कहा कि अब गिरिनारजीके लिये आपकी गाड़ी बदलेगी, जग जाइय।

हम जग गये और वकील साहबको धन्यवाद देने लगे। उन्होंने कहा कि इसमें धन्यवाद की आवश्यकता नहीं, यह तो हमारा कर्तव्य ही था यदि आज हमारा भारत वर्ष अपने कर्तव्य का पालन करने लग जावे तो इसकी दुरवस्था अनायास ही दूर हो जावे परन्तु यही होना कठिन है। अन्तमें वकील साहब चले गये और हम लोग प्रातःकाल जूनागढ़ पहुँच गये। स्टेशनसे धर्मशालामें गये प्रातःकाल की सामायिकादिसे निश्चिन्त होकर मन्दिर गये और श्री नेमिनाथ स्वामीके दर्शन कर तृप्त हो गये।

प्रभुका जीवन चरित्र स्मरण कर हृदयमें एकदम स्फूर्ति आ गई और मनमें आया कि हे प्रभो! ऐसा दिन कब आवेगा जब हम लोग आपके पथका अनुकरण कर सकेंगे। आपको धन्य है कि आपने अपने हृदयमें सांसारिक विषय सुखकी आकांक्षाके लिये स्थान नहीं दिया प्रत्युत अनित्यादि भावनाओं का चिन्तवन किया उसी समय लौकान्तिक देवोंने अपना नियोग साधन कर आपकी स्तुति की और आपने दैगम्बरी दीक्षा धारण कर अनन्त प्राणियोंका उपकार किया.....इत्यादि चिन्तवन करते हुए हम लोगोंने दो घण्टा मन्दिरमें विताये। अनन्तर धर्मशालामें आकर भोजनादिसे निवृत्त हुए फिर मध्यान्हकी सामायिक कर गिरिनार पर्वतकी तलहटीमें चले गये। प्रातःकाल तीन बजेसे वन्दनाके लिये चल और छः बजते बजते पर्वत पर पहुंच गये। वहां पर श्री नेमि प्रभुके मन्दिरमें सामायिकादि

को देखकर आप लोगोंका दयाका स्रोत उमड़ पड़ता है पर इतना विवेक नहीं रहता कि इनके रहनेके स्थान भी देखें। वहां ये क्या क्या पाप करते हैं यह आप लोग नहीं जानते। मैं जहां रहता हूं वहां पर बहुतसे दरिद्र भिखमंगोंका निवास है उनमें कोई भी अभागा मंगता होगा जिसके कि पास द्रव्य न हो प्रत्येकके पास कुछ न कुछ रुपया होगा। खानेकी सामग्री तो एक मास तककी होगी। आप लोग हमारी दशा देखकर वस्त्रादि देते हैं पर जो नवीन वस्त्र मिलता है उसे हम बेंच देते हैं चाहे एक रुपयाके स्थानमें चार आना ही क्यों न मिले ? हमारा क्या गया जो मिला सो ही भला। यही कारण है कि भारतमें भिखमंगे बढ़ते जाते हैं। आप लोग यदि विवेकसे काम लेते तो जो परिवार वास्तवमें दरिद्र हैं, जिनके बालक मारे मारे फिरते हैं उनका पोषण करते, उन्हें शिक्षित बनाते व्यापार नौकरीमें लगाते परन्तु यह तो दूर रहा आप अयोग्य आदमियोंको दान देकर भिखमंगोंकी संख्या बढ़ा रहे हैं। जब बिना कुछ किये ही हम लोगोंको आपकी उदारतासे बहुत कुछ मिल जाता है तब हमें काम करनेकी क्या आवश्यकता है। भारतवर्षमें अकर्मण्यता इन्हीं अविवेकी दानवीरोंकी बदौलत ही तो अपना स्थान बनाये हुए है। आप लोगोंके पास जो द्रव्य है उसका उपयोग या तो आप हमारे लिये दान देकर करते हैं या अधिक ज्यादा हुए तो मन्दिर बनवा दिया या संघ निकाल दिया या अन्य कुछ कर दिया। यदि वैष्णव सम्प्रदायमें धन हुआ तो शिवालय बनवा दिया, राममन्दिर बनवा दिया या साधुमण्डलीको भोज दे दिया। आप लोगोंने यह कभी विचार नहीं किया कि जातिमें कितने परिवार आजीविका विहीन हैं, कितने बालक आजीविकाके बिना यहाँ वहाँ घूम रहे हैं और कितनी विधवाएँ आजीविकाके बिना आह आह कर के आयु पूर्ण कर रही हैं।

वेश्या धूमधाम कर फिर आई और महाराजको निश्चल देखकर दस मिनट खड़ी रही अनन्तर मन ही मन विचारने लगी कि यदि महाराज मेरे यहां भोजन कर लें तो मैं जन्म भर के पापसे मुक्त हो जाऊंगी परन्तु कोई पटरी नहीं बैठी। ऐसा तर्क वितर्क करती हुई सामने खड़ी रही और महाराज उसी प्रकार निश्चल बने रहे। अन्तमें वेश्याने कहा—'महाराज! धन्य है आपकी तपस्याको और धन्य है आपकी ईश्वर भक्तिको। अब भी इस कलिकालमें आप जैसे नर रत्नोंसे इस वसुन्धराकी महिमा है मैं बारम्बार आपको नमस्कार करती हूँ। मैं वह हूँ जिसने सैकड़ों घरोंके लड़कोंको कुमार्गमें लगा दिया और सैकड़ोंको दरिद्र बना दिया। अब आपके सामने उन पापों की निन्दा करती हूं। यदि आपकी समाधि खुलती और आप मेरा निमन्त्रण अंगीकार करते तो मेरा भी कल्याण हो जाता। इतना कहकर वेश्या चली गई। महाराजके मनमें पानी आ गया—उन्होंने मन ही मन कहा—अच्छा बनाव बना।

आध घण्टा बाद वेश्या फिर आ गई और पहले ही के समान नमस्कारादि करने लगी। उसकी भक्ति देखकर महाराज अपनी समाधिको अब अधिक देर तक कायम न रख सके। समाधि तोड़कर आशीर्वाद देते हैं—'तुम्हारा कल्याण हो' साथ ही हाथ ऊपर उठाकर कहने लगे कि 'हम अपने दिव्य ज्ञानसे तुम्हारे हृदयकी बात जान गये तू अमुक गांवकी रहनेवाली वेश्या है तूने युवावस्थामें बहुत पाप किये पर अब वृद्धावस्थामें धर्मके विचार हो गये हैं तू यहां किसी साधुको खीर खाण्डका भोजन कराने आई है, तेरा विश्वास है कि साधुको भोजन देने से मेरे पाप छूट जावेंगे और मेरी परलोकमें सद्गति होगी। यहां पर कुम्भका मेला है हजारों साधु ब्राह्मण आये हैं तू यद्यपि उन्हें दान दे सकती है पर तेरी यह दृष्टि हो गई है कि

ऐसा ना साधु यहाँ नहीं है तो ठीक है परन्तु मैं तो कोई साधु नहीं केवल इस वेशमें बैठा हूँ जिससे तुझे साधु सा मालूम होता हूँ। देख, सामने सैकड़ों दोना मिठाई और सैकड़ों फूलों की मालाएं पड़ी हुई हैं पर मैं कितना खा सकता हूँ? लोक अविवेकी हैं बिना विचारे ही यह मिठाई चढ़ा गये। यदि विवेक होता तो किसी गरीबको देते, इन लोगोंने यह भी विचार नहीं किया कि यह साधु इन सैकड़ों फूलोंकी मालाओंका क्या करेगा? परन्तु लोग तो गड्डरिकाप्रवाहका अनुकरण करते हैं। स्वामीजीने ठीक ही कहा है—

'गतानुगतिको लोको न लोकः पारमार्थिकः।
वालुकापुञ्जमात्रेण गतं मे ताम्रभाजनम्॥'

इसका यह तात्पर्य है कि एक बार एक ऋषि गंगा स्नान करनेके लिये गया चूंकि भीड़ बहुत थी अतः विचार किया कि यदि तटपर कमण्डलु रखकर गोता लगाता हूँ और तबतक कोई कमण्डलु ले जाय तो क्या करूँगा? ऋषिको तत्काल एक उपाय सूझा और उसके फल स्वरूप अपना कमण्डलु बालुका पुंजसे ढककर गोता लगानेके लिये चले गये। दूसरे लोगोंने देखा कि महाराज बालूका ढेर लगाकर गंगा स्नानके लिये गये हैं अतः हमको यही करना चाहिये। फिर क्या था? हजारों आदमियों ने बालूके ढेर लगा कर गंगा स्नान किये। जब साधु महाराज गोताओं से निकले तो क्या देखते हैं कि हजारों बालूके ढेर लगे हुए हैं कहाँ कमण्डलु खोजें? उस समय वह बड़े निर्वेदसे बोले कि 'गतानुगतिको लोकः' -

अब तू हठ छोड़ दे कि यही यही एक उत्तम साधु हैं सैकड़ों एकसे एक बढ़कर साधु आये हुए हैं तू उन्हें दान देकर अपनी इच्छा पूरी कर [illegible] पापसे मुक्त हो। हमारा आशीर्वाद [illegible] है मैं [illegible] नहीं कर सकता हूँ

साधु महाराजकी उपेक्षा पूर्ण बात सुनकर वेश्याकी और भी अधिक भक्ति हो गई। वह बोली—'महाराज! मैं तो आपको ही महात्मा समझती हूं आशा है मेरी कामना विफल न होगी। जब जैसाको वैसा मिलता है तभी काम बनता है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

> 'उत्तमसे उत्तम मिले मिले नीच से नीच।
> पानी से पानी मिले मिले कीच से कीच॥'

साधुने कहा—'ठीक, परन्तु तेरे भोजनसे मेरी तपस्या भंग हो जावेगी। और मैं वेश्याका अन्न खानेसे फिर तपस्या करने का पात्र भी न रहूँगा। शुद्ध होनेके लिये मुझे स्वयं एक लाख साधुको भोजन कराना पड़ेगा जिसमें एक लाख रुपयेकी आवश्यकता पड़ेगी। मैं किसीसे याचना तो करता नहीं यदि तेरा सावकाश हो तो जो तेरी इच्छा हो सो कर मेरी इच्छा नहीं कि तुझे इतना व्यय कर शुद्ध होना पड़े।'

पैसा [illegible]
पड़ [illegible]
एक [illegible]
संकल्प पढ़ा और कहा—'हा खीर और खांड़ भोजन करूं।'

वेश्याने बड़ी प्रसन्नताके साथ खीर और खांड़ समर्पित कर दी साधु महाराजने आनन्दसे भोजन किया और कुछ प्रसाद उसे भी दे दिया। वेश्या मन ही मन बहुत प्रसन्न हुई और कहने लगी कि रुपया तो हाथका मैल है फिर हो जायगा पर पापसे शुद्ध तो हुई। अन्तमें महाराजको धन्यवाद देकर जब वह जाने लगी तब महाराजने अपने असली भांड़का रूप धारण कर यह दोहा पढ़ा 'गड्डा ... पाट ... [illegible]' समझे।

प्रस्तावना

व्यवहार धर्मकी प्रवृत्ति देश कालके अनुसार होती है अभी आप मारवाड़में आइये वहां आपको गेहूं आदि अनाज धोकर खानेका रिवाज नहीं मिलेगा परन्तु चुगनेकी पद्धति बहुत ही उत्तम मिलेगी। भोजन करनेके समय वहांके लोग पैरोंके धोनेमें सेरों पानी नहीं ढोलेंगे और स्नान अल्प जलसे करेंगे इसका कारण यह है कि वहां पानीकी बहुलता नहीं परन्तु हमारे प्रान्तमें बिना धोया अनाज नहीं खावेंगे, भोजनके समय लोटा भर पानी ढोल देवेंगे और स्नान भी अधिक जलसे करेंगे इसका मूल कारण पानीकी पुष्कलता है। इन क्रियाओं से न तो मारवाड़की पद्धति अच्छी है और न हमारी बुरी है। त्रसहिंसा वहां भी टालते हैं और यहां भी टालते हैं। यह तो बाह्य क्रियाओंकी बात रही अब कुछ धार्मिक बातों पर भी विचार कीजिये—

जिस ग्राममें मन्दिर और मूर्तियोंकी प्रचुरता है यदि वहां पर मन्दिर न बनवाया जाय, तथा गजरथ न चलाया जावे तो कोई हानि नहीं। वही द्रव्य दरिद्र लोगोंके स्थितीकरणमें लगाया जावे, बालकोंको शिक्षित बनाया जावे, धर्मका यथार्थ स्वरूप समझाकर लोगोंको धर्ममें यथार्थ प्रवृत्ति करायी जावे, प्राचीन शास्त्रोंकी रक्षा की जावे, प्राचीन मन्दिरोंका जीर्णोद्धार कराया जावे या सब विकल्प छोड़ यथायोग्य विभागके द्वारा साधर्मी भाईयोंको धर्म साधनमें लगाया जावे तो क्या धर्म नहीं हो सकता ?

प्रभावना दो तरहसे होती है एक तो पुष्कल द्रव्यको व्ययकर गजरथ चलाना, पचासों हजार मनुष्योंको भोजन देना, संगीत मण्डलीके द्वारा गान कराना और उसके द्वारा सहस्रों नर नारियोंके मनमें जैनधर्मकी प्राचीनताके साथ साथ वास्तविक कल्याणका मार्ग प्रकट कर देना......यह प्रभावना है। प्राचीन समयमें लोग इसी प्रकारकी प्रभावना करते थे परन्तु इस समय इस तरहकी प्रभावनाकी आवश्यकता नहीं है और दूसरी प्रभावना यह है जिसकी कि लोग आज अत्यन्त आवश्यकता बतलाते हैं वह यह कि हजारों दरिद्रोंको भोजन देना, अनाथों को वस्त्र देना, प्रत्येक ऋतुके अनुकूल व्यवस्था करना, अन्न क्षेत्र खुलवाना, गर्मीके दिनोंमें पानी पीनेका प्रबन्ध करना, आजीविका विहीन मनुष्योंको आजीविकासे लगाना, शुद्ध औषधियोंकी व्यवस्था करना, स्थान-स्थानपर ऋतुओंके अनुकूल धर्मशालाएं बनवाना और लोगोंका अज्ञान दूरकर उनमें सम्यग्ज्ञानका प्रचार करना।

श्री समन्तभद्र स्वामीने प्रभावनाका यह लक्षण बतलाया है-

'अज्ञानतिमिरव्याप्तिमपाकृत्य यथायथम्।
जिनशासनमाहात्म्यप्रकाशः स्यात्प्रभावना॥'

अर्थात् अज्ञानान्धकारसे जगत् आच्छन्न है उसे जैसे बने वैसे दूरकर जिन शासनका माहात्म्य फैलाना सो प्रभावना है। आज मोहान्धकारसे जगत् व्याप्त है उसे यह पता नहीं कि हम कौन हैं? हमारा कर्तव्य क्या है? प्रथम तो जगत्के प्राणी स्वयं अज्ञानी हैं दूसरे मिथ्या उपदेशोंके द्वारा आत्मज्ञानसे वञ्चित कराये जाते हैं। भारतवर्षमें करोड़ों आदमी देवोंको बलिदान कर धर्म मानते हैं। जहां देवोंकी मूर्ति होती है वहां दशहरेके दिन सहस्रों बकरोंकी बलि दी जाती [illegible]

प्रभावना

व्यवहार धर्मकी प्रवृत्ति देश कालके अनुसार होती है अभी आप मारवाड़में जाईये वहां आपको गेहूँ आदि अनाज धोकर खानेका रिवाज नहीं मिलेगा परन्तु चुगनेकी पद्धति बहुत ही, उत्तम मिलेगी। भोजन करनेके समय वहांके लोग पैरोंके धोनेमें सेरों पानी नहीं ढोलेंगे और स्नान अल्प जलसे करेंगे इसका कारण यह है कि वहां पानीकी बहुलता नहीं परन्तु हमारे प्रान्त में विना धोया अनाज नहीं खावेंगे, भोजनके समय लोटा भर पानी ढोल देवेंगे और स्नान भी अधिक जलसे करेंगे इसका मूल कारण पानीकी पुष्कलता है। इन क्रियाओं से न तो मारवाड़की पद्धति अच्छी है और न हमारी बुरी है। त्रसहिंसा वहां भी टाल्ते हैं और यहां भी टालते हैं। यह तो बाह्य क्रियाओंकी बात रही अब कुछ धार्मिक बातों पर भी विचार कीजिये—

जिस ग्राममें मन्दिर और मूर्तियोंकी प्रचुरता है यदि वहां पर मन्दिर न बनवाया जाय, तथा गजरथ न चलाया जावे तो कोई हानि नहीं। वही द्रव्य दरिद्र लोगोंके स्थितीकरणमें लगाया जावे, बालकोंको शिक्षित बनाया जावे, धर्मका यथार्थ स्वरूप समझाकर लोगोंकी धर्ममें यथार्थ प्रवृत्ति करायी जावे, प्राचीन शास्त्रोंकी रक्षा की जावे, प्राचीन मन्दिरोंका जीर्णोद्धार कराया जावे या सब विकल्प छोड़ यथायोग्य विभागके द्वारा साधर्मी भाईयोंको धर्म साधनमें लगाया जावे तो क्या धर्म नहीं हो सकता ?

एक भी विद्यालय ऐसा नहीं जिसमें सौ छात्र संस्कृत पढ़ते हों। बनारसमें एक विद्यालय है,सबसे उत्तम स्थान है,जो पण्डित अन्यत्र सौ रुपयेमें मिलेगा वहां वह बीस रुपयेमें मिल सकता है। प्रत्येक विषयके विद्वान् वहां अनायास मिल सकते हैं पर आज तक उसका मूल धन एक लाख भी नहीं हो सका। निरन्तर अधिकारी वर्गको चिन्तित रहना पड़ता है आज तक उस संस्थाको

[illegible]
ब्राह्मण छात्रोंको दी जावे तो सहस्रों छात्र जैनधर्मके सिद्धान्तोंके पारगामी हो सकते हैं और अनायास ही धर्मका प्रचार हो सकता है।

जब लोग धर्मको जान लेंगे तब अनायास उस पर चलेंगे। आत्मा स्वयं परीक्षक है,परन्तु क्या करे ? सबके पास साधन नहीं, यदि धर्म प्रचारके यथार्थ साधन मिलें तो बिना किसी प्रयत्नके धर्म प्रसार हो जावे। धर्म वस्तु कोई बाह्य पदार्थ नहीं, आत्माकी निर्मल परिणतिका नाम ही तो धर्म है। जितने जीव हैं सबमें उसकी योग्यता है परन्तु उस योग्यताका विकास संज्ञी जीवके ही होता है जो असंज्ञी हैं अर्थात् जिनके मन नहीं उनके तो उसके विकासका कारण ही नहीं है। संज्ञी जीवोंमें एक मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जिसके उसका पूर्ण विकास हो सकता है। [illegible] कारण है कि मनुष्य पर्याय सब पर्यायोंमें उत्तम पर्याय मानी गई है। इस पर्यायसे हम संयम धारण कर सकते हैं अन्य पर्यायोंमें संयमकी योग्यता नहीं। पञ्चेन्द्रियोंके विषयसे चित्त-वृत्तिको हटा लेना तथा जीवोंकी रक्षा करना ही तो संयम है। यदि इस ओर हमारा लक्ष्य हो जावे तो आज ही हमारा कल्याण हो जावे। हमारा ही क्या समाज भरका कल्याण हो जावे।

पहले समयमें मुनिमार्गका प्रचार था, गृहस्थ लोग संसारसे विरक्त हो जाते थे और उनकी गृहिणी आर्या अर्थात् साध्वी हो जाती थीं। उनका जो परिग्रह बचता था वह अन्य लोगोंके उपभोगमें आता था तथा बहुतसे बालक आबालब्रह्मचारी ही त्यागी—मुनि हो जाते थे अतः उनका विभव भी इन ही लोग भोगते थे परन्तु आजके लोग तो मरते मरते भोगोंसे उदास नहीं होते उन्हें आनन्दका अनुभव कहांसे आवे? मरते मरते यही शब्द सुने जाते हैं कि यह बालक आपकी गोदमें है रक्षा करना...इत्यादि। यह दुरवस्था समाज की हो रही है।

जिनके पास पुष्कल धन है वे अपनी इच्छाके प्रतिकूल एक पैसा भी नहीं खर्च करना चाहते। यदि आप वास्तवमें धर्मकी प्रभावना करना चाहते हैं तो जाति पक्षको छोड़कर प्राणीमात्रका उपकार करो। आगममें तो यहां तक लिखा है कि श्री आदिनाथ भगवान् जब अपने पूर्वभवमें राजा वज्रजङ्घ थे और वज्रदन्त चक्रवर्तीके विरक्त होनेके बाद उनकी राज्य व्यवस्थाके लिये जारहे थे तब बीचमें एक सरोवरके तट पर ठहरे थे। वहां उन्होंने चारण ऋद्धिधारी मुनियोंके लिये आहार दान दिया। जिस समय वे आहार दान दे रहे थे उस समय शूकर, सिंह, नकुल और वानर ये चार जीव भी शान्त भावसे बैठे थे और आहार-दान देख कर मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे। भोजनानन्तर राजा वज्रजङ्घने चारण मुनियोंसे प्रश्न किया कि हे मुनिराज! यह जो चार जीव शान्त बैठे हुए हैं इसका कारण क्या है? उस समय मुनिराजने उनके पूर्व जन्मका वर्णन किया। जिसे सुनकर वे इव [illegible] अतिशय [illegible] होगया [illegible] और उन [illegible] हुआ वह [illegible] जीव [illegible]

करो, विद्यालय खोलो परन्तु उनमें स्वपर भेद ज्ञानकी शिक्षाके मुख्य साधन जुटाओ, मन्दिर बनवाओ परन्तु उनमें ऐसी प्रतिमा पधरावो कि जिसे देखकर प्राणीमात्रको शान्ति आजावे। मेरी निजी सम्मति तो यह है कि एक ऐसा मन्दिर बनवाना चाहिये कि जिसमें सब मतवालोंकी सुन्दरसे सुन्दर मूर्तियां और उनके ऊपर सङ्गमर्मरमें उनका इतिहास लिखा रहे। जैसे कि दुर्गाकी मूर्तिके साथ दुर्गा सप्तशती। इसी प्रकार प्रत्येक देवताकी मूर्तिके साथमें सङ्गमर्मरके विशाल पटिये पर उसका इतिहास रहे। इन सबके अन्तमें श्री आदिनाथ स्वामीकी मूर्ति अपने इतिहासके साथमें रहे और अन्तमें एक सिद्ध भगवान्की मूर्ति रहे। यह तो देव मन्दिरकी व्यवस्था रही। इसके बाद साधु वर्गकी व्यवस्था रहना चाहिये। सर्वमतके साधुओंकी मूर्तियां तथा उनका इतिहास और अन्तमें साधु उपाध्याय आचार्यकी मूर्तियां एव उनका इतिहास रहे। मन्दिरके साथमें एक बड़ा भारी पुस्तकालय हो जिसमें सर्व आगमोंका समूह हो प्रत्येक मतवालोंको उसमें पढ़नेका सुभीता रहे। हर एक विभागमें निष्णात विद्वान रहे जो कि अपने मतकी मार्मिक स्थिति सामने रख सके। यह ठीक है कि यह कार्य सामान्य मनुष्योंके द्वारा नहीं हो सकता पर असम्भव भी नहीं है। एक करोड़ तो मन्दिर और सरस्वती भवनमें लग जावेगा और एक करोड़के व्याजसे इसकी व्यवस्था चल सकती है। इसके लिये सर्वोत्तम स्थान बनारस है। हमारी तो कल्पना है कि जैनियोंमें अब भी ऐसे व्यक्ति हैं कि जो अकेले ही इस महान् कार्यको कर सकते हैं। धर्मके विकासके लिये तो हमारे पूर्वज लोगोंने बड़े बड़े राज्यादि त्याग दिये—जैसे माताके उदरसे जन्मे वैसे ही चले गये। ऐसे ऐसे उपाख्यान आगमोंमें मिलते हैं कि राजाके विरक्त होने पर सहस्रों विरक्त हो गये। जिनके भोजनके

करनेका निश्चय कर लिया। अन्तमें गजरथ उत्सव हुआ जिसमें एक लाख जैनी और एक लाखसे भी अधिक साधारण लोग एकत्रित हुए थे। राज्यकी ओरसे इतना सुन्दर प्रबन्ध था कि किसी की सुई भी चोरी नहीं गई। तीन पगतें हुईं जिनमें प्रत्येक पंगतमें पचहत्तर हजारसे कम भोजन करनेवालोंकी संख्या न होती थी। तीन लाख आदमियोंका भोजन बना था। आज कल तो इस प्रथाको व्यर्थ बताने लगे हैं। अस्तु,समयकी बलिहारी है।

एक बात और विलक्षण हुई सुनी जाती है जो इस प्रकार है—मेलाके समय कुवोंका पानी सूख गया जिससे जनता एकदम बेचैन हो उठी। किसीने कहा मन्त्रका प्रयोग करो, किसीने कहा तन्त्रका उपयोग करो पर बड़गैनी बोली-मुझे कूपमें बैठा दो। लोगोंने बहुत मना किया पर वह न मानी। अन्तमें बड़गैनी कूपमें उतार दी गई। वह वहां जाकर भगवान्का स्मरण करने लगी—'भगवन्! मेरी लाज रक्खो।' उसने इतने निर्मल भावोंसे स्तुति की कि दस मिनटके भीतर कुआ भर गया और बड़गैनी ऊपर आगई। चौबीस घण्टा पानी ऊपर रहा रस्सीकी आवश्यकता नहीं पड़ी। आनन्दसे मेला भरके प्राणियोंने पानीका उपयोग किया। धर्मकी अचिन्त्य महिमा है पश्चात् मेला विघट गया...यह दन्तकथा आज तक प्रसिद्ध है।

निस्पृह विद्वान् और उदार गृहस्थ

इसी पपौराकी बात है—यहां पर रामबगस सेठके पञ्चकल्याणक थे। उनके यहां श्री स्वर्गीय भागचन्द्रजी साहब प्रतिष्ठाचार्य थे। जब आप आये तब सेठजीके सुपुत्र गङ्गाधर सेठने पूछा कि महाराज ! आपके लिये कैसा भोजन बनवाया जावे कचा, या पक्का या कचा पक्का, श्री पण्डितजीने उत्तर दिया—'न कचा न पका न कचा पक्का।' तब गङ्गाधर सेठने कहा—'तो आपका भोजन कैसा होगा ?' पण्डितजी बोले—'सेठजी ! मेरे प्रतिज्ञा है कि जिसके यहाँ प्रतिष्ठा करनेके लिये जाऊं उसके यहां भोजन न करूँगा।'

सेठजीके पिता बहुत चतुर थे उन्होंने मुनीमको आज्ञा दी कि 'जितने स्थानों पर गजरथकी पत्रिका गई है उतने स्थानों पर निषेधके पत्र भेजो और उनमें लिख दो कि अब सेठजीके यहाँ गजरथ नहीं है। जितना घास हो ग्राम भरकी गायोंको डाल दो, लकड़ी घड़ा आदि गरीब मनुष्योंको वितरण कर दो, घी आदि खाद्य सामग्रीको साधारण रूपसे वितरण कर दो तथा राज्यमें इत्तिला कर दो कि सेठजीके यहां गजरथ नहीं है अतः सरकार प्रबन्ध आदिका कोई कष्ट न उठावे। श्री पण्डितजी महाराजको सवारीका प्रबन्ध कर दो जिससे वे श्री पपापुर (पपौरा) के जिनालयोंके दर्शन कर आवें, जब यहासे वापिस आवें तब ललितपुर तक सवारीका योग्य प्रबन्ध कर देना और ललितपुर तक आप स्वयं पहुंचा आना।

पण्डितजी बोले—'सेठजी यह क्यों ?' सेठजीने कहा—'आप हमारा अन्न भक्षण करने में समर्थ नहीं अर्थात् आप उसे

मील चौना बारहा क्षेत्र है, रात्रिके सात बजते बजते वहां पहुंच गये। रात्रिको शास्त्र प्रवचन हुआ, यहां पर विधवाविवाहके पोषक प्रायः बहुत सज्जन आगये थे केवल साधारण जनता ही विरोधमें थी। परवारसभाका अधिवेशन शानदार होनेवाला था परन्तु साधारण जनतामें विधवाविवाहकी चर्चाका प्रभाव विरुद्ध रूपमें पड़ा।

रात्रिको सब्जेक्टकमेटीकी बैठक होनेवाली थी, मेरा भी नाम उसमें था पर मैं नहीं गया, सभापति महोदयने बैठक स्थगित कर दी। दूसरे दिन स्वागताध्यक्षका प्रारम्भिक भाषण होनेवाला था परन्तु सभाके न होनेसे उनका भाषण भी रह गया। मैंने स्वागताध्यक्षसे कहा कि आप अपने भाषणकी एक कापी मुझे दे दीजिये। उन्होंने दे दी मैंने उसका अद्योपान्त अवलोकन किया। उसमें भी विधवाविवाहकी पुष्टि होती थी। मैंने कहा—'सिघई जी! आपने यह क्या अनर्थ किया?'

उन्होंने कहा—'यह भाषण मैंने नहीं बनाया।' मैंने कहा—'यह कौन मानेगा? आपको उचित था कि छपनेके पहले कभी कापीको एक बार देख लेते।' आप बोले—'अब क्या हो सकता है?'

जबलपुर और मुरई समाजको तार दिये थे पर वहांसे कोई नहीं आये इससे विधवाविवाहके पोषकोंका पक्ष प्रबल होगा। समाजमें बोलनेवालोंकी त्रुटि नहीं परन्तु समयपर काम करनेवाले नहीं। पञ्चम काल है इस समय अधर्मका पक्ष पुष्ट करनेवालोंकी बहुलता होता जाता है।

मध्याह्न समय विधवाविवाह पोषक व्याख्यान हुए। मनुष्योंका अभाव भी [illegible] होता रहा कहा तक कहा जावे

जो निषेध पक्षके थे वे भी समुदायमें सुननेको जाते रहे। रात्रिके समय श्री पं० मुन्नालाल जी, पण्डित मोतीलालजी व लोकमणि दासके 'विधवा विवाह आगमानुकूल नहीं, इस विषय पर सारगर्भित व्याख्यान हुए। मैं तो तमाशा देखनेवालोंमें था क्योंकि मैं इस विषयमें विशेष ज्ञान नहीं रखता था। पर मेरा जनतासे यही कहना था कि जो आप लोगोंके ज्ञानमें आवे सो करिये।

रात्रिको परवारसभाकी सब्जेक्टकमेटी हुई मैं भी गया। यद्यपि वहां जितने मेम्बर थे उनमें अधिकांश विधवाविवाहके निषेधक थे किन्तु बोलनेमें पटु न थे जो पटु थे उनमें बहुभाग पोषक पक्षके थे।

दूसरे दिन आमसभा हुई, जनताकी सम्मति विधवाविवाहके निषेध पक्षमें थी। यदि प्रस्ताव आता तो लड़ाई होनेकी सम्भावना थी अतः प्रस्ताव न आया। केवल ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीका विधिपक्षमें व्याख्यान हुआ। उस पक्षवाले प्रसन्न हुए परन्तु जनताको व्याख्यान सुनकर बहुत दुःख हुआ। लोग मुझसे बोलनेका आग्रह करने लगे। मैं खड़ा हुआ परन्तु पानी बरसने लगा। मैंने कहा कि पानी आ रहा है इसलिये आप लोग व्याकुल होंगे अतः अपना अपना सामान देखिये पर लोगोंने कहा कि पानी नहीं पत्थर भी बरसें तो भी हम लोग आपका व्याख्यान सुने बिना न उठेंगे। अन्तमें लाचार होकर मुझे बोलना पड़ा उस बारिसके बीच भी लोग शान्तिसे भाषण सुनते रहे। अन्तमें अधिक वर्षा होनेके कारण सभा भंग हो गई।

रात्रिको सात बजते बजते मण्डपमें जनता एकत्रित हो गई। लोगोंने ब्रह्मचारीजीके बहिष्कारका प्रस्ताव पासकर डाला इतनेमें ब्रह्मचारीजी बड़े आवेगके साथ यह कहते हुए सभामण्डपमें

आये कि मेरा बहिष्कार करनेवाला कौन है ? जनता उत्तेजित हो उठी एक आदमी बहुत ही बिगड़ा मैंने उसका हाथ पकड़कर उसे किसी तरह शान्त किया। सेठ ताराचन्द्रजी बम्बईवाले बहुत कुछ रुष्ट हुए। कुछ लोग ब्रह्मचारीजीको समझाकर उनके डेरेपर ले गये।

परवारसभाके इस प्रकरणसे उपस्थित जनतामें किसीको आनन्द नहीं हुआ सब खिन्नचित्त होकर घर गये। क्षेत्र उत्तम है, श्री शान्तिनाथ भगवान् की विशालकाय प्रतिमा है। एक मन्दिरमें बड़ी बड़ी पद्मासन प्रतिमाएं हैं। एक मन्दिर कुछ ऊंचाई देकर बनाया गया है। कुल तीन मन्दिर हैं एक छोटी सी धर्मशाला भी है। यदि कोई धर्म साधन करे तो सब तरहकी सुविधा है।

परवारसभा पूर्ण होगई सब आगन्तुक महाशय चले गये। सभापति साहब अन्तमें गये हमसे आपका जो स्नेह पहले था वही रहा परन्तु परस्परमें सम्भाषणके समय वह बात न रही जो पहले थी। संसारमें मनुष्यके जो कषाय उत्पन्न हो जाती है उसको पूर्ण किये बिना उसे चैन नहीं पड़ता। हमको यह कषाय हो गई कि देखो, ये लोग आगम विरुद्ध उपदेश देकर एक जातिको पतित करनेकी चेष्टा करते हैं अतः पुरुषार्थ कर इसे रोकना चाहिये और विधवाविवाहके पोषकोंको यह कषाय हो गई कि जब मनुष्यको अपनी इच्छानुसार अनेक विवाह करने पर रुकावट नहीं तो विधवाको दूसरा विवाह करने पर क्यों रोक लगाई जावे ? आखिर उसे भी अधिकार है। अस्तु, उभयपर दोनों पक्षके मनुष्य परस्पर मिलते हैं वहां साधारण लोगोंको शास्त्रार्थ देखनेका अवसर मिल जाता है।

दुःख केवल इस बातका है कि लोग इस विषयमें सिद्धान्त

विरोधी हो गये। बहुत कुछ प्रयत्न हुआ परन्तु आपसमें कलह शान्त न हुई। वंशीधरजी डेवड़ियासे मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध था उन्होंने कई भाईयोंको भेजा और साथ ही एक पत्र इस आशयका लिखा कि आप पत्रके देखते ही चले आईये। यहाँ आपसमें अत्यन्त कलह रहती है जो संभव है आपके प्रयत्नसे दूर हो जावे। मैं उसी दिन गाड़ीमें बैठकर जबलपुर पहुँच गया रात्रिको सभा हुई तीन घण्टा विवाद रहा अन्तमें सब लोगोंने सर्वदाके लिये इस प्रथाको बन्द कर दिया और परस्परमें प्रेमभावसे मिल गये, कलहकी शान्ति हो गई और हमारे लिये सहजमें यश मिल गया। इस कलहाग्निके शान्त करनेका श्रेय श्री सिंघई गरीबदासजी, वंशीधरजी डेवड़िया, श्री सिंघई मौजीलालजी नरसिंहपुरवाले तथा बल्लू बड़कुरको ही मिलना चाहिये क्योंकि उनके परिश्रम और सद्भावनासे ही यह शान्त हो सकी थी।

—०—

८४

पपौरा और अहार

यह वही पपौरा है जहां पर स्वर्गीय श्री मोतीलालजी वर्णीने अथक परिश्रम कर एक वीरविद्यालय स्थापित किया था। इस विद्यालयमें स्थायी द्रव्यका अभाव था फिर भी श्री वर्णी मोतीलालजी केवल अपने पुरुषार्थके द्वारा पांच सौ रुपया मासिक व्यय जुटाकर इसकी आजन्म रक्षा करते रहे।

इस विद्यालयकी स्थापनामें श्री मान् पण्डित नन्हेंलालजी प्रतिष्ठाचार्य टीकमगढ़ और श्रीमान् स्वर्गीय दरयावलालजी कडरयाका पूर्ण सहयोग रहा। इस प्रान्तमें ऐसे विद्यालयकी महती आवश्यकता थी। श्री वर्णीजीने अपना सर्वस्व विद्यालय को दे दिया, आपका जो सरस्वती भवन था वह भी आपने विद्यालयको प्रदान कर दिया। आप विद्यालयकी उन्नतिके लिये अहर्निश व्यस्त रहते थे। प्रान्तमें धनिक वर्ग भी बहुत है परन्तु उसके द्वारा विद्यालयको यथेष्ट सहायता कभी नहीं मिली। वर्णीजी प्रतिष्ठाचार्य भी थे, इससे प्रत्येक प्रान्तमें भ्रमण करने का अवसर आपको मिलता रहता था। इस कार्यसे आपको जो आय होती थी उसीसे पांच सौ रुपया मासिककी पूर्ति करते थे। इन्हें जितना धन्यवाद दिया जावे थोड़ा है। मैं तो आपको अपना बड़ा भाई मानता था। आपका मेरे ऊपर पुत्रवत् स्नेह रहता था, हम लोगोंका बहुत समय से परिचय था।

प्रारम्भमें वीर विद्यालयके सुयोग्य मन्त्री श्रीमान् पं० ठाकुरदास बी० ए० थे। आप सरकारी स्कूलमें काम करते हुए भी निरन्तर विद्यालयकी रक्षामें व्यस्त रहते थे। आपके प्रयत्नसे विद्यालयके लिए एक भव्य भवन बन गया जो कि बोर्डिंगसे पृथक् है, यही नहीं सरस्वती भवनका निर्माण आदि अनेक कार्य आपके द्वारा सम्पन्न हुए हैं। आप छात्रोंके अध्ययन पर निरन्तर दृष्टि रखते थे— 'छात्र व्युत्पन्न हों' इस विषयमें आपकी विशेष दृष्टि रहती थी। आपके द्वारा केवल विद्यालयकी उन्नति नहीं हुई छात्रकी भी व्यवस्था सुचारुरूपसे चल रही है जो जीर्ण मन्दिर थे उनका भी आपने उद्धार कराया तथा मोहरेमें अंधेरा रहता था उसे भी आपने सुधराया। आपकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण है आप निरन्तर धर्मकी रक्षामें प्रयत्नशील रहते हैं। आप अंग्रेजी भाषाके साथ साथ संस्कृत के भी अच्छे विद्वान् हैं विद्वान् ही नहीं सदाचारी भी हैं, सदाचारी ही नहीं, सदाचारके प्रचारक भी हैं। आप यदि किसी छात्रमें सदाचारकी त्रुटि पाते थे तो उसे विद्यालयसे पृथक् करनेमें सङ्कोच नहीं करते थे। वर्षों तक आपने मन्त्रीका पद सँभाला पर अब कई कारणोंसे आपने मन्त्री पदका कार्य छोड़ दिया है। फिर भी विद्यालय से अलग नहीं हैं।

इस समय विद्यालयके मन्त्री श्री मुन्नीलालजी मड़ौरा-वाले हैं आप भी बहुत सुयोग्य व्यक्ति हैं। जिस प्रकार विद्यालय श्री माताबाईजीके समय चलता था उसी प्रकार चल रहा है। आपके कुटुम्ब सम्पन्न है आप भी सम्पन्न हैं, धार्मिक प्रमुख व्यापारी हैं संयम ज्ञानी और सदाचारी भी हैं, विद्यालयकी उन्नतिमें निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं, आपके प्रयत्नसे कुछ स्थायी द्रव्य भी हो गया है। आपकी भावना है कि कमसे कम विद्यालयमें एक लाख रुपया का स्थायी द्रव्य हो जावे और

भी द्रव्य उत्पादन करें। राज्यकी सहायतासे यह कार्य अनायास हो सकता है। इस प्रान्तकी जनता विद्यादानमें बहुत कम द्रव्य व्यय करती है। यद्यपि यहांके महाराज विद्याके पूर्ण रसिक हैं और जबसे आपने राज्यकी बागडोर हाथमें ली है तबसे शिक्षा में बहुत सुधार हुए हैं फिर भी जनताके सहयोगके बिना एकाकी महाराज क्या कर सकते हैं? इतने पर भी हमें आशा है कि हमारे मन्त्रीजी की आशा शीघ्र ही सफलीभूत होगी।

श्री वर्णीजीने केवल यही विद्यालय स्थापित नहीं किया था किन्तु अपनी जन्म नगरी जवारामें भी तीन हजारकी लागतका एक मकान बनवाकर वहां की पाठशालाके लिये अर्पित कर दिया था। यद्यपि आप मेरे साथ गिरिराज पर रहनेका निश्चय कर चुके थे और कुछ समय तक वहां रहे भी परन्तु विद्यालय के मोहवश पपौराके लिये लौट आये और जन्मभूमि जवारा में समाधि मरणकर स्वर्ग सिधार गये। मेरा दाहिना हाथ भंग हो गया मुझे आपके वियोगका बहुत दुःख हुआ।

पपौरा क्षेत्रसे दश मील पूर्वमें अहार अतिशय क्षेत्र है यहां पर श्री शान्तिनाथ स्वामीकी अत्यन्त मनोहर प्रतिमा है जिसकी शिल्पकलाको देखकर आश्चर्य होता है। यहां पर भूगर्भमें सहस्रों मूर्तियां हैं जो भूमि खोदने पर मिलती हैं किन्तु हम लोग उस ओर दृष्टि नहीं देते। यहां आस पास जन महाशय अच्छी संख्यामें निवास करते हैं। पास ही पठा ग्राम है वहांके निवासी श्री पं० बारेलालजी वैद्यराज क्षेत्रके प्रबन्धक हैं और बहुत सुयोग्य और उत्साही कार्यकर्ता हैं परन्तु द्रव्यकी पूर्ण सहायता न होनेसे शनैः शनैः कार्य होता है। यहां पर एक छोटासा धर्मशाला भी [illegible] मन्दिरसे आध फर्लाङ्ग पर अहार नामका ग्राम है तथा एक [illegible] सरोवर है ग्राममें ५ पर जैनमंदिर हैं उनके स्थान

साधारण है। यहांसे तीन मील पर बैसा गांव है जहां जैनियोंके कई घर हैं दो घर सम्पन्न भी हैं परन्तु उनकी दृष्टि क्षेत्रकी ओर जैसी चाहिये वैसी नहीं अन्यथा वे चाहते तो अकेले ही क्षेत्र का उद्धार कर सकते थे।

मैंने यहां पर क्षेत्रकी उन्नतिके लिये एक छोटे विद्यालयकी आवश्यकता समझी, लोगोंसे कहा, लोगोंने उत्साहके साथ चन्दा देकर श्री शान्तिनाथ विद्यालय स्थापित कर दिया। पं० प्रेमचन्द्रजी शास्त्री तेंदूखेड़ावाले उसमें अध्यापक हैं जो बड़े सन्तोषी जीव हैं। एक छात्रालय भी साथमें है परन्तु धनकी त्रुटिसे विद्यालय विशेष उन्नति नहीं कर सका।

यहाँसे बरुआसागर गया। वहाँ पर एक विद्यालय है। स्वर्गीय सराफ मूलचन्द्रजीने गाँव के बाहर स्टेशनके ऊपर एक पहाड़ी पर इसकी स्थापना की है।

चैत्यालयका पूर्ण प्रबन्ध श्रीमान बाबू रामस्वरूप जी करते हैं। ... ... विद्यालयकी रक्षा आपके द्वारा ही हो रही है।

[पृ ११७]

श्री मनोहरलालजी शास्त्री अध्यापक हैं, आप बहुत ही सुयोग्य हैं, छात्रोंको सुयोग्य-व्युत्पन्न बनानेकी चेष्टामें रात दिन लीन रहते हैं। पचीस छात्र अध्ययन करते हैं परन्तु प्रान्तवासियोंकी इस ओर बहुत कम दृष्टि रहती है। इस प्रान्तमें धनाढ्य भी हैं परन्तु परोपकारके नामसे भयभीत रहते हैं। यदि बहुत उदारता हुई तो जल विहारोत्सव कर कृतकृत्य हो जाते हैं। यदि प्रान्तवासी ध्यान देवें तो अल्प व्ययमें अनायास ही बहुसंख्यक छात्रोंका उपकार हो जावे पर ध्यान होना ही कठिन है।

यहांकी देहातमें प्रायः प्रायमरी पाठशालाएं नहींके बराबर हैं। प्राचीनकालमें पांडे लोग पढ़ाते थे। उन्हें पूर्णिमा और अमावस्याको लोग सीधा द देते थे तथा प्रतिमास कोई दो पैसा कोई चार पैसा नकद दे दिया करते थे इस तरह उनका निर्वाह हो जाता था और गांवके बालक सहजमें पढ़ जाते थे। जो कुछ पढ़ाते थे पाटी पर पढ़ाते थे तथा लड़के जो पढ़ते थे उसे हृदयमें लिख लेते थे, पुस्तकको पढ़ाई नहीं थी। सायंकालके समय जो कुछ पढ़ते थे उसे एक लड़का कण्ठस्थ पढ़ता था और शेष लड़के उसीको दुहराते थे इस प्रकार अनायास छात्रोंकी योग्यता उत्तम हो जाती थी परन्तु अब यह प्रथा बन्द हो गई है। अब तो केवल पैसेकी विद्या रह गई है।

पहले छात्रोंको गुरुमें भक्ति रहती थी गुरुके चरणोंमें मस्तक नवाकर छात्र गुरुका अभिवादन करते थे पर आज बहुत हुआ तो मस्तकसे हाथ लगा कर गुरुको प्रणाम करनेकी पद्धति रह गई है फल उसका यह हुआ कि धीरे धीरे विनय गुणका लोप हो गया। प्राचीन पद्धतिके अभावमें भारतकी जो दुर्दशा हो रही है वह सबको विदित है।

यहाँसे चल कर फिर सागर आगये और देख कर सन्तुष्ट हुए कि पाठशालाकी व्यवस्था ठीक चल रही है। यहाँके कार्यकर्ता और समाजके लोगोंमें मैंने एक बात देखी कि वे अपना उत्तरदायित्व पूर्णरूपसे संभालते हैं।
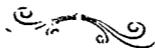
८१

बाईजी का सर्वस्व समर्पण

एक बार मैं बनारस विद्यालयके लिये बाईजीके नाम एक हजार रुपया लिखा आया पर भयके कारण बाईजीसे कहा नहीं। बाईजी मुझे आठ दिनमें तीन रुपया फल खानेके लिये देती थी, मैं फल न खा कर उन रुपयोंको पोष्ट आफिसमें जमा कराने लगा। एक दिन बाईजीने पूछा—'भैया फल नहीं लाते ?' मैंने कह दिया—'आज कल बाजार में अच्छे फल नहीं आते।'

बाईजी ने कहा—'अच्छा'

एक दिन बाईजी बड़े बाजार गईं जब लौटकर आ रही थीं तब मार्गमें फलवाले सफीकी दुकान मिल गई। बाईजीने सफीसे कहा-'क्यों सफी ! भैयाको फल नहीं देते ?' सफीने कहा-'वह दूसरे रास्ता कटकर निकल जाते हैं।'

बाईजीने दो रुपयाके फल लिए और धर्मशालामें आकर मुझसे कहा-'यह फल सफीने दिये हैं पर तुम कहते थे कि अच्छे फल नहीं आते, यह मिथ्या व्यवहार अच्छा नहीं।'

इतनेमें ही वहां पड़ी हुई पोष्ट आफिस की पुस्तक पर उनकी दृष्टि जा पड़ी। उन्होंने पूछा-'यह कैसी पुस्तक है ?'

मैं चुप रह गया।

वहां डाक पीन खड़ा था, उसने कहा—'यह डाकखानेमें रुपया जमा कराने की पुस्तक है।' बाईजीने कहा—'कितने रुपये जमा हैं?' वह बोला—'पच्चीस रुपये। बाईजी बोलीं—'हम तो फलके लिये देते थे और तुम डाकखानेमें जमा कराते हो इसका अर्थ हमारी समझमें नहीं आता।'

मैंने कहा—'मैंने बनारस विद्यालयके लिये आपके नामसे एक हजार रुपये दिये हैं उन्हें अदा करना है।'

बाईजीने कहा—'इस प्रकार कब तक अदा होंगे?'

मैं चुप रह गया।

वह कहती रहीं—कि जिस दिन दिये उसी दिन देना उचित था। दानकी रकम है वह तो ऋण है पांच रुपया मासिक उसका ब्याज हुआ। तुम्हें दस रुपया मासिक ही तो देती हूँ इनसे किस प्रकार अदा करोगे? जब तुम्हें हमारा भय था तब दान देनेकी क्या आवश्यकता थी? जो हुआ सो हुआ अभी जाओ और एक हजार रुपया आज ही भेज दो।'

मैं सब सुनता रहा, बाईजीने यह आदेश दिया कि दानकी रकमको पहले दो पीछे नाम लिखाओ। दान देना उत्तम है परन्तु देते समय परिणाममें उत्साह रहे। यह उत्साह ही कल्याणका बीज है, दानमें लोभका त्याग होना चाहिये। 'स्वपरानुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम्'—अपना और परका अनुग्रह करनेके लिये जो धनका त्याग किया जाता है वही दान कहलाता है। देनेके समय हमारे यह भाव रहते हैं कि इससे परका उपकार हो अर्थात् जब हम व्रतीको दान देते हैं तब हमारे यह भाव होते हैं कि इसके द्वारा इनका शरीर स्थिर रहेगा और उस शरीरसे यह मोक्षमार्गका साधन करेंगे। यद्यपि मोक्षमार्ग आत्माके गुणोंके निर्मल विकाससे होता है तथापि शरीर उसमें निमित्त कारण

८१

बाईजी का सर्वस्व समर्पण

एक बार मैं बनारस विद्यालयके लिये बाईजीके नाम एक हजार रुपया लिखा आया पर भयके कारण बाईजीसे कहा नहीं। बाईजी मुझे आठ दिनमें तीन रुपया फल खानेके लिये देती थी, मैं फल न खा कर उन रुपयोंको पोष्ट आफिसमें जमा कराने लगा। एक दिन बाईजीने पूछा—'भैया फल नहीं खाते?' मैंने कह दिया—'आज कल बाजार में अच्छे फल नहीं आते।'

बाईजी ने कहा—'अच्छा'

एक दिन बाईजी घर बाजार गईं जब लौटकर आ रही थी तब मार्गमें फलवाले सखीकी दुकान मिल गई। बाईजीने सखीसे कहा—'क्यों सखी! भैयाको फल नहीं देते?' सखीने कहा—'वह दूसरे रास्ता काटकर निकल जाते हैं।'

बाईजीने दो रुपयाके फल लिए और धर्मशालामें आकर मुझसे कहा—'यह फल सखीने दिये हैं पर तुम कहते थे कि अच्छे फल नहीं आते, यह मिथ्या व्यवहार अच्छा नहीं।

इतनेमें ही वहां पड़ी हुई पोस्ट आफिस की पुस्तक पर उनकी दृष्टि जा पड़ी। उन्होंने पूछा—'यह कैसी पुस्तक है?'

मैं चुप रह गया

वहाँ डाक पीन खड़ा था, उसने कहा—'यह डाकखानेमें रुपया जमा कराने की पुस्तक है।' बाईजीने कहा—'कितने रुपये जमा हैं?' वह बोला—'पच्चीस रुपये। बाईजी बोलीं—'हम तो फलके लिये देते थे और तुम डाकखानेमें जमा कराते हो इसका अर्थ हमारी समझमें नहीं आता।'

मैंने कहा—'मैंने बनारस विद्यालयके लिये आपके नामसे एक हजार रुपये दिये हैं उन्हें अदा करना है।'

बाईजीने कहा—'इस प्रकार कब तक अदा होंगे?'

मैं चुप रह गया।

वह कहती रहीं—कि जिस दिन दिये उसी दिन देना उचित था। दानकी रकम है वह तो ऋण है पाँच रुपया मासिक उसका व्याज हुआ। तुम्हें दस रुपया मासिक ही तो देती हूँ इनसे किस प्रकार अदा करोगे? जब तुम्हें हमारा भय था तब दान देनेकी क्या आवश्यकता थी? जो हुआ सो हुआ अभी जाओ और एक हजार रुपया आज ही भेज दो।'

मैं सब सुनता रहा, बाईजीने यह आदेश दिया कि दानकी रकमको पहले दो पीछे नाम लिखाओ। दान देना उत्तम है परन्तु देते समय परिणाममें उत्साह रहे। यह उत्साह ही कल्याणका बीज है, दानमें लोभका त्याग होना चाहिये। 'स्वपरानुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम्'—अपना और परका अनुग्रह करनेके लिये जो धनका त्याग किया जाता है वही दान कहलाता है। देनेके समय हमारे यह भाव रहते हैं कि इससे परका उपकार हो अर्थात् जब हम पात्रको दान देते हैं तब हमारे यह भाव होते [illegible] कि इसके द्वारा इसका शरीर स्थिर रहेगा और इस शरीरसे [illegible] साधन करेगा। यद्यपि कोई-कोई आचार्य [illegible] [illegible] है तथापि शरीर उसमें निमित्त [illegible]

है। जैसे वृद्ध मनुष्य अपने पैरोंसे चलता है परन्तु उसमें यष्टि सहकारी कारण होती है अथवा जब नेत्र निबल हो जाते हैं तब चश्माके द्वारा मनुष्य देखता है। यद्यपि देखनेवाला नेत्र ही है तो भी चश्मा सहकारी कारण है।

दान देनेमें परका यही उपकार हुआ कि ज्ञानादिके निमित्त कारणोंमें स्थिरता आ सका परन्तु परमार्थसे देनेवालेका महान् उपकार हुआ। यह इस प्रकार कि दान देनेके पहले लोभकषायकी तीव्रतासे इस जीवके पर पदार्थके ग्रहण करनेका भाव था परन्तु दान देते समय आत्मगुण घातक लोभका निराश हुआ। लोभके अभावमें आत्माके चारित्र गुणका विकास हुआ और चारित्र गुणका आंशिक विकास होनेसे मोक्षमार्गकी आंशिक पुष्टि हुई अतः दान देनेके भाव जिस समय हों उसी समय उस द्रव्यको पृथक् कर देना उचित है। तत्काल न देनेसे महान् अनर्थकी सम्भावना है। कल्पना करो आज तो सातोदयसे तुम्हारे पास द्रव्य है यदि कल असातोदय आजावे और तुम स्वयं दरिद्री होकर परको आशा करने लगो तो इस द्रव्यको कहाँसे चुकाओगे? अथवा कल यह भाव हो जावें कि किस चक्रमें फँस गये? इस संस्थासे अच्छा काम नहीं चलता बड़ी अव्यवस्था है अतः यहाँ दान देना ठीक नहीं था आदि नाना असत्कल्पनाएं होने लगें तो उनसे केवल पाप बन्ध ही होगा। इसलिये जिस समय दान देनेके भाव हों उस समय सम्यक् विचार कर बोलो और बोलनेके पहले दे दो यही सर्वोत्तम मार्ग है यदि बोलते समय न दे सको तो घर आकर भेज दो। फलके लिये उस रकमको घरमें न रक्खो। यह हमारा अभिप्राय है सो तुमसे कह दिया। अब आगेके लिये हमारे पास जो कुछ है वह सब तुम्हें देती हूँ तुम्हारी जो इच्छा हो सो करो, भयसे मत करो, आजसे हमने इस द्रव्यसे ममता त्याग दी।

हां, इतना करना कि यह ललिताबाई जो कि तीस वर्षसे हमारे पास है यदि अपने साथ न रहे तो पाँच सौ रुपयेका सोना और पन्द्रह सौ रुपये इसे दे देना तथा दो सौ रुपया सिमराके मन्दिरको भेज देना अब विशेष कुछ नहीं कहना चाहती।'

बाईजीके इस सर्वस्व समर्पणसे मेरा हृदय गद्गद हो गया और मैं उठकर बाहर चला गया।

८८
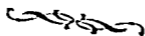
बण्डा की दो वार्ताएं

एक बार सागरमें प्लेग पड़ गया हम लोग बण्डा चले गये साथमें पाठशाला भी लेते गये। उस समय श्रीमान् पं० दीपचन्द्र जी वर्णी पाठशालाके सुपरिन्टेन्डेन्ट थे अतः वे भी गये और उनकी मां भी। दीपचन्द्र जी के साथ हमारा घनिष्ठ सम्बन्ध था आपका प्रबन्ध सराहनीय था।

एक दिन की बात है—एक लकड़ी बेचनेवाली आई उसकी लकड़ी चार आनेमें ठहराई मेरे पास अठन्नी थी मैंने उसे देते हुए कहा कि चार आना वापिस दे दे। उसने कहा—'मेरे पास पैसा नहीं है।' मैंने सोचा—'कौन बाजार लेने जावे अच्छा आठ आना ही ले जा।' वह जाने लगी, उसके शरीर पर जो धोती थी वह बहुत फटी थी। मैंने उससे कहा—'ठहर जा' वह ठहर गई, मैं ऊपर गया वहां बाईजी की रोटी बनाने की धोती सूख रही थी मैं उसे लाया और वहीं पर चार सेर गेहूँ रक्खे थे उन्हें भी लेता आया। नीचे आकर वह धोती और गेहूँ-दोनों ही मैंने उस लकडीवाली को दे दिये।

श्री दीपचन्द्रजी ने देख लिया, मैंने कहा—आप बाईजी से न कहना। वे हँस गये इतने में बाईजी मन्दिरसे आ गईं और ऊपर गईं, चूल्हा सुलगा कर धोती बदलनेके लिये ज्यों ही छत पर गईं त्यों ही धोती नदारत देखी। हमसे पूछने लगीं—'भैया!

८८

चण्डा की दो वार्ताएं

एक बार सागरमें प्लेग पड़ गया हम लोग चण्डा चले गये साथमें पाठशाला भी लेते गये। उस समय श्रीमान् पं० दीपचन्द्र जी वर्णी पाठशालाके सुपरिन्टेन्डेन्ट थे अतः वे भी गये और उनकी माँ भी। दीपचन्द्र जी के साथ हमारा घनिष्ठ सम्बन्ध था आपका प्रबन्ध सराहनीय था।

एक दिन की बात है—एक लकड़ी बेचनेवाली आई उसकी लकड़ी चार आनेमें ठहराई मेरे पास अठन्नी थी मैंने उसे देते हुए कहा कि चार आना वापिस दे दे। उसने कहा—'मेरे पास पैसा नहीं है।' मैंने सोचा—'कौन बाजार लेने जावे अच्छा आठ आना ही ले जा।' वह जाने लगी, उसके शरीर पर जो धोती थी वह बहुत फटी थी। मैंने उससे कहा—'ठहर जा' वह ठहर गई, मैं ऊपर गया वहां बाईजी की रोटी बनाने की धोती सूख रही थी मैं उसे लाया और वहीं पर चार सेर गेहूँ रक्खे थे उन्हें भी लेता आया। नीचे आकर वह धोती और गेहूँ-दोनों ही मैंने उस लकड़ीवाली को दे दिये।

श्री दीपचन्द्रजी ने देख लिया, मैंने कहा—आप बाईजी से न कहना। वे हँस गये इतने में बाईजी मन्दिरसे आ गईं और ऊपर गईं, चूल्हा सुलगा कर धोती बदलनेके लिये ज्यों ही छत पर गईं त्यों ही धोती नदारत देखी। हमसे पूछने लगीं—'भैया'

८६

पुण्य-परीक्षा

एक दिनकी बात है सब लोग नैनागिरमें धर्म चर्चा कर रहे थे। मैना सुन्दरी आदिकी कथा भी प्रकरणमें आ गई। एक बोला—'वर्णीजीका पुण्य अच्छा है वे जो चाहें हो सकता है।'

एक बोला—'इन गप्पोंमें क्या रक्खा है? इनका पुण्य अच्छा है यह तो तब जानें जब इन्हें आज भोजनमें अंगूर मिल जावें।'

नैनागिरमें अंगूर मिलना कितनी कठिन बात है? मैंने कहा—'मैं तो पुण्यशाली नहीं परन्तु पुण्यात्मा जीवोंको सर्वत्र सब वस्तुएं सुलभ रहती हैं।'

वह बोला—'सामान्य बात छोड़िये, आपकी बात हो रही है यदि आप पुण्यशाली हैं तो अभी आपको भोजनमें अंगूर मिल जावें। यों तो जगत्‌में चाहे जिसको जो चाहो कह दो मैं तो आपको पुण्यात्मा तभी मानूंगा जब आज आपको अभी अंगूर मिल जावेंगे।' मैंने हँसते हुए कहा—'यदि मेरे पल्ले पुण्य है तो कौन सी बड़ी बात है?'

वह बोला—'बातोंमें क्या रक्खा है?'

मैंने कहा—'बातों ही से तो यह कथा हो रही है।'

एक बोला—'अच्छा, इसमें क्या रक्खा है? सब लोग भोजनके लिये चलो, पुण्यकी परीक्षा फिर हो लेगी।'

६०

अपनी भूल

नैनागिरसे चलकर सागर आ गया। यहाँ एक दिन बाजार जाते समय एक गाड़ी लकड़ीकी मिली। मैंने उसके मालिकसे पूछा—'कितनेमें दोगे?' वह बोला—'पौने तीन रुपयामें।' मैंने कहा—'ठीक ठीक कहो।' वह बोला—'ठीक क्या कहूं? दो दिन बैलोंको मारते हैं हम पृथक् परिश्रम करते हैं इतने पर भी सवेरे से घूम रहे हैं दोपहर हो गये अभी तक कुछ खाया नहीं फिर भी लोग पौने दो रुपयासे अधिक नहीं लगाते।'

मैंने कहा—'अच्छा चलो पौने तीन रुपया ही देवेंगे।' वह खुशीसे कटराकी धर्मशालामें गाड़ी लाया और लकड़ी रखने लगा।

मैंने कहा—'फाड़कर रक्खो।'

वह बोला—'काटनेके दो आना और दो।'

मैंने कहा—'हमने पौने तीन रुपया दिये सच कहो क्या पौने तीन रुपयाकी गाड़ी है।'

वह बोला—'नहीं, पौने दो रुपयासे अधिककी नहीं परन्तु आपने पौने तीन रुपयामें ठहरा लो इसमें मेरा कौन सा अपराध है? आपने उस समय यह तो नहीं कहा था कि काटना पड़ेगा।'

शाला छोड़ देता था और जब बाईजी आ जाती थीं तब पुनः आ जाता था।

अन्त में जब वह बीमार हुआ तब दो दिन तक उसने कुछ भी नहीं लिया और बाईजी के द्वारा नमस्कार मन्त्रका श्रवण करते हुए उसने प्राणविसर्जन किया।

कहनेका तात्पर्य यह है कि पशु भी शुभ निमित्त पाकर शुभ गतिके पात्र हो जाते हैं मनुष्योंकी कथा कौन कहे?

बाईजीने हँसकर उत्तर दिया—

'भैया ! जब कासौजमें गल्ला बेचते हो और उसमें घु
नियाँ लिल्ले आदि जीव निकलते हैं तब उनका क्या करते हो
आरम्भके कार्योंमें त्रस जीवोंकी रक्षा न हो और माह्यवि
कायमें एकेन्द्रिय जीवकी रक्षाकी बात करो। जब तुम्हारे आरम्
त्याग हो जावेगा तब तुम्हें मन्दिर बनानेका कोई उपदेश
करेगा। यह तुम्हारा दोष नहीं स्वाध्याय न करनेका
फल है।'

कहनेका तात्पर्य यह है कि वे समय पर उचित उत्तर देने
न चूकती थीं।

६३

व्यवस्थाप्रिय बाईजी

बाईजी को अव्यवस्था जरा भी पसन्द न थी वे अपना प्रत्येक कार्य व्यवस्थित रखती थीं। प्रत्येक वस्तु यथास्थान रखती थीं। आपकी सदा यह आज्ञा रहती थी कि लिखा हुआ कोई भी पत्र कूड़ामें न डाला जावे तथा जहाँ तक हो पुस्तकों की विनय की जावे। चाहे छपी पुस्तक हो चाहे लिखी विनय-पूर्वक ऊपर ही रखना चाहिये।

एक दिन की बात है—आप मन्दिर से आ रही थीं, धर्मशाला के कूड़ागृहमें उन्हें एक कागज मिल गया उसमें भक्तामरका श्लोक था। बाईजी ने ललिताको बहुत डाटा—'क्यों री! इसे क्यों झाड़ा?' वह उत्तर देने लगी—'वर्णीजी से कहो कि वे क्यों ऐसा करते हैं?' बाईजी ने मुझसे भी कहा कि मैंने सौ बार तुमसे कहा कि ऐसी भूल मत करो चाहे गजट मंगाना बन्द कर दो। मैं चुप हो गया। बाईजी ने ललिता का शिर पकड़ा और भीतमें अपना हाथ लगाकर वेगसे पटका परन्तु उसको रंच मात्र भी चोट न आई क्योंकि उन्होंने हाथ लगा लिया था। मैं बाईजाकी इस विवेकपूर्ण सजाको देखकर हँस पड़ा।

बाईजीकी प्रकृति अत्यन्त सौम्य थी, उन्हें क्रोधकी मात्राका लेश भी न था। कैसा ही उद्दण्ड मनुष्य क्यों न आवे उनके समक्ष नम्र ही हो जाता था। बाईजी जितनी शान्त थीं उतनी ही उदार थीं। मैं जहाँ तक जानता हूं उनकी प्रकृति अत्यन्त उच्च

बाईजीने हँसकर उत्तर दिया—

'भैया ! जब कासौजमें गल्ला बेचते हो और उसमें दुकनियों विल्ले आदि जीव निकलते हैं तब उनका क्या करते हो ? आरम्भके कार्योंमें त्रस जीवोंकी रक्षा न हो और माङ्गलिक कार्यमें एकेन्द्रिय जीवकी रक्षाकी बात करो। जब तुम्हारे आरम्भ त्याग हो जावेगा तब तुम्हें मन्दिर बनानेका कोई उपदेश न करेगा। यह तुम्हारा दोष नहीं स्वाध्याय न करनेका ही फल है।'

कहनेका तात्पर्य यह है कि वे समय पर उचित उत्तर देनेसे न चूकती थीं।

व्यवस्थाप्रिय बाईजी

बाईजी को अव्यवस्था जरा भी पसन्द न थी वे अपना प्रत्येक कार्य व्यवस्थित रखती थीं। प्रत्येक वस्तु यथास्थान रखती थीं। आपकी सदा यह आज्ञा रहती थी कि लिखा हुआ कोई भी पत्र कूड़ामें न डाला जावे तथा जहां तक हो पुस्तकों की विनय की जावे। चाहे छपी पुस्तक हो चाहे लिखी विनय-पूर्वक ऊपर ही रखना चाहिये।

एक दिन की बात है—आप मन्दिर से आ रही थीं, धर्मशाला के कूड़ागृहमें उन्हें एक कागज मिल गया उसमें भक्तामरका श्लोक था। बाईजी ने ललिताको बहुत डांटा—'क्यों री! इसे क्यों फाड़ा?' वह उत्तर देने लगी—'वर्णीजी से कहो कि वे क्यों ऐसा करते हैं?' बाईजी ने मुझसे भी कहा कि मैंने सौ बार तुमसे कहा कि ऐसी भूल मत करो चाहे गजट मंगाना बन्द कर दो। मैं चुप हो गया। बाईजी ने ललिता का शिर पकड़ा और भीतमें अपना हाथ लगाकर वेगसे पटका परन्तु उसको रंच मात्र भी चोट न आई क्योंकि उन्होंने हाथ लगा लिया था। मैं बाईजी की इस विवेकपूर्ण सजाको देखकर हँस पड़ा।

[illegible] बाईजीकी प्रकृति अत्यन्त सौम्य थी, उन्हें क्रोधकी मात्राका [illegible] न थी [illegible] ऐसा ही उद्दण्ड मनुष्य क्यों न आवे उनके [illegible] नम्र हो जाता था। बाईजी जितनी शान्त थीं उतनी ही [illegible] मैं जहाँ तक जानता हूँ उनकी प्रकृति अत्यन्त उच्च [illegible]

'माताओ ! और बहिनो ! तथा पिता ! चाचा ! और भाईयो ! आज मेरी उम्रमें प्रथम दिवस है कि मैं एक अबोध स्त्री आपके समक्ष व्याख्यान देनेके लिये खड़ी हुई हूँ। मैंने केवल चार क्लास हिन्दीकी शिक्षा पाई है। यदि शिक्षा पर दृष्टि देकर कुछ बोलनेका प्रयास करूं तो कुछ भी नहीं कह सकती किन्तु आज दोपहरको मैंने शीलवती स्त्रियोंके चरित्र सुने उससे मेरी आत्मामें यह बात पैदा हो गई कि मैं भी तो स्त्री हूँ। यदि अपना पौरुष उपयोगमें लाऊं तो जो काम प्राचीन माताओंने किये उन्हें मैं भी कर सकती हूँ। यही भाव मेरी रग रगमें समा गया उसीका नमूना है कि एकने मेरेसे मजाक किया मैंने उसे जो थप्पड़ दी वही जानता होगा और उससे यह प्रतिज्ञा करवा कर आई हूं कि 'बेटी ! अब ऐसा असद्व्यवहार न करूँगा।'

प्रकृत बात यह है कि हमारी समाज इस विषयमें बहुत पीछे है। सबसे पहले हमारी समाजमें यह दोष है कि लड़कियोंको योग्य शिक्षा नहीं देते। बहुतसे बहुत हुआ तो चार क्लास हिन्दी पढ़ा देते हैं जिस शिक्षामें केवल कुत्ता, बिल्ली और गिलहरियोंकी कथा आती है। बालिकाओंका क्या कर्तव्य है ? इसके नाते अक्षर भी नहीं सिखाया जाता। माता पिता यदि धनी हुआ तो कन्याको गहनोंसे लाद कर खिलौना बना देता है। न उसे शरीरको नीरोग रखनेकी शिक्षा देता है और न स्त्री धर्मकी। यदि गरीब माता पिता हुए तो कहना ही क्या है ? वह सब जहन्नुममें जावे, वरकी तलाशमें भी बहुत असावधानी करते हैं। लड़कीको सोना पहिननेके लिये मिलना चाहिये चाहे लड़का अनुकूल हो या न हो। विवाहमें हजारों खर्च कर देवेंगे परन्तु योग्य लड़की बने इसमें एक पैसा भी खर्च नहीं करेंगे। लड़केवाले भी यही ख्याल रखते हैं कि सोना मिलना चाहिये चाहे लड़की अनुकूल हो या प्रतिकूल। अस्तु, इस विषय पर विशेष मीमांसा

दक्षण पर्वमें ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करूँगी विशेष कुछ नहीं कहना चाहती।'

उसका व्याख्यान सुन कर सब समाज चकित रह गई। पास ही बैठे हुए बाबा भागीरथजीने दीपचन्द्रजी वर्णीसे कहा कि यह अबला नहीं सबला है।

दक्षिण प्रान्तमें ब्रह्मचर्य मतका पालन करेंगी विशेष कुछ नहीं कहना चाहती।'

उनका व्याख्यान सुन कर सब समाज चकित रह गई। पास ही बैठे हुए बाबा भागीरथजीने दीपचन्द्रजी वर्णीसे कहा कि यह अबला नहीं सबला है।

प्रारम्भसे ही इतना सुबोध बना देते हैं कि सहज ही मध्यम परीक्षाके योग्य हो जाते हैं। आज कल आप सर्वार्थसिद्धि, जीवकाण्ड तथा सिद्धान्तकौमुदी भी पढ़ाते हैं। पढ़ानेके अतिरिक्त पाठशालाके सरस्वतीभवनकी व्यवस्था भी आप ही करते हैं। आपने आदिसे अन्त तक इसी विद्यालयमें अध्ययन किया है।

इनके बाद तीसरे अध्यापक पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य हैं। आप बहुत ही सुयोग्य हैं। इन्होंने मध्यमा तक गुरुमुखसे अध्ययन किया फिर प्रतिवर्ष अपने आप साहित्यका अध्ययन कर परीक्षा देते रहे इस प्रकार पांच खण्ड पास किये सिर्फ छठवीं वर्ष दो मास को बनारस गये और साहित्याचार्य पदवी लेकर आ गये। आप इतने प्रतिभाशाली हैं कि बनारसके छात्र आपसे साहित्यिक अध्ययन करनेके लिये यहाँ आते हैं। आपके पढ़ाये हुए छात्र बहुत ही सुबोध होते हैं। आपने यहीं अध्ययन किया है।

कहनेका तात्पर्य यह है कि सागर विद्यालय इन्हीं सुयोग्य विद्वानोंके द्वारा चल रहा है। द्रव्यकी पुष्कलता न होनेपर भी आप लोग योग्य रीतिसे पाठशालाको चला रहे हैं। अबतक पचासों विद्वान पाठशालासे निष्णात होकर निकल चुके जिनमें कई तो बहुत ही कुशल निकले।

सन्तोषकी बात तो यह है कि इस संस्थाका संचालन इसीसे पढ़कर निकले हुए विद्वान् लोग कर रहे हैं। मंत्री इसी पाठशाला के छात्र हैं, छः अध्यापकों में पांच अध्यापक इसी पाठशालाके पढ़े हुए हैं, सुपरिन्टेन्डेन्ट और क्लर्क भी इसी संस्थाके छात्र हैं। ऐसा सौभाग्य शायद ही किसी संस्थाको प्राप्त होगा कि उससे निकले हुए विद्वान् उसीकी सेवा कर रहे हों।

पं० मूलचन्द्रजी बिलौआ बरुआसागर निवासीने इस पाठशालामें

बहुत काम किया। आपकी यदीव्ह पाठशालाको हजारों रुपये मिले। आप बहुत साहसी मनुष्य हैं।

इस प्रकार यह विद्यालय इस प्रान्तकी हरी-भरी खेती है जिसे देखकर अन्यकी तो नहीं कहता पर मेरा हृदय आनन्दसे आप्लुत हो जाता है।

सागर सागर ही है अतः इसमें रत्न भी पैदा होते हैं। बालचन्द्रजी मलैया सागरके एक रत्न ही हैं। इन्होंने जबसे काम संभाला तबसे सागरकी ही नहीं समस्त बुन्देलखण्ड प्रान्तके जैन समाजकी प्रतिष्ठा बढ़ा दी। आप जितने कुशल व्यापारी हैं उतने धार्मिक भी हैं। आपने ग्यारह हजार रुपया सागर विद्यालयको दिये, पचास हजार रुपया जैन हाईस्कूलकी बिल्डिंगके लिये दिये, बीस हजार रुपया जैन गुरुकुल मड़ावराको दिये, पचीस हजार रुपया सागरमें प्रसूति गृह बनानेके लिये दिये और इसके अतिरिक्त प्रतिवर्ष अनेक छात्रोंको छात्रवृत्ति देते रहते हैं। अध्ययनके प्रेमी हैं। आपने अपने द्वारा स्थापित मिलन लाइब्रेरीमें कई हजार पुस्तकोंका संग्रह किया है। आपकी इस सर्वाङ्गीण उन्नतिमें कारण आपके बड़े भाई श्री शिवप्रसादजी मलैया हैं जो बड़े ही शान्त विचारक और गम्भीर प्रकृतिके मानव हैं। आप इतने प्रतिभाशाली व्यक्ति हैं कि एकान्त स्थानमें बैठे बैठे अपने विशाल कार्य भारका सुचारु रूपसे संचालन करते रहते हैं।

विद्यालयकी सुव्यवस्था और समाजके लोगोंकी धार्मिक अभिरुचिके कारण मेरा मुख्य स्थान सागर ही हो गया और मेरी आयुका बहुभाग सागरमें ही बीता।

८६

शाहपुरमें विद्यालय

शाहपुरमें पञ्चकल्याणक थे, प्रतिष्ठाचार्य श्रीमान् पं० मोतीलालजी वर्णी थे। यह नगर गणेशगंज स्टेशनसे डेढ़ मील दूर है, यहाँ पर पचास घर जैनियोंके हैं। प्रायः सभी सम्पन्न, चतुर और सदाचारी हैं। इस गांवमें कोई दस्सा नहीं, यहाँ पर श्री हजारीलाल सराफ व्यापारमें बहुत कुशल हैं। यदि यह किसी व्यापारी क्षेत्रमें होता तो शीघ्र ही समयमें सम्पत्तिशाली हो जाता परन्तु साथ ही एक ऐसी बात भी है जिससे समाजके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं हो पाता।

जिनके पञ्चकल्याणक थे वह सज्जन व्यक्ति हैं। उनका नाम हल्कूलालजी है। उनके चाचा वृद्ध हैं जिनका स्वभाव प्राचीन पद्धतिका है—विद्याकी ओर उनका बिलकुल भी लक्ष्य नहीं। मैंने बहुत समझाया कि इस ओर भी ध्यान देना चाहिये परन्तु उन्होंने टाल दिया। यहाँ पर एक लोकमणि दाऊ हैं, उनके साथ मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध था। उनसे मैंने कहा कि ऐसा उपाय करना चाहिये कि जिससे यहाँ पर एक पाठशाला हो जावे क्योंकि यह अवसर अनुकूल है, इस समय श्री जिनेन्द्र भगवान्के पञ्चकल्याणक होनेसे सब जनताके परिणाम निर्मल हैं, निर्मलताका उपयोग अवश्य ही करना चाहिये. दाऊ ने हमारी बातका समर्थन किया।

देवाधिदेव श्री जिनेन्द्रदेव का पाण्डुक शिला पर अभिषेक

खतौलीमें कुन्दकुन्द विद्यालय

एक बार बरुआसागरसे खतौली गया। यहाँ पर श्रीमान् भागीरथजी भी, जो मेरे परम हितैषी बन्धु एवं प्राणीमात्रको मोक्षमार्गमें प्रवृत्ति करानेवाले थे, मिल गये। यहीं पर श्री दीपचन्द्रजी वर्णी भी थे। उनके साथ भी मेरा परम स्नेह था। हम तीनोंकी परस्पर घनिष्ठ मित्रता थी।

एक दिन तीनों मित्र गङ्गाकी नहर पर भ्रमणके लिये गये। वहीं पर सामायिक करनेके बाद यह विचार करने लगे कि यहाँ एक ऐसे विद्यालयकी स्थापना होनी चाहिये जिससे इस प्रान्तमें संस्कृत विद्याका प्रचार हो सके। यद्यपि यहाँ पर भाषाके जाननेवाले बहुत हैं जो कि स्वाध्यायके प्रेमी तथा तत्त्व चर्चामें निपुण हैं तथापि मूल ग्रन्थ अध्ययनके बिना ज्ञानका पूर्ण विकास नहीं हो पाता।

यहाँ पं. धर्मदासजी, लाला किशोरीलालजी, लाला मंगत ...मजी, लाला विश्वम्भरदासजी, लाला बाबूलालजी, लाला ...घोड़ीमल्लजी, तथा श्री महादेवी आदि तत्त्व विद्याके अच्छे ...नकार हैं। पं. धर्मदासजी तो बहुत ही सूक्ष्म बुद्धि हैं। आपको ...म्मटसारादि ग्रन्थोंका अच्छा अभ्यास है। इनमें जो लाला ...ामल्लजी हैं वे बहुत ही विवेकी हैं। मैं जब खुरजा विद्या-...में अध्ययन करता था तब आप भी वहाँ अध्ययन करनेके आये थे।

एक दिन आपने यह प्रतिज्ञा ली कि हम व्यापारमें सदा सत्य बोलेंगे। आप तीन भाई थे, आपके पिताजी अच्छे पुरुष थे—धनाढ्य भी थे। पिताजीने लाला किशोरीमल्लजीको आज्ञा दी कि दुकानपर बैठा करो। आज्ञानुसार आप दुकानपर बैठने लगे। जो ग्राहक आता उसे आप सत्य मूल्य ही कहते थे परन्तु चूं कि आजकल मिथ्या व्यवहार की बहुलता है इसलिये ग्राहक लोगोंसे इनकी पटरी न पटे। यह कह 'अमुक वस्त्र एक रुपया गज मिलेगा।' ग्राहक लोग वर्तमान प्रणालीके अनुसार कहें—'बारह आना गज दोगे।' यह कहें—'नहीं।' ग्राहक फिर कहें—'अच्छा साढ़े बारह आना गज दोगे।' यह कहे—'नहीं।' इस प्रकार इनकी दुकानदारीका ह्रास होने लगा।

जब इनके पिताजीको यह बात मालूम हुई तब उन्होंने किशोरीमल्लजीको बहुत भरसना की और कहा कि तू बहुत नादान है, समयके अनुकूल व्यापार होता है, जब बाजारमें सभी मिथ्या भाषण करते हैं तब क्या तू हरिश्चन्द्र बनकर दुकान चला सकेगा? कुछ दिन बाद दुकानको ध्वस्त कर देगा।

लाला किशोरीमल्लजी बोले—'पिताजी! अन्तमें सत्यकी ही विजय होती है, अन्यायसे धन अर्जन करना मुझे इष्ट नहीं है। जितने दिनका जीवन है सूखी रोटीसे भले ही पेट भर लूंगा परन्तु अन्यायसे धनार्जन न करूंगा। किसी कविने कहा है—

> 'अन्यायोपार्जितं वित्तं दश वर्षाणि तिष्ठति।
> प्राप्ते त्वेकादशे वर्षे समूलं च विनश्यति ॥

यदि आपको मेरा व्यापार इष्ट नहीं है तो आप मुझे पृथक् कर दीजिये। मेरे भाग्यमें जो होगा उसके अनुसार मेरी दशा होगी आप चिन्ता छोड़िये '

वहांसे चलकर सागर आ गया। जब बाईजीसे प्रणाम किया तो उन्होंने कहा—'बेटा! बनारससे लँगड़ा आम नहीं लाये?' मैंने कहा—'बाईजी! लाया तो था परन्तु शाहपुरमें बाँट आया।'

उन्होंने कहा—'अच्छा किया, परन्तु एक बात मेरी सुनो दान करना उत्तम है परन्तु शक्तिको उल्लंघन कर दान करनेकी कोई प्रतिष्ठा नहीं। प्रथम तो सबसे उत्तम दान यह है कि इन अपने आपको दान देनेवाला न मानें, अनादि काळसे हमने अपनेको नहीं जाना, केवल परको अपना मान यों ही अनन्तकाल बिता दिया और चतुर्गति रूप संसारमें कर्मानुकूल पर्याय पाकर अनेक संकट सहे। संकटसे मेरा तात्पर्य है कि असख्यात विकल्प-कषायोंके कर्ता हुए क्योंकि कषायके विकल्प ही तो संकटके कारण हैं। जितने विकल्प कषायोंके हैं उतने ही प्रकारकी आकुलता होती है और आकुलता ही दुःखकी पर्याय है। कषाय वस्तु अन्य है और आकुलता वस्तु अन्य है। यद्यपि सामान्य रूपसे आकुलता कषायसे अतिरिक्त विभिन्न नहीं मालूम होती तो भी सूक्ष्म विचारसे आकुलता और कषायमें कार्यकारण भाव प्रतीत होता है। अतः यदि सत्यसुखकी इच्छा है तो यह कर्तृत्व-बुद्धि छोड़ो कि मैं दाता हूं। यह निश्चित है जबतक अहंकारता न जावेगी तबतक बन्धन ही में फसे रहोगे। जब कि यह सिद्धांत है कि सब द्रव्य पृथक् पृथक् हैं। कोई किसीके आधीन नहीं तब कर्तृत्वका अभिमान करना व्यर्थ है।'

मैं बाईजीकी बात सुनकर चुप रह गया।
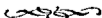
यहां पर श्री पन्नालालजी मनेजरने सब प्रकारकी सुविधा कर दी। आप ही ऐसे मैनेजर तेरापन्थी कोठीको मिले कि जिनके द्वारा यह स्वर्ग बन गई। विशाल सरस्वती भवन तथा मन्दिरोंकी सुन्दरता देख चित्त प्रसन्न हो जाता है। श्रीपार्श्वनाथ की प्रतिमा तो चित्तको शान्त करनेमें अद्वितीय निमित्त है। यद्यपि उपादानसे कार्य होता है परन्तु निमित्त भी कोई वस्तु है। मोक्षका कारण रत्नत्रयकी पूर्णता है परन्तु कर्मभूमि चरम शरीर आदि भी सहकारी कारण हैं।

सायंकालका समय था हम सब लोग कोठीके बाहर चबूतरा पर गये। वहीं पर सामायिकादि क्रिया कर तत्व चर्चा करने लगे। जिस क्षेत्रसे अनन्तानन्त चौबीसी मोक्ष प्राप्त कर चुकीं वहांकी पृथिवीका स्पर्श पुण्यात्मा जीवको ही प्राप्त हो सकता है। रह रह कर यही भाव होता था कि हे प्रभो! कब ऐसा सुअवसर आवे कि हम लोग भी दैगम्बरी दीक्षा अवलम्बन कर इस दुःखमय जगत् से मुक्त हों।

बाईजीका स्वास्थ्य श्वास रोगसे व्यथित था अतः उन्होंने कहा- 'भैया आज ही यात्राके लिये चलना है इसलिए यहांसे जल्दी स्थान पर चलो और मार्गका जो परिश्रम है उसे दूर करनेके लिये शीघ्र आरामसे सो जाओ पश्चात् तीन बजे रात्रिसे यात्रा के लिये चलेंगे।' आज्ञा प्रमाण स्थान पर आये और सो गये, दो बजे निद्रा भंग हुई पश्चात् शौचादि क्रियासे निवृत्त होकर एक डोली मगाई। बाईजी को उसमें बैठाकर हम सब श्रीपार्श्वनाथ स्वामीकी जय बोलते हुए गिरिराजकी वन्दनाके लिये चल पड़े।

गन्धर्व नाला पर पहुंचकर सामायिक क्रिया की वहांसे चल-मान बजे श्रीकुन्थुनाथ स्वामीकी वन्दना की। वहांसे सब

टोंकोंकी यात्रा करते हुए हम धले श्रीपार्श्वनाथ स्वामीकी टोंक पर पहुंच गये। आनन्दसे श्रीपार्श्वनाथ स्वामी और गिरिराज की पूजा की, चित्त प्रसन्नतासे भर गया। बाईजी तो आनन्दमें इतनी निमग्न हुईं कि पुलकित वदन हो उठीं और गद्गद् स्वरमें हमसे कहने लगीं कि—

'भैया! अब हमारा पर्याय तीन माहकी है अतः तुम हमें दूसरी प्रतिमाके व्रत दो।'

मैंने कहा—'बाईजी! मैं तो आपका बालक हूं, आपने चालीस वर्ष मुझे बालकवत् पुष्ट किया, मेरे साथ आपने जो उपकार किया है उसे आ जन्म नहीं विस्मरण कर सकता, आपकी सहायतासे ही मुझे दो अक्षरोंका बोध हुआ, अथवा बोध होना उतना उपकार नहीं जितना उपकार आपका समागम पाकर कषाय मन्द होनेसे हुआ है। आपकी शांतिसे मेरी क्रूरता चली गई और मेरी गणना मनुष्योंमें होने लगी। यदि आपका समागम न होता तो न जाने मेरी क्या दशा होती? मैंने द्रव्य सम्बन्धी व्यग्रताका कभी अनुभव नहीं किया, दान देनेमें मुझे संकोच नहीं हुआ, वस्त्रादिकोंके व्यवहारमें कभी कृपणता न की, तीर्थयात्रादि करनेका पुष्कल अवसर आया ..इत्यादि भूरिशः आपके उपकार मेरे ऊपर हैं। आप जिस निरपेक्ष वृत्तिसे व्रत को पालती हैं मैं उसे कहनेमें असमर्थ हूं। और जब कि मैं आपको गुरु मानता हूं तब आपको व्रत दूं यह कैसे सम्भव हो सकता है?'

बाईजीने कहा—'बेटा! मैंने जो तुम्हारा पोषण किया है वह स्वयं मेरे मोहका कार्य है फिर भी मेरा यह भाव था कि तुझे साक्षर देखूं। तूने पढ़नेमें परिश्रम नहीं किया बहुतसे कार्य

जाऊं ? आज मेरी भ्रान्ति दूर हुई। जो मैंने पाप किया उनका आपके समक्ष प्रायश्चित्त लेती हूं वह यह कि आजन्म एक बार भोजन करूंगी भोजनके बाद दो बार पानी पीऊंगी, अनर्थादिक वस्तुका भक्षण न करूंगी, भगवानकी पूजाके बिना भोजन न करूंगी, रात्रिके समय भोजन न करूंगी, यदि विशेष बाधा हुई तो जलपान कर लूंगी, यदि उससे भी सन्तोष न हुआ तो औषधि स्वादरहित औषध आहार ले लूंगी, प्रतिदिन शास्त्रका स्वाध्याय करूंगी, मेरे पतिकी जो सम्पत्ति है उसे धर्म कार्यमें व्यय करूंगी, अष्टमी चतुर्दशीका उपवास करूंगी, यदि शक्ति हीन हो जावेगी तो एक बार नीरस भोजन करूंगी, केवल चार रस भोजनमें रखूंगी, एक दिनमें तीनका ही उपयोग करूंगी।

इस प्रकार आलोचना कर डेरामें मैं आ गई और सासको जो कि पुत्रके विरहमें बहुत ही खिन्न थी समझाया—

मातारान ! जो होना था वह हुआ, अब खेद करनेसे क्या लाभ ? आपकी सेवा मैं करूंगी, आप सानन्द धर्मसाधन कीजिये। यदि आप खेद करेंगी तो मैं सुतरां खिन्न होऊंगी अतः आप मुझे ही पुत्र समझिये। मेलाके लोग इस प्रकार मेरी बात सुनकर प्रसन्न हुए।

पावागढ़से गिरनार जी गये और वहांसे जो तीर्थ मार्गमें मिले सबकी यात्रा करते हुए सिनरा आ गये। फिर क्या था ? सब कुटुम्बी आ आकर मुझे पति वियोगके दुःखका स्मरण कराने लगे। मैंने सबसे सान्त्वना पूर्वक निवेदन किया कि जो होना था सो तो हो गया अब आप लोग उनका स्मरणकर व्यर्थ खिन्न मत हूजिये। खिन्नताका पात्र तो मैं हूं परन्तु मैंने तो यह विचारकर सन्तोष कर लिया कि पूर्व जन्ममें जो कुछ पाप कर्म मैंने किये थे यह उन्हींका फल है। परमार्थसे मेरे पुण्य कर्मका

व्यय है। यदि उनका समागम रहता तो निरन्तर आयु विषय भोगोंमें जाती, अभक्ष्य भक्षण करती और दैवयोगसे यदि सन्तान हो जाती तो निरन्तर उसके मोहमें पर्याय घात जाती। आत्मकल्याणसे वञ्चित रहती, जिस संयमके अर्थ सत्समागम और मोह मन्द होनेकी महती आवश्यकता है तथा सबसे कठिन ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करना है वह व्रत मेरे पतिके वियोगसे अनायास हो गया।

जिस परिग्रहके त्यागके लिए अच्छे अच्छे जीव तरसते हैं और मरते मरते उससे विमुक्त नहीं हो पाते पतिके वियोगसे वह व्रत मेरे सहजमें हो गया। मैंने नियम लिया है कि जो सम्पत्ति मेरे पास है उससे अधिक नहीं रखूँगी तथा यह भी नियम किया कि मेरे पतिकी जो पचास हजार रुपयाकी साहूकारी है उसमें सौ रुपया तक जिन किसानोंके ऊपर है वह सब मैं छोड़ती हूँ तथा सौ रुपया से आगे जिनके ऊपर है उनका ब्याज छोड़ती हूँ वे असली रकम बिना ब्याजके अदा कर सकते हैं। आजसे एक नियम यह भी लेती हूँ कि जो कुछ रुपया किसानोंसे आवेगा उसे संग्रह न करूँगी धर्मकार्य और भोजनमें व्यय कर दूँगी। आप लोगोंसे मेरी सादर प्रार्थना है कि आजसे यदि आप लोग मेरे यहाँ आवें तो दोपहर बाद आवें प्रातःकालका समय मैं धर्मकार्यमें लगाऊँगी।....कृपक महाशय मेरी इस प्रवृत्तिसे बहुत प्रसन्न हुए।

इधर राज्यमें यह बात फैल गई कि विद्यावतीकी निर्धनता पति गुजर गया है अतः उसका धन राज्यमें लेना चाहिये और उसको पाठशालाके लिये तीन रुपया मासिक देना चाहिये। परन्तु [illegible] राजाने यह सुना तब [illegible] [illegible] नहीं है [illegible] [illegible] [illegible]

सवालनवीसके मकानमें रहने लगी आनन्दसे दिन बीते। यहां पर सिंघई मौजीलालजी बड़े धर्मात्मा पुरुष थे। वह निरन्तर मुझे शास्त्र सुनाने लगे। शहरमें प्रायः गोलापूर्व समाजके घर हैं प्रायः सभी धार्मिक हैं, यहां पर स्त्री समाजका मेरे साथ घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया, यहां अधिकांश घरोंमें शुद्ध भोजनकी प्रक्रिया है। मैं जिस मकानमें रहती थी उसीमें कुन्दनलाल घी-वाले भी रहते थे जो एक विलक्षण प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। इस प्रकार मेरा तीस वर्षका काल सागरमें आनन्दसे बीता। अन्तमें कटरा संघके साथ यह मेरी अन्तिम यात्रा है। मेरा अधिकांश जीवन धर्मध्यानमें ही गया। मेरी श्रद्धा जैनधर्ममें ही आजन्मसे रही। पर्याय भरमें मैंने कभी कुदेवका सेवन नहीं किया। केवल इस बालकके साथ मेरा स्नेह हो गया सो उसमें भी मेरा यही अभिप्राय रहा कि यह मनुष्य हो जावे और इसके द्वारा जीवोंका कल्याण हो। मेरा भाव यह कभी नहीं रहा कि वृद्धावस्थामें यह मेरी सेवा करेगा। अस्तु, मेरा कर्तव्य था अतः उसका पालन किया।

हे प्रभो! यह मेरी आत्मकथा है जो कि आपके ज्ञानमें यद्यपि प्रतिभासित है तथापि मैंने निवेदन कर दी। क्योंकि आपके स्मरणसे कल्याणका मार्ग सुलभ हो जाता है ऐसा मेरा विश्वास है। इत्यादि आलोचना कर बाईजीने व्रत ग्रहण किया फिर वहांसे चलकर हम सब तेरापन्थी कोठीमें आगये।

यहां पर पं. पन्नालालजीने कहा कि बाईजीका स्वास्थ्य अच्छा नहीं अतः यहीं पर रह जाओ। हम सब उनकी वैयावृत्त्य करेंगे। परन्तु बाईजीने कहा—'नहीं, यद्यपि स्थान उत्तम है परन्तु यहां सब साधन नहीं अतः मैं जाऊंगी वहां ही सब साधनको

सवालनवीसके मकानमें रहने लगी आनन्दसे दिन बीते। यहां पर सिंघई मौजीलालजी बड़े धर्मात्मा पुरुष थे। वह निरन्तर मुझे शास्त्र सुनाने लगे। कटरामें प्रायः गोलापूर्व समाजके घर हैं प्रायः सभी धार्मिक हैं, यहां पर स्त्री समाजका मेरे साथ घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया, यहां अधिकांश घरोंमें शुद्ध भोजनकी प्रक्रिया है। मैं जिस मकानमें रहती थी उसीमें कुन्दनलाल घी-वाले भी रहते थे जो एक विलक्षण प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। इस प्रकार मेरा तीस वर्षका काल सागरमें आनन्दसे बीता। अन्तमें कटरा संघके साथ यह मेरी अन्तिम यात्रा है। मेरा अधिकांश जीवन धर्मध्यानमें ही गया। मेरी श्रद्धा जैनधर्ममें ही आनन्दसे रही। पर्य्याय भरमें मैंने कभी कुदेवका सेवन नहीं किया। केवल इस बालकके साथ मेरा स्नेह हो गया सो उसमें भी मेरा यही अभिप्राय रहा कि यह मनुष्य हो जावे और इसके द्वारा जीवोंका कल्याण हो। मेरा भाव यह कभी नहीं रहा कि वृद्धावस्थामें यह मेरी सेवा करेगा। अस्तु, मेरा कर्तव्य था अतः उसका पालन किया।

हे प्रभो! यह मेरी आत्मकथा है जो कि आपके ज्ञानमें यद्यपि प्रतिभासित है तथापि मैंने निवेदन कर दी। क्योंकि आपके स्मरणसे कल्याणका मार्ग सुलभ हो जाता है ऐसा मेरा विश्वास है। इत्यादि आलोचना कर बाईजीने व्रत ग्रहण किया फिर वहांसे चलकर हम सब तेरापन्थी कोठीमें आगये।

[illegible] ने कहा कि बाईजीका स्वास्थ्य अच्छा [illegible] यह [illegible] हम लोग उनको वैयावृत्य [illegible] [illegible]

१०१

श्रीबाईजीका समाधिमरण

बाईजीका स्वास्थ्य प्रतिदिन शिथिल होने लगा। मैंने बाईजीसे आग्रह किया कि आपकी अन्तर्व्यवस्था जाननेके लिये डाक्टरसे आपका फोटो (एक्सरा) उतरवा लिया जावे। बाईजी ने स्वीकार नहीं किया। एक दिन मैं और वर्णी मोतीलालजी बैठे थे बाईजीने कहा 'भैया! मैं शिखरजी में प्रतिज्ञा कर आई हूं कि कोई भी सचित्त पदार्थ नहीं खाऊंगी। फल आदि चाहे सचित्त हों चाहे अचित्त हों नहीं खाऊंगी। दवाई में कोई रस नहीं लाऊंगी, गेहूं दलिया और घी नमकको छोड़कर कुछ न खाऊंगी। दवाईमें अलसी अजवाइन और हर्र छोड़कर अन्य कुछ न खाऊंगी।'

उसी समय उन्होंने शरीर पर जो आभूषण थे उतार दिये, बाल कटवा दिये, एक बार भोजन और एक बार पानी पीनेका नियम कर लिया। प्रातःकाल मन्दिर जाना वहांसे आकर शास्त्र स्वाध्याय करना पश्चात् दस बजे एक छटाक दलियाका भोजन करना शामको चार बजे पानी पीना और दिन भर स्वाध्याय करना यही उनका कार्य था। यदि कोई अन्य कथा करता तो वे उसे स्पष्ट आदेश देतीं कि बाहर चले जाओ।

पन्द्रह दिन बाद जब मन्दिर जानेकी शक्ति न रही तब

हमने एक ठेला बनवा लिया उसीमें उनको मन्दिर ले जाते थे। पन्द्रह दिन बाद वह भी छूट गया, कहने लगीं कि हमें जानेमें कष्ट होता है अतः यहींसे पूजा कर लिया करेंगे। हम प्रातः काल मन्दिरमें जल पुष्प लाते थे और बाईजी एक चौकीपर बैठे बैठे पूजन पाठ करती थीं। मैं ९ बजे दलिया बनाता था और बाईजी दस बजे भोजन करती थीं। एक मास बाद आध छटाँक भोजन रह गया फिर भी उनकी श्रवण शक्ति ज्यों की त्यों थी।

इस भयंकर रोगके कारण बाईजी लेट नहीं सकती थीं, केवल एक तकियाके सहारे चौबीस घण्टा बैठी रहती थीं। कभी मैं, कभी मुलाबाई, कभी वर्णी मोतीलालजी, कभी पं० दयाचन्द्रजी और कभी लालाजी राय बहादुर निरञ्जन बाईजीको धर्मशास्त्र सुनाते रहते थे। बाईजीको कोई व्यग्रता न थी, उन्होंने कभी भी रोग जन्य 'हाय हाय,' या 'हे प्रभो क्या करूँ' या 'जल्दी मरण आ जावे' या 'कोई ऐसी औषधि मिल जावे जिससे मैं शीघ्र ही नीरोग हो जाऊँ' ऐसे शब्द उच्चारण नहीं किये।

यदि कोई आता और पूछता कि 'बाईजी! कैसी तबियत है?' तो बाईजी यही उत्तर देतीं कि यह पूछनेकी आवश्यकता नहीं, आपको जो पाठ आता हो सुनाओ, अन्य बात मत करो।'

एक दिन मैं एक वैद्यको लाया जो अत्यन्त प्रसिद्ध था। वह बाईजीका हाथ देखकर बोला कि दवाई खानेसे अच्छा हो सकता है। मैंने वैद्यसे कहा—क्या यह अच्छा होगा? उसने कहा—'यह हम नहीं कह सकते।' बाईजीने कहा—'तो महाराज जाइये और कभी ... मुझे न कोई रोग है और न कोई ... चाहती हूँ ... [illegible] [illegible]

और न हमारी राखी रह सकती है। जो चीज उत्पन्न होती है उसका नाश अवश्यम्भावी है। खेद इस बातका है कि यह नहीं मानता। कभी वैद्यको लाता है और कभी हकीमको। मैं औषधिका निषेध नहीं करती। मेरे नियम है कि औषध नहीं खाना। दो मासमें पर्याय छूट जावेगी इससे जहां तक बने परमात्माका स्मरण कर लूं यही परलोकमें साथ जावेगा। जन्म भर इसका सहवास रहा। इसके सहवाससे तीर्थयात्राएं कीं, व्रत तप किये, स्वाध्याय किया, धर्मकार्योंमें सहकारी जान इसकी रक्षा की परन्तु अब यह रहनेका नहीं अतः इससे न हमारा प्रेम है न द्वेष है।'

वैद्यने मुझसे कहा कि 'बाईजीका जीव कोई महान् आत्मा है। अब आप भूल कर भी किसी वैद्यको न लाना, इनका शरीर एक मासमें छूट जावेगा। मैंने ऐसा रोगी आज तक नहीं देखा।' यह कह वैद्यराज चले गये।

उनके जानेके बाद बाईजी बोलीं कि तुम्हारी बुद्धिको क्या कहूँ ? जो रुपया वैद्यराजको दिया यदि उसीका अन्न मंगाकर गरीबोंको बांट देते तो अच्छा होता...अब वैद्यको न बुलाना।

बाईजीका शरीर प्रतिदिन शिथिल होता गया परन्तु उनकी स्वाध्याय रुचि और ज्ञान लिप्सा कम नहीं हुई। एक दिन बीनाके श्रीनन्दनलालजी आये और मुझसे मुकदमा सम्बन्धी बात करने लगे। बाईजीने तपक कर कहा-'भैया ! यहां अदालत नहीं अथवा वकीलका घर नहीं जो आप मुकदमाकी बात कर रहे हो कृपया बाहर जाइये और मुझसे भी कहा कि बाहर जाकर बात कर लो, यहां फालतू बात मत करो।'...इस तरह बाईजीकी दिन चर्या व्यतीत होने लगी।

बाईजीको निद्रा नहीं आती थी। केवल रात्रिके दो बजे बाद कुछ आलस्य आता था। हम लोग रात्रिदिन उनकी वैयावृत्यमें लगे रहते थे। जब बाईजीकी आयुका एक मास शेष रहा तब एक दिन श्रीलम्पूलालजी धीवालेने पूछा कि बाईजी! आपको कोई शल्य तो नहीं है। बाईजीने कहा—'अब कोई शल्य नहीं पर कुछ पहले एक शल्य अवश्य थी। वह यह कि बालक गणेश-प्रसाद जिसे कि मैंने पुत्रवत् पाला है यदि अपने पास कुछ द्रव्य रख लेता तो इसे कष्ट न उठाना पड़ता। मैंने इसे समझाया भी बहुत परन्तु इसे द्रव्य रक्षा करनेकी बुद्धि नहीं। मैंने जब जब इसे दिया इसने पाच या सात दिनमें सफा कर दिया। मैंने आजन्म इसका निर्वाह किया अब मेरा अन्त हो रहा है इसकी यह जाने मुझे शल्य नहीं मेरे पास जो कुछ था इसे दे दिया। एक पैसा भी मैंने परिग्रह नहीं रक्खा। मैं आपको विश्वास दिलाती हूं कि मेरे मरनेके बाद यह एक दिन भी मेरी दी हुई द्रव्य नहीं रख सकेगा परन्तु अच्छे कार्यमें लगावेगा असत् कार्यमें नहीं।'

' श्री लम्पूलालजीने कहा कि फिर इनका निर्वाह कैसे होगा? बाईजीने कहा कि अच्छी तरह होगा। जैसे मेरा इसके साथ कोई जाति सम्बन्ध नहीं था फिर भी मैंने इसे आजन्म पुत्रवत् पाला वैसे इसके निमित्तसे अन्य कोई मिल जावेगा। इसकी पर्यायगत योग्यता बड़ी बलवती है।'

बाईजीकी बात सुनकर लम्पू भैया हँस गये और उनके बाद सिंघईजी भी आये। वे भी हँसकर चले गये।

एक दिन मैंने बाईजीसे कहा—'बाईजी! यह शान्तिबाई सागरनमें आपका वैयावृत्य करती है इसे कुछ देना चाहिये।

उन्होंने मेरा वदन मलीन देखा और पूछा कि बाईजीकी तबियत कैसी है ? मैंने कहा—'अच्छी है।' वे बाईजीके पास गये। बाईजीने कहा—'सिघई भैया ! अनुप्रेक्षा सुनाओ।' वे अनुप्रेक्षा सुनाने लगे। परन्तु थोड़ी देरमें सुनाना भूलकर रुदन करने लगे। इस प्रकार जो जो आवे वही रोने लगे। तब बाईजीने कहा—'आप लोगोंका साहस इतना दुर्बल है कि आप किसीकी समाधि करानेके पात्र नहीं।'

इस प्रकार बाईजीका साहस प्रतिदिन बढ़ता गया। इसके बाद बाईजीने केवल आधी छटाक दलियाका आहार रक्खा और जो दूसरी बार पानी पीती थीं वह भी छोड़ दिया। सब ग्रन्थोंका श्रवण छोड़कर केवल रत्नकरण्ड श्रावकाचारमेंसे सोलह कारण भावना, दशधा धर्म, द्वादशानुप्रेक्षा और समाधिमरणका पाठ सुनने लगीं। जब आयुके दो दिन रह गये तब दलिया भी छोड़ दिया केवल पानी रक्खा और जिस दिन आयुका अवसान होनेवाला था उस दिन जल भी छोड़ दिया। उस दिन उनका बोलना बन्द हो गया। मैं बाईजीको स्मृति देखनेके लिए मन्दिरसे पूजनका द्रव्य लाया और अर्घ बनाकर बाईजीको देने लगा। उन्होंने द्रव्य नहीं लिया और हाथका इशारा कर जल मांगा। उससे हस्त प्रक्षालन कर गन्धोदककी वन्दना की। मैं फिर अर्घ देने लगा तो फिर उन्होंने हाथ प्रक्षालनके लिये जल मांगा पश्चात् हस्त प्रक्षालन कर अर्घ चढ़ाया। फिर हाथ जोड़कर बैठ गईं और स्लिट मांगी। मैंने स्लिट दे दी। उस पर उन्होंने लिखा कि तुम लोग आनन्दसे भोजन करो।

बाईजी तीन माससे उठ नहीं सकती थीं। उस दिन वे पलंग पर आ गईं चूंकि बड़ी [illegible] हुई। मैं समझा कि अब बाईजीका [illegible] हो गया अब इनका [illegible] धर्मध्यान अच्छा होने [illegible]

उन्होंने बाईजीको बैठा दिया। बाईजीने दोनों हाथ जोड़े 'ॐ सिद्धाय नमः' कहकर प्राण त्याग दिये। [पृ० ५४०]

मैं जब बाहर आया तब बाईजीने मोतीलालजीसे कहा कि अब हमको बैठा दो, उन्होंने बाईजीको बैठा दिया, 'बाईजीने दोनों हाथ जोड़े 'श्रीं सिद्धाय नमः' कह कर प्राण त्याग दिये । वर्णीजीने मुझे बुलाया शीघ्र आओ, मैंने कहा–'अभी तो बाईजीसे मेरी बातचीत हुई । मैंने पूछा था–'सिद्ध भगवान्‌का स्मरण है । उत्तर मिला था 'हां, तुम बाहर जाओ ।' अब मैं उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं कर सकता था। वर्णीजीने कहा कि 'आज्ञा देनेवाली बाईजी अब कहीं चली गई ? क्या ऊपर गई हैं ? वर्णीजी बोले—'बड़े बुद्धू हो, अरे वह तो समाधिमरण कर स्वर्ग सिधार गई । जल्दी आओ उनका अन्तिम शव तो देखो कैसा निश्चल आसन लगाये बैठी हैं ?' मैं अन्दर गया, सचमुच ही बाईजीका जीव निकल गया था सिर्फ शव बैठा था। देखकर अशरण भावनाका स्मरण हो आया—

'राजा राणा छत्रपति हाथिनके असवार ।
मरना सबको एक दिन अपनी-अपनी बार ॥
दलबल देवी देवता मात पिता परिवार ।
मरती बिरियाँ जीवको कोई न राखन हार॥'

उसी समय कार्तिकेय स्वामीके शब्दों पर स्मरण जा पहुँचा—

'जं किं चि वि उप्पण्णं तस्स विणासो हवेइ णियमेण ।
परिणामसरूवेण वि ण य किं वि वि सासयं अत्थि ॥
सीहस्सकमे पडियं सारंगं जह ण रक्खए को वि ।
तह मिच्चुणा वि गहियं जीवं वि ण रक्खए को वि ॥'

जो कोई वस्तु उत्पन्न होती है उसका विनाश नियमसे होता है, पर्यायरूप कर कोई भी वस्तु शाश्वत नहीं है । सिंहके पंजेके नीचे आये मृगकी जैसे कोई रक्षा नहीं कर सकता उसी प्रकार

मैं पुत्र रह गया, ललिताने एक हजार मनुष्योंका भोजन बनवाया और बारहवें दिन खिलाया! विद्यालयके छात्रोंको भी भोजन कराया, अनाथालयके बालक बालिकाओंको भी भोजन दिया तथा जितने मांगनेवाले (भिखारी) आये उन सबको भोजन दिया। पश्चात् जो बचा उसे पल्लेदारोंको जो सिंघईजी आदि की दुकानों पर काम करते थे दे दिया। फिर भी जो बचा वह बाईजीका काम करनेवाली औरतोंको बांट दिया।

बारह दिनके बाद बाईजीके जो वस्त्रादि थे वे ललिता और शान्तिबाईको दे दिये। इस बांटनेमें ललिता और शान्तिमें परस्पर मनोमालिन्य हो गया। वास्तवमें परिग्रह ही पापकी जड़ है। ललिताने एक दिन मुझसे कहा—'भैया! एकान्तमें चलो।' मैं गया तब एक डबुलिया उसने दी उसमें ५००) का माल था। उसने कहा—'बाईजी! मुझे दे गई हैं!' मैंने कहा—'तुम रक्खो।' उसने कहा—'मुझे आवश्यकता नहीं, न जाने कौन चुरा ले जायगा?'

इन कार्योंसे निश्चिन्त होकर मैं रहने लगा परन्तु उपयोग नहीं लगता था। मुलाबाईने बहुत समझाया—'भैया! अब चिन्ता छोड़ो, बाईजी तो गईं मैं आपको भोजन बनाकर खिलाऊंगी।' मैंने कहा—'मुलाबाई! मेरे पास जो कुछ था वह तो मैं दे चुका अब मेरे पास एक पैसा भी नहीं है, किसीसे मांगनेकी आदत नहीं। यद्यपि सिंघईजी सब कुछ करनेको तैयार हैं परन्तु मांगनेमें लज्जा आती है।'

सान्त्वना देती हुई मुलाबाई बोलीं—'भैया! कुछ चिन्ता मत करो, मेरे पास जो कुछ है उससे आप निर्वाह करेंगे, बहुत कुछ है, मैंने आपको बड़ा भाई माना है आखिर मेरा धन कब

परन्तु पुन वहाँ वह लोकोक्ति बार-बार याद आती रही। दो दिन वहाँ रहा पश्चात् सागर चला आया और जिस मकानमें रहता था उसीमें रहने लगा। बहुत कुछ उपाय किये पर चित्त शान्त नहीं हुआ। आषाढ़का महीना था अतः कहीं जा भी नहीं सकता था।

यदि आप भी निमित्तकी प्रधानता पर विशेष आग्रह करते हैं तो हम कुछ नहीं बोलना चाहते। आपकी इच्छा हो सो कीजिये। अथवा मेरी तो यह श्रद्धा है कि इच्छासे कुछ नहीं होता जो होनेवाला कार्य है वह अवश्य होता है। बाईजीका एक विलक्षण जीव था जो कि योग्य कार्यके करनेमें ही अपना उपयोग लगाता था। अब आपको शिक्षा देनेवाला वह जीव नहीं रहा अतः आपकी प्रवृत्ति स्वच्छन्द हो गई है। हम तो आपके प्रेमी हैं प्रेम वश अपने हृदयकी बात आपके सामने प्रकट करते ही हैं। आपका जिसमें कल्याण हो वह कीजिये....।'

बाईजीका नाम सुनकर पुनः उनके अपरिमित उपकारोंका स्मरण हो आया। मैंने सिंघई जवाहरलालजीको कुछ उत्तर नहीं दिया और दूसरे दिन श्री नैनागिरिको चला गया।

यहां पर एक धर्मशाला है उसीमें ठहर गया, साथमें कमला-पति सेठ भी थे। धर्मशालाके बाहर एक उच्च स्थान पर अनेक जिनालय हैं। जिनालयोंके सामने एक सरोवर है, उसके मध्य भागमें एक विशाल जैन मन्दिर है जिसके दर्शनके लिये एक पुल बना हुआ है। मन्दिरको देखकर पावापुरके जल मन्दिरका स्मरण हो आता है। मन्दिरके बनानेवाले सेठ जवाहरलालजी नावदावाले थे। सामने ही एक छोटी सी पहाड़ी पर अनेक जिन मन्दिर विद्यमान हैं। वहां पहुंचनेका मार्ग सरोवरके बांध परसे है। पहाड़ीकी दूरी एक फर्लांग होगी। मन्दिरोंके दर्शनादि कर भव्य पुण्योपार्जन करते हुए संसार स्थितिके छेदका उपाय करते हैं।

यहांपर हम लोग दो दिन रहे। सागरसे सिंघईजी आदि भी आ गये जिससे बड़े आनन्दके साथ काल बीता। सिंघईजी

आप कपड़ेका व्यापार करते थे। एकबार आप कपड़ा बेचनेके लिये बछौड़ा गये थे। वहां जिनके मकानमें ठहरे थे उनके एक पांच वर्षका बालक था वह प्रायः भायजीके पास खेलनेके लिये आ जाता था। उस दिन आया और आध घण्टा बाद चला गया। उसकी मां ने उसके बदनसे अंगुलियां उतारीं तो उसमें उसके एक हाथका चांदीका कड़ा निकल गया। मां ने विचार किया कि भायजी साहबने उतार लिया होगा। वह उनके पास आई और बोली कि भायजी! यहां इसका चूरा तो नहीं गिर गया? भायजी उसका मनका पाप समझ गये और बोले कि हम कपड़ा बेचकर देखेंगे कहीं गिर गया होगा। वह वापिस चली गई, आपने शीघ्र ही सुनारके पास जाकर पांच तोलेका कड़ा बनवाकर बालककी मांको सौंप दिया। मां कड़ा पाकर प्रसन्न हुई। भायजी साहब बजार चले गये, दूसरे दिन जब बालककी मां बालकको अंगुलिया पहिराने लगी तब कड़ा निकल पड़ा। मनमें बड़ी आत्मनिन्दा हुई और जब बजारसे भायजी साहब आये तब कहने लगी कि मुझसे बड़ी गलती हुई, व्यर्थ ही आपको कड़ा लेनेका दोष लगाया। भायजी साहबने कहा 'कुछ हर्ज नहीं वस्तु खो जाने पर सन्देह हो जाता है अब यह कड़ा रहने दो।'

एक बारकी बात है आप ललितपुरसे घोड़ा पर कपड़ा लेकर घर जा रहे थे। अटवीके बीचमें सामायिकका समय हो गया। साथियोंने कहा-'एक मील और चलिये यहां घनी अटवी है इसमें चोरोंका डर है।' भायजी साहब बोले-'आप लोग जाइये हम तो सामायिकके बाद ही यहांसे चलेंगे और घोड़ा परसे कपड़े का गट्ठा उतार कर घोड़ाको बांध दिया तथा आप सामायिकके लिये बैठ गये। इतनेमें चोर आये और कपड़ेके गट्ठे लेकर चले गये। थोड़ी दूर जाकर चोरोंके दिलमें विचार आया कि हम लोग जिसका कपड़ा चुरा लाये वह बेचारा मूर्तिकी तरह बैठा

नहीं होता। यहां पर पं० हीरालालजी एक प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। आप चाहें तो समाजका बहुत कुछ उपकार कर सकते हैं परन्तु आपका लक्ष्य इस ओर नहीं। प्रथम तो संसारमें मनुष्य जन्म मिलना अति कठिन है फिर मनुष्य जन्म मिलकर योग्यताकी प्राप्ति अति दुर्लभ है, योग्यताको पाकर जो स्वपरोपकार नहीं करते वे अत्यन्त मूढ़ हैं। मूढ़ हैं...यह लिखना आपेक्षिक है, यावत्प्राणी हैं सब अपने अपने अभिप्रायसे प्रवृत्ति करते हैं किन्तु इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि जिस क्रियाके करनेसे अपनी आत्माको कलुषताका सामना करना पड़े तथा धक्का पहुंचे वह कार्य करना अवश्य हेय है। संसार है इसमें जो न हो वह अल्प है।

यहांसे चलकर एक राजधानीमें आया उसका नाम नहीं लिखना चाहता। यहां भट्टारकके शिष्य थे जो बहुत ही योग्य एवं विद्वान् थे, आपका राजाके साथ मैत्रीभाव था। एक वर्ष वहांमें पानीका अकाल पड़ा, खेती सूखने लगी, प्रजामें त्राहि त्राहि मच गई। प्रजागणने राजासे कहा—'महाराज ! पानी न बरसनेका कारण यह है कि यहां पर जैनगुरु भट्टारकका एक चेला रहता है, वह ईश्वरको सृष्टिकर्ता नहीं मानता, परमात्मा निखिल जगत्‌का नियन्ता है, उसी की अनुकम्पासे विश्वके प्राणी सुखके पात्र होते हैं, उसीकी अनुकम्पासे प्राणी अनेक आपत्तियोंसे सुरक्षित रहते हैं अतः उस भट्टारकके शिष्यको यहांसे निकाल दीजिये जिससे देशव्यापी आपत्ति टल जावे।

राजाने कहा—'यह तुम लोगोंकी भ्रान्ति है। मनुष्योंके पुण्य पापके आधीन सुख दुःख होता है भगवान् तो सिर्फ साक्षीभूत हैं। अथवा कल्पना करो कि भगवान् ही कर्ता है परन्तु फल तो जैसा हम लोग पुण्य पाप करेंगे वैसा ही होगा जैसे हम राजा हैं

कह दो—'महाराज! आप मेरा राज्य छोड़कर अन्य स्थानमें चले जाईये, आपके रहनेसे हमारी प्रजामें क्षोभ रहता है।'

दरवान पाण्डेजीके पास गया और कहने लगा कि महाराज! आपको राजाज्ञा है कि राज्यसे बाहर चले जाओ। पाण्डेजीने कहा कि महाराजसे कह दो कि आपकी आज्ञाका पालन होगा परन्तु आप एक बार मुझसे मिल जावें। दरवानने आकर महाराजको पाण्डेजीका सदेश सुना दिया। महाराजने पाण्डेजीके पास आना स्वीकृत कर लिया।

पाण्डेजीने दरवानके जानेके बाद मन्त्रराजका आराधन किया। महाराज जब पाण्डेजीके यहाँ आनेको उद्यत् हुए तब कुछ कुछ बादल उठे और जब उनके पास पहुंचे तब अखण्ड मूसलधारा वर्षा होने लगी। आपका जब पाण्डेजीसे समागम हुआ तब आपने बहुत ही प्रसन्नता प्रकट की और कहा कि महाराज! मैं अपनी आज्ञा वापिस लेता हूँ।

पाण्डेजी बोले—'आपकी इच्छा, परन्तु आपने प्रजाके कहे अनुसार राज्यसे बाहर जानेकी आज्ञा तो दे ही दी थी। यह तो विचारना था कि मैं कौन हूँ? क्या मुझमें पानी रोकनेकी सामर्थ्य है। मुझमें क्या किसीमें यह सामर्थ्य नहीं। जीवन मरण सुख दुख ये सब प्राणियोंके पुण्य पापके अनुसार होवे हैं। तथाहि—

> सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीय-
> कर्मोदयान्मरणजीवितदुःखसौख्यम् ।
> अज्ञानमेतदिह यत्तु परः परस्य
> कुर्यात् पुमान् मरणजीवितदुःखसौख्यम् ।

इस लोकमें जीवोंके जो मरण जीवन सुखदुःखादि सब वे सदा काल नियम पूर्वक अपने अपने कर्मोदयसे होते हैं।

माल मिलता है। महाराज छतरपुर भी मेलामें पधारते हैं, वहांसे चलकर तीन दिन बाद पन्ना पहुंच गये। वहां पर बाबू गोविन्दलालजी भी आ गये, आप गयाके रहनेवाले हैं, आपको पचहत्तर रुपया पेन्सन मिलती है, आप संसारसे अत्यन्त उदास हैं, आपने गयाके प्राचीन मन्दिरमें हजारों रुपये लगाये हैं, एक हजार रुपया स्याद्वाद विद्यालय बनारसको प्रदान किये हैं और तीन हजार रुपया फुटकर खर्च किये हैं। आपका समय धर्म ध्यानमें जाता है, आप निरन्तर सत्समागममें रहते हैं।

यहां पर हम लोग सिंघई रामरतनके घर पर ठहर गये। आपके पुत्र पौत्रादि सब ही अनुकूल हैं, आप आतिथ्यसत्कारमें पूर्ण सहयोग देते हैं, हमको पन्द्रह दिन नहीं जाने दिया, हम लोगों ने बहुत कुछ कहा परंतु एक न सुनी।

पन्द्रह दिनके बाद चलकर दो दिनमें पडरिया आये। वहां तीन दिन रहना पड़ा। यहां सबसे विलक्षण बात यह हुई कि एक आदमी ने यहां तक हठकी कि यदि आप हमारे घर भोजन नहीं करेंगे। तो हम अपघात कर लेंगे। अनेक प्रयत्न करने पर वहांसे निकल पाये और तीन दिनमें सतना पहुंच गये। वहां पर बड़े सत्कारसे रहे, लोग नहीं जाने देते थे अतः सेठ कमलापति और बाबू गोविन्दलालजी को रेल पर भेज दिया और मैं सामायिकके मिससे ग्रामके बाहर चला गया और वहींसे रीवांके लिये प्रस्थान कर दिया। बादमें ठेला जो कि साथ था आ गया, पचास आदमी तीन मील तक आये। सतनामें सिंघई धर्मदासजी एक रत्न आदमी हैं आप बहुत ही परोपकारी जीव हैं। तीन दिनमें रीवा पहुंचे यहां पर दो मन्दिर हैं। श्री शान्तिनाथ स्वामीकी प्रतिमा अतिमनोज्ञ है, धर्मशाला भी अच्छी है एक मन्दिरकी दहलान श्री महाराजकी रानी साहबाने बनवा दी है।

ऊपर एक साधु रहता है जो बुद्धदेवकी जीवनी बताता है और उनके सिद्धान्त समझाता है । यदि यह व्यवस्था यहांके जैन मन्दिरमें भी रहती तो आगत महाशयोंको जैनधर्मका बहुत कुछ परिचय होता जाता परन्तु लोगोंका उस ओर ध्यान नहीं वे तो संगमर्मरका फर्श और पाना ईंट लगवानेमें ही महान् पुण्य समझते हैं । अस्तु ।

सबसे महती त्रुटि तो इस समय यह है कि इस धर्मका मानने वाला कोई सर्वजनिक प्रभावशाली नहीं । ऐसे पुरुषके द्वारा अनायास ही धर्मकी वृद्धि हो जाती है । यद्यपि धर्म आत्माका स्वभाव है तथापि व्यक्त होनेके लिये स्मरण कूटकी आवश्यकता होती है । जिस धर्ममें प्राणिमात्रके कल्याणका उपदेश हो और खानमें खाद्य पेय ऐसे हों कि जिनसे शारीरिक स्वास्थ्य सुरक्षित रहे तथा आत्मपरिणतिकी निर्मलतामें सहचरी कारण हो फिर भी लोकमें उसका प्रचार न हो...इसका मूल कारण जैन-धर्मानुयायी प्रभावशाली व्यक्तिका न होना ही है ।

आप जानते हैं कि गृहस्थको मद्य मांस मधुका त्याग करना जैनधर्मका मूल सिद्धान्त है । यह बात प्रत्यक्ष देखनेमें आती है कि मदिरा पान करनेवाले उन्मत्त हो जाते हैं और उन्मत्त होकर जो जो अनर्थ करते हैं सब जानते हैं । मदिरा पान करनेवालोंकी तो यहां तक प्रवृत्ति देखी गई कि वे अगम्यागमन भी कर बैठते हैं, मदिराके नशामें मस्त हो नालियोंमें पड़ जाते हैं. कुत्ता मुखमें पेशाब कर रहा है फिर भी मधुर-मधुर कह कर पान करते जाते हैं,बड़े बड़े कुलीन मनुष्य इसके नशेमें अपना सर्वस्व खो बैठते हैं. उन्हें धर्म कथा नहीं रुचती केवल वेश्यादि व्यसनोंमें लीन रह कर इहलोक और पर लोक दोनोंकी अव-

निकलती है परन्तु अपनेको आदर्श बनाकर परोपकार करने की प्रवृत्ति नहीं देखी जाती। जब तक मनुष्य स्वयं आदर्श नहीं बनता तब तक उसका संसारमें कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सकता। यही कारण है कि अनेक प्रयत्न होने पर भी समाजकी उन्नति नहीं देखी जाती।

जैनधर्मका तीसरा सिद्धान्त मधु त्याग करना है। मधु क्या है? अनन्त सम्मूर्च्छन जीवोंका निकाय है, मक्खियोंका उच्छिष्ट है परन्तु क्या कहें जिह्वालम्पटी पुरुषोंकी बात? उन्हें तो रसास्वादसे मतलब चाहिए उसकी एक बूंदमें अनन्त जीवोंका संहार क्यों न हो जाय। जिनमें जैनत्वका कुछ अंश है, जिनके हृदयमें दयाका कुछ संचार है उनकी प्रवृत्ति तो इस ओर स्वप्नमें भी नहीं होनी चाहिये। यह कालका प्रभाव ही समझना चाहिये कि मनुष्य दिन प्रति दिन इन्द्रिय लम्पटी होकर धार्मिक व्यवस्थाको भंग करते जाते हैं और जिसके कारण समाज अवनत होती जा रही है। राजाओंके द्वारा समाजका बहुत अंशोंमें उत्थान होता था परन्तु इस समयकी पद्धिशाही। उनका आचरण जैसा हो रहा है वह आप प्रजाके आचरणसे अनुमान कर सकते हैं। जैनियोंमें यद्यपि राजा नहीं तो भी उनके समान जैनवणिक अनेक महानुभाव हैं और उनके सदृश अधिकांश [illegible] भी हैं इनकी विशेष समालोचना आप लोग स्वयं [illegible] सकते हैं। इस [illegible] अनेक विकल्प उठते रहे [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

कर एक निर्मल पानीका झरना मिला जिसका जल इतना उष्ण था कि खौलते हुए जलसे भी कहीं अधिक था। सौ गजके बाद एक कुण्डमें जब यह जल पहुंचता था तब स्नान करनेके योग्य होता था। इस जलमें स्नान करनेसे खाज दाद आदि रोग निर्मूल हो जाते हैं। लोगोंका कहना तो यहां तक है कि इससे सब प्रकारके चर्मरोग दूर हो जाते हैं। यहांसे चल कर आठ दिन बाद श्री गिरिराज पहुंच गये। अपूर्व आनन्द हुआ। मार्गकी सब थकावट एक दम दूर हो गई।

दा सकता है। ऊपर चैत्यालय और नीचे सरस्वती भवन है। बाबु रामचन्द्रजीका धर्म प्रेम सराहनीय है। आपके यहां भोजनादिकी व्यवस्था शुद्ध है। कोई भी अतिथि आनन्दसे कई दिन रह सकता है। खेमतीदासजी ब्रह्मचारी बहुत ही धार्मिक व्यक्ति हैं। आप एक बार भोजन करते हैं और उसी समय पानी पीते हैं तथा प्रतिदिन सैकड़ों कंगलोंको दान देते हैं।

इसी तरह बाबु कालूरामजी भी योग्य व्यक्ति हैं। आपके यहां भी प्रतिदिन अनेक गरीबोंको पकी खिचड़ी आदिका भोजन मिलता है। बाबु रामचन्द्रजीके यहां भी प्रतिदिन गरीबोंको भोजन दिया जाता है...गिरिडीहके श्रावकोंमें यह विशेषता देखी गई।

हम चार माह यहां रहे। बड़े निर्मल परिणाम रहे। बनारस विद्यालयके लिये यहांसे पांच हजार रुपयाका दान मिला। यदि कोई अच्छा प्रयास करे तो अनायास यहांसे बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। यहांसे फिर ईसरी आगया और यहां आनन्दसे काल जाने लगा।

यहांसे हजारीबागरोड गया। श्री सेठी मोतीलालजीके यहां ठहरा। यहां पर कई घर श्रावकोंके हैं दो मन्दिर हैं पूजा प्रक्षाल समय पर होता है, स्वाध्याय भी होता है, शास्त्र प्रवचनमें अच्छी मनुष्य संख्या हो जाती है। यहांसे फिर ईसरी आगया।

एक बार यहां पर श्रीमान् पन्नालालजी सेठी आये। वे बहुत ही तेज प्रकृतिके आदमी थे। गोम्मटसार जीवकाण्ड और सर्वार्थसिद्धिके [illegible] निरन्तर स्वाध्यायके साथ [illegible] थे [illegible] रहते थे। एक [illegible] देख

दासरा है। ऊपर चैत्यालय और नीचे सरस्वती भवन है। बाबु रामचन्द्रजीका धर्म प्रेम सराहनीय है। आपके यहां भोजनादिका व्यवस्था शुद्ध है। कोई भी अतिथि आनन्दसे कई दिन रह सक्ता है। रेसतीदासजी ब्रह्मचारी बहुत ही धार्मिक व्यक्ति हैं। आप एक बार भोजन करते हैं और उसी समय पानी पीते हैं तथा प्रतिदिन सैकड़ों कंगलोंको दान देते हैं।

इसी तरह बाबु कालूरामजी भी योग्य व्यक्ति हैं। आपके यहां भी प्रतिदिन अनेक गरीबोंको पकी खिचड़ी आदिका भोजन मिलता है। बाबु रामचन्द्रजीके यहां भी प्रतिदिन गरीबोंका भोजन दिया जाता है....गिरिडीहके श्रावकोंमें यह विशेषता देखी गई।

हम चार माह यहां रहे। बड़े निर्मल परिणाम रहे। बनारस विद्यालयके लिये यहांसे पांच हजार रुपयाका दान मिला। यदि कोई अच्छा प्रयास करे तो अनायास यहांसे बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। यहांसे फिर ईसरी आगया और यहां आनन्दसे काल जाने लगा।

यहांसे हजारीबागरोड गया। श्री सेठी भौरीलालजीके यहां ठहरा। यहां पर कई घर श्रावकोंके हैं दो मन्दिर हैं पूजा प्रक्षाल समय पर होता है, स्वाध्याय भी होता है, शास्त्र प्रवचनमें अच्छी मनुष्य संख्या हो जाती है। यहांसे फिर ईसरी आगया।

एक बार यहां पर श्रीमान् पन्नालालजी सेठी आये। ये बहुत [illegible] तेज प्रकृतिके आदमी थे, गोम्मटसार जीवकाण्ड और स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा कण्ठस्थ थी, निरन्तर स्वाध्यायमें काल [illegible] थे, व्रत नियम भी पालते थे, आप स्वतन्त्र रहते थे। एक [illegible] बाबा मोहनलालजीके पास चले गये। उन्हें आते देख

इतनी श्रद्धा है कि शायद आपको भी उतनी न होगी। एक बार मुझे बड़ी शिरोवेदना हुई मैंने श्री पार्श्वप्रभुका स्मरण कर उसे शान्त कर लिया। एक दिनकी बात है यहीं पर एक कलकत्ताकी बाई थी उसे हिस्ट्रिया रोग था अचानक वह गिर पड़ी जब होशमें आई आई तब मैंने कहा कि तुम पार्श्वनाथ स्वामीकी टोंकके सामनेसे दर्शन करो और प्रार्थना करो कि हे प्रभो! अब हमें यह रोग बाधा न करे। इतनी ही हमारी प्रार्थना है। उसने हमारे कहे अनुसार आचरण किया और उसी दिनसे उसकी मूर्छा बन्द हो गई। एक वर्ष बाद मिली, हमने पूछा—अब तुम्हें आराम है? वह बोली कि उस दिनसे आनन्द रहती हूं। कहनेका तात्पर्य यह है कि मुझे श्रद्धा तो है परन्तु तीव्र उदयका फल भोगना ही पड़ेगा इसीसे न तो मैं औषधि खाना चाहता हूँ और न मन्त्रादि विधिका प्रयोग कराना चाहता हूँ।'

मन्त्र शास्त्री बहुत नाराज हुए तथा जब मुझे एक सौ पाँच डिग्री ज्वर हो गया तब एक मन्त्रको कपड़ेमें लपेटकर भुजमें बाँध दिया। मुझे कुछ भी पता नहीं चला, चार घण्टा अचेत बेहोश रहता था। श्री कृष्णाबाई और पतासो बाई साताकी ठंडी गोली पट्टी शिरपर रखती थीं। इस प्रकार चार घण्टाकी वेदना सहता हुआ कालक्षेप करने लगा। लोग पाठ पढ़ते थे पर मुझे पता नहीं कि क्या हो रहा है? वैशाखका मास था सूरज भी तपता था, पानीकी तृषा अत्यन्त रहती थी परन्तु इतनी वेदना रहनेपर भी अन्तरङ्गमें परमपावन जैनधर्मकी श्रद्धा अचल रहती थी।

श्री कन्हैयालालजी गया वालोंने सभी दरवाजोंमें अपनी 'दरिद्र' लगा दी थी दिनभर अनवरत पानीका छिड़काव होता

था रात्रिको बराबर दो आदमी पंखा करते थे पर शान्ति न मिलती थी।

श्री बाबाजी महाराज कहते थे कि यह सब कर्म विपाक है धैर्य धारण करो, ममताका अंश भी मनमें न लाओ, इसे तो ऋणकी तरह अदा करो, मनुष्य जन्ममें ही संयमकी योग्यता होती है उसका घात मत करो, संयम कर्मकी निर्जरामें कारण है, यह जो तुम्हारा उपचार है इस पदके योग्य नहीं, असंयमी मनुष्योंके योग्य है।

मैंने कहा—'महाराज! मैं क्या करूं'? मेरे वशकी बात जो थी सो मैंने की, मैं औषधि तक नहीं खाता और न किसीसे यह कहता हूं कि ये उपचार किये जावें किन्तु उपचार होनेपर बाह्य वेदनामें कुछ शमन होता है अतः इनसे मेरी अरुचि भी नहीं! मैं आपकी बात मानता हूं, आखिर, आप भी तो चाहते है कि इसका रोग शीघ्र मिट जावे यह क्या मोह नहीं है? दिनमें कई बार मेरी नबज देखते हैं तथा कुछ विषाद भी करते है।'

बाबाजीने कहा कि इसका यह अर्थ नहीं कि हमें विषाद हो परन्तु हमारा कर्तव्य है कि तुम्हें शान्ति पहुंचावें अतः हमारा [illegible] बार आना योग्य है अन्यथा तुम्हें यह आकुलता हो जावेगा [illegible] बाबाजी [illegible] हमारी सुध नहीं लेते तब अन्य कौन [illegible] तुम्हारा [illegible] करते हैं [illegible] यह [illegible]

इतनी श्रद्धा है कि शायद आपको भी उतनी न होगी। एक बार मुझे बड़ी शिरोवेदना हुई मैंने श्री पार्श्वप्रभुका स्मरण कर उसे शान्त कर लिया। एक दिनकी बात है यहीं पर एक कलकत्ताकी बाई थी उसे हिस्टिरिया रोग था अचानक वह गिर पड़ी जब होशमें आई आई तब मैंने कहा कि तुम पार्श्वनाथ स्वामीकी टोंकके सामनेसे दर्शन करो और प्रार्थना करो कि हे प्रभो! अब हमें यह रोग बाधा न करे। इतनी ही हमारी प्रार्थना है। उसने हमारे कहे अनुसार आचरण किया और उसी दिनसे उसकी मूर्छा बन्द हो गई। एक वर्ष बाद मिली, हमने पूछा—अब तुम्हें आराम है? वह बोली कि उस दिनसे सानन्द रहती हूं। कहनेका तात्पर्य यह है कि मुझे श्रद्धा तो है परन्तु तीव्र उदयमें फल भोगना ही पड़ेगा इसीसे न तो मैं औषधि खाना चाहता हूँ और न मन्त्रादि विधिका प्रयोग कराना चाहता हूँ।'

मन्त्र शास्त्री बहुत नाराज हुए तथा जब मुझे एक सौ पाँच डिग्री ज्वर हो गया तब एक मन्त्रको कपड़ेमें लपेटकर भुजमें बाँध दिया। मुझे कुछ भी पता नहीं चला, चार घण्टा ज्वरमें बेहोश रहता था। श्री कृष्णाबाई और पतासी बाई माताकी तरह गीली पट्टी शिरपर रखतीं थीं। इस प्रकार चार घण्टाकी वेदना सहता हुआ कालक्षेप करने लगा। लोग पाठ पढ़ते थे पर मुझे पता नहीं कि क्या हो रहा है? वैशाखका मास था सूरज भी तपता था, पानीकी तृषा अत्यन्त रहती थी परन्तु इतनी वेदना रहनेपर भी अन्तरङ्गमें परमपावन जैनधर्मकी श्रद्धा अचल रहती थी।

श्री छत्तीयरबाईजी गया वालोंने सभी दरवाजोंमें खसकी टटिया लगवा दी थी दिनभर उनपर पानीका छिड़काव होता

श्री बाबा भागीरथजीका समाधि मरण

यद्यपि बाद बाबाजीका शरीर कृश हो गया फिर भी आप अपने धर्म कार्यमें कभी शिथिल नहीं हुए। औषधि सेवन नहीं किया, कृष्णाबाईने अन्तमें वैयावृत्य की। न जाने क्यों बाबाजी हमसे वैयावृत्य न कराते थे। जिस दिन आपका देहावसान होने लगा उसदिन हम पौने [illegible] शास्त्रस्वाध्याय सुना अनन्तर हम लोगोंको आज्ञा दी कि भोजन करो। हमने भोजन करके सामायिक किया पश्चात् कृष्णाबाईने बुलाया कि शीघ्र आओ। हम गये तो क्या देखते हैं कि बाबाजी भूमि पर एक लंगोटी लगाये पड़े हुए हैं, आपकी मुद्रा देखनेसे ऐलकका स्मरण होता था। हम लोग बाबाजीके कानोंमें णमोकार मन्त्र पढ़ते रहे पांच मिनट बाद आंखसे एक अश्रुबिन्दु निकला और आप सदाके लिये चले गये। मुद्रा बिलकुल शान्त थी, मेरा हृदय गद्गद हो गया। शीघ्र ही बाबाजीको श्मसान ले गये और एक घण्टाके बाद आश्रममें आगये। उसदिन रात्रिमें बाबाजीकी ही कथा होती रही।

[illegible] त्यागी इस कालमें दुर्लभ है। जबसे आप [illegible] हुए [illegible] स्पर्श नहीं किया आजन्म नमक और [illegible] दो चद्दर मात्र परिग्रह

साधर्मी जीवसे मोह नहीं करना चाहिये ? विशेष क्या कहें ! तुम शान्त भावसे सहन करो, रोग शमन हो जावेगा, आतुर मत होओ।

मैंने कहा—'महाराज ! मुझे मलेरिया बहुत सताता है अतः मेरा विचार है कि ईसरी छोड़कर हजारीबाग चला जाऊं'।

उन्होंने कहा—'अच्छा जाओ, अन्तमें यहीं आना होगा'।

जानेकी शक्ति न थी अतः डोलीकर हजारीबाग चला गया। वहां पर एक बागमें सत्तर रुपया भाड़ा देकर ठहर गया, ग्राम वालोंने अच्छी वैयावृत्यकी यहांका पानी अमृतोपम था। डेढ़ मास रहा फिर ईसरी आ गया।

११०

श्री बाबा भागीरथजीका समाधि मरण

वर्षाके बाद बाबाजीका शरीर रुग्ण हो गया फिर भी आप अपने धर्म कार्यमें कभी शिथिल नहीं हुए। औषधि सेवन नहीं किया, कृष्णाबाईने अच्छी वैयावृत्यकी। न जाने क्यों बाबाजी हमसे वैयावृत्य न कराते थे। जिस दिन आपका देहावसान होने लगा उसदिन दस बजे तक शास्त्र-स्वाध्याय सुना अनन्तर हम लोगोंको आज्ञा दी कि भोजन करो। हमने भोजन करके सामायिक किया पश्चात् कृष्णाबाईने बुलाया कि शीघ्र आओ। हम गये तो क्या देखते हैं कि बाबाजी भूमि पर एक लंगोटी लगाये पड़े हुए हैं, आपकी मुद्रा देखनेसे ऐलकका स्मरण होता था। हम लोग बाबाजीके कर्णमें णमोकार मन्त्र कहते रहे पांच मिनट बाद आंखसे एक अश्रुबिन्दु निकला और आप सदाके लिये चले गये। मुद्रा बिलकुल शान्त थी, मेरा हृदय गद्‌गद हो गया। शीघ्र ही बाबाजीको स्मसान ले गये और एक घण्टाके बाद आश्रममें आगये। उसदिन रात्रिमें बाबाजीकी ही कथा होती रही।

[illegible] निर्मीक त्यागी इस कालमें दुर्लभ है। जबसे आप [illegible] हुए [illegible] स्पर्श नहीं किया आजन्म नमक और [illegible] और दो चद्दर [illegible]

रखते थे। एक बार भोजन और पानी लेते थे। प्रतिदिन स्वामि-कार्तिकेयानुप्रेक्षा और समयसारके कलशोंका पाठ करते थे। स्वयम्भू स्तोत्र का भी निरन्तर पाठ करते थे। आपका गला बहुत ही मधुर था, जब आप भजन कहते थे तब जिस विषयका भजन होता उस विषयकी मूर्ति सामने आजाती थी। आपका शास्त्र प्रवचन बहुत ही प्रभावक होता था, आप ही के उत्साह और सहायतासे स्याद्वाद विद्यालयकी स्थापना हुई थी। आपने सहस्रों रुपये विद्यालयको भिजवाये। भोजनकी कथा आप कभी नहीं करते थे आपकी प्रकृति अत्यन्त दयालु रूप थी।।

आप मुझे निरन्तर उपदेश देते थे कि इतना आडम्बर मत कर। एक बारकी बात है—मैंने कहा बाबाजी! आपके सदृश हम भी दो चद्दर और दो लंगोट रख सकते हैं इसमें कौन सी पराकाष्ठा की बात है? बाबाजी महाराज बोले—रख क्यों नहीं लेते? मैं बोला—रखना तो कठिन नहीं है परन्तु जब बाजारमें निकलूँगा तब लोग क्या कहेंगे? इससे लज्जा आती है। बाबाजीने हँस कर कहा—बस, इसी बलपर त्यागी बनना चाहते हो, अरे! त्याग करना सामान्य मनुष्योंका कार्य नहीं है। एक दिन घोड़ोंको नाल बँध रही थी उन्हें देखकर मेंढकी बोली—हमको भी नाल बाँध दो। सिपाही, यदि मेंढकोंको नाल बाँध दिये जावें तो क्या वह चल फिर सकेगी? अतः अभी तुम इसके पात्र नहीं। हाँ, यह मैं अवश्य कहूँगा कि एक दिन तू भी त्यागी बन जावेगा। तू भोला है अच्छा है अब इसी रूप रहना। तू इतना सरल है कि तुझे वंचकका बालक भी बाजारमें बेच सकता है। तेरा भाग्य अच्छा था कि तुझे बाईजी मिल गईं [illegible] तेरेको [illegible] उनकी [illegible] करना

वह एक बातका निरन्तर उपदेश देते थे कि 'जो नहि लोना काऊका तो दीना कोटि हजार' और भी बहुतसे उपदेश उनके थे। कहनेका तात्पर्य यह है कि जो कुछ थोड़ा बहुत मेरे पास है वह उनहीके समागमका फल है ...इस प्रकार बाबाजीके गुण गाते हुए रात्रि पूर्णकी।

१११

ईसरीसे गया, फिर पावापुर

सागर वालोंका तीव्र आग्रह था कि सागर आओ इसलि सागरके लिये प्रस्थान कर दिया। १२ मील बगोदरा तक । पहुंच पाये कि बड़े वेगसे ज्वर आ गया, छः घण्टा बाद ज्वरा वेग कम हुआ बगोदराके बंगलामें रात्रि व्यतीतकी। वहांसे च कर हजारीबाग रोड आ गये। यहांपर श्री मौरीलालजीके प दो दिन ठहरे। आपने अच्छी तरह उपचार किया स्वास्थ अच्छा हो गया। वहींपर श्री रामचन्द्र सेठी गिरिडी वालो कुटुम्ब आ गया बहुत ही आग्रह पूर्वक आपने कहा कि क्यं इस पवित्र स्थानको छोड़ते हो? परन्तु मैंने एक न सुनी चल दिया, मार्गमें अनेक उत्तम दृश्य देखनेके लिये मिले। आ दिन बाद गया पहुंच गया।

यहां पर बाबू कन्हैयालालजी तथा चम्पालालजी सेठ आदिने गया रोकनेका बहुत आग्रह किया मैंने कहा कि दा बाद सागर जानेका दृढ़ निश्चय है। लोगोंने कहा—आपकं इच्छा। मैंने कहा—तीन दिन बाद चला जाऊंगा। तीन दिनं बाद एकदम पैरके घुटनोंमें दर्द हो गया इतना दर्द हुआ कि चलनेमें असमर्थ हो गया अतः लाचार होकर मैं स्वयं रह गया। सागरसे जो लेनेके लिये आये थे वे अगत्या लौटकर वापि चले गए।

यहाँ थक गया, अतः यह भाव हुआ कि यहीं निर्वाण लाडू चढ़ाकर मनाना योग्य है। सायंकाल सड़क पर भ्रमण करनेके लिये गया इतनेमें दो भिखमंगे माँगनेके लिये आये मैं बजार जाकर लाडू लाया और दोनोंको दे दिये। मैंने उनसे पूछा—कि 'कहाँ जाते हो?' उन्होंने कहा—'श्री महावीर स्वामीके निर्वाण स्थानके लिये पावापुर जाते हैं।' मैंने कहा—तुम्हारे पैर तो दूसरे गलित हैं कैसे पहुँचोगे? उन्होंने कहा—'श्री वीर प्रभुकी कृपासे पहुँच जायेंगे उनकी महिमा अचिन्त्य है उन्हींके प्रतापसे हमें यहाँ एक वणिक्‌का भोजन मिल जाता है, उन्हींके प्रतापसे हमारा क्या, प्राणि मात्रके लोगोंका कल्याण होता है, महावीरस्वामीका अचिन्त्य और अनुपम प्रताप है, अहिंसाका प्रचार आपके ही प्रभावका फल है। यदि इस युगके आदिमें श्री वीर प्रभुका अवतार न होता तो लाखों पशुओंके बलिदानकी प्रथा न रुकती। संसार महान् कालचक्र है इसमें नानामतोंकी सृष्टि हुई जिनमें परस्परमें अनेक प्रकारका विवाद विभिन्नता हो गई, अतः यथार्थ वस्तु कहनेवाला तो वीतराग सर्वज्ञ ही है, वीतरागता और सर्वज्ञता कोई अलौकिक वस्तु नहीं, मोहका नाश ज्ञानावरण दर्शनावरण और अन्तरायका अभाव होते ही आत्मामें वीतरागता और सर्वज्ञता दोनों ही प्रकट हो जाते हैं अतः ऐसा आत्माके द्वारा जो कुछ कहा जाता है वही सत्य है।'

भिक्षु लोगोंके मुखसे इतनी ज्ञानपूर्ण बात सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ मैंने कहा—भाई तुम्हें इतना बोध कहाँसे [illegible] इतना [illegible] करते [illegible] तो [illegible] है [illegible] हुई

हुआ था, जो बहुत सुन्दर और सुशील थी परन्तु मेरी प्रकृति दुराचार मयी हो गई। फल यह हुआ कि मेरी धर्मपत्नी अपघात करके मर गई। कुछ ही दिनोंमें मेरे माता पिताका स्वर्गवास हो गया और जो सम्पत्ति पासमें थी वह वेश्या व्यसनमें समाप्त हो गई। गर्मी आदिक रोग हुआ अन्तमें यह दशा हुई जो आपके समक्ष है परन्तु क्षेत्र पर जानेसे अब मेरी श्रद्धा जैन धर्मके प्रवर्तक अन्तिम तीर्थंकर में हो गई उन्हींके स्मरणसे मैं सानन्द जीवन व्यतीत करता हूँ अतः आप आनन्दसे यात्राको जाइये और निरपेक्ष प्रभुका निर्वाणोत्सव करिये, जिससे हम लोगोंकी अपेक्षा कुछ विशेषता हो। यद्यपि हमभी निरपेक्ष ही प्रभुका स्मरण करते हैं तो भी हमारी बात कौन माननेवाला है। मत मानो, फल तो परिणामोंकी जातिका होगा। पुण्यादि हानिमें हमारे परिणाम निर्मल न हों और आप लोगोंके हैं, यह कोई राजाज्ञा नहीं। अब मैं आपको आशीर्वाद देता हूँ कि वीर-प्रभु आपका कल्याण करें।'

इतना कह कर उन दोनोंने श्री पावापुरका मार्ग लिया।

परमार्थसे वीरप्रभुका यही उपदेश था कि यदि संसारके दुःखोंसे मुक्त होनेकी अभिलाषा है तो जिस प्रकार मैंने परिग्रहमें ममता त्यागी, ब्रह्मचर्य व्रतको ही अपना सर्वस्व समझा, राज्यादि बाह्यसामग्रीको तिलाञ्जलि दी, माता पिता आदि कुटुम्बसे स्नेह त्यागा, दैगम्बरी दीक्षाका अवलम्बन लिया, बारह वर्ष तक अनवरत द्वादश प्रकारका तप तपा, दश धर्म-धारण किये, द्वाविंशति परीषहों पर विजय प्राप्तकी, क्षपक श्रेणीका आरोहण कर मोहका नाश किया, और अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त क्षीणकषाय गुणस्थानमें रह कर इसीके द्विचरम समयमें दो और चरम समयमें चौदह प्रकृतियोंका नाश किया एवं केवल ज्ञान प्राप्त किया, इसी प्रकार सबको करना चाहिये। यदि मैं केवल सिद्ध परमेष्ठीका ही स्मरण करता रहता तो यह अवस्था न होती, यह स्मरण तो प्रमत्तगुण स्थानकी ही चर्या थी। मैंने परिणामोंकी उत्तरोत्तर निर्मलतासे ही अर्हन्त पद पाया है अतः जिन्हें इस पदकी इच्छा हो वे भी इसी उपायका अवलम्बन करें। यदि दैगम्बरी दीक्षाकी योग्यता न हो तो देशविरत ही अंगीकार करो तथा देश विरतकी भी योग्यता न हो तो श्रद्धा तो रक्खो जिस किसी भी तरह बने इस परिग्रह पापसे अवश्य ही आत्माको सुरक्षित रक्खो। परिग्रह सबसे महान् पाप है। मोक्षमार्गमें सबसे अधिक मुख्यता दृढ़ श्रद्धाकी है इसके होने पर ही देशव्रत तथा महाव्रत हो सकते हैं इसके बिना उनका कुछ भी महत्त्व नहीं होता। पूंजीके बिना व्यापार नहीं होता दलाली भले ही करो अतः आज हम सबको आत्मा की सत्य श्रद्धा करना चाहिये।'

सुनकर कई महाशयोंने कहा कि हमको वीर प्रभुके परम्परा उपदेशमें वास्तविक श्रद्धा है परन्तु शक्तिकी विकलतासे व्रतादि धारण नहीं कर सकते हां, यह नियम करते हैं कि अन्यायादि [illegible]से बचेंगे।

अतः जहां तक बने श्रद्धा तो निर्मल ही रक्खो अन्य कार्य यथा शक्ति करो। प्राण जावें तो भले ही जावें परन्तु श्रद्धा को न विगाड़ो। आप लोग यह न समझें कि मैं देशव्रतकी उपयोगिता नहीं समझता हूँ, खूब समझता हूं और मेरे पञ्च पापका त्याग भी है व्रतरूपसे भले ही न हो, परन्तु मेरी प्रवृत्ति कभी भी पाप मयी नहीं होती। मेरी स्त्री भी व्रतोंका पालन करती है। वह भी कुछ-कुछ स्वाध्याय करती है। जब हम दोनोंका सम्बन्ध हुआ था तब हम दोनोंने यह नियम किया था कि चूंकि विवाहका सम्बन्ध केवल विषयाभिलाषाकी पूर्तिके लिये नहीं है किन्तु धर्मकी परिपाटी चलनेवाली योग्य सन्तानकी उत्पत्तिके लिये है अतः ऋतु कालके अनन्तर ही विषय सेवन करेंगे और वह भी पर्वके दिन छोड़ कर। साथ ही यह भी नियम किया था कि जब हमारे दो सन्तानें हो जावेंगी तबसे विषय वासनाका बिलकुल त्याग कर देवेंगे। दैवयोगसे हमारे एक सन्तान चौबीस वर्षमें हुई है और दूसरी बत्तीस वर्षमें। अब आठ वर्ष हो गये तबसे मैं और मेरी धर्मपत्नी दोनों ही ब्रह्मचर्यसे रहते हैं। इस समय मेरी आयु चालिस वर्षकी और मेरी धर्मपत्नीकी छत्तिस वर्षकी है। ये मेरे दोनों बालक बैठे हैं तथा यह जो पासमें बैठी है धर्मपत्नी है। अब हम दोनोंका सम्बन्ध भाई-बहिनके सदृश है, आप लोग हम दोनोंको देख कर यह नहीं कह सकेंगे कि ये दोनों स्त्री पुरुष हैं। यदि आप लोग अपना कल्याण चाहते हो तो इस व्रतकी रक्षा करो। मेरी बात मानो—जब सन्तान गर्भमें आजावे तबसे लेकर जब तक बालक मां का दुग्धपान न छोड़ देवे तबतक भूलकर भी विषय सेवन न करो। बालकके समक्ष ऐसी बात [illegible] हास्य मत करो। बालकोंके सामने कदापि ऐसी कुचेष्टा मत करो क्योंकि बालकोंका प्रथम माता पिताके

अतः जहां तक बने श्रद्धा तो निर्मल ही रक्खो अन्य कार्य यथा शक्ति करो। प्राण जावें तो भले ही जावें परन्तु श्रद्धा को न बिगाड़ो। आप लोग यह न समझें कि मैं देशव्रतकी उपयोगिता नहीं समझता हूं, खूब समझता हूं और मेरे पञ्च पापका त्याग भी है व्रतरूपसे भले ही न हो, परन्तु मेरी प्रवृत्ति कभी भी पाप मयी नहीं होती। मेरी स्त्री भी व्रतोंका पालन करती है। वह भी कुछ कुछ स्वाध्याय करती है। जब हम दोनोंका सम्बन्ध हुआ था तब हम दोनोंने यह नियम किया था कि चूंकि विवाहका सम्बन्ध केवल विषयाभिलाषाकी पूर्तिके लिये नहीं है किन्तु धर्मकी परिपाटी चलानेवाली योग्य सन्तानकी उत्पत्तिके लिये है अतः ऋतु कालके अनन्तर ही विषय सेवन करेंगे और वह भी पर्वके दिन छोड़ कर। साथ ही यह भी नियम किया था कि जब हमारे दो सन्तानें हो जावेंगी तबसे विषय वासनाका बिलकुल त्याग कर देवेंगे। दैवयोगसे हमारे एक सन्तान चौबीस वर्षमें हुई है और दूसरी बत्तीस वर्षमें। अब आठ वर्ष हो गये तबसे मैं और मेरी धर्मपत्नी दोनों ही ब्रह्मचर्यसे रहते हैं। इस समय मेरी आयु चालिस वर्षकी और मेरी धर्मपत्नीकी छत्तिस वर्षकी है। ये मेरे दोनों बालक बैठे हैं तथा यह जो पासमें बैठी है धर्मपत्नी है। अब हम दोनोंका सम्बन्ध भाई-बहिनके सदृश है, आप लोग हम दोनोंको देख कर यह नहीं कह सकेंगे कि ये दोनों स्त्री पुरुष हैं। यदि आप लोग अपना कल्याण चाहते हो तो इस व्रतकी रक्षा करो। मेरी बात मानों—जब सन्तान गर्भमें आ जावे तबसे लेकर जब तक बालक मां का दुग्धपान न छोड़ देवे तबतक भूलकर भी विषय सेवन न करो। बालकके समक्ष कभी भी न हास्य विनोद आदि मत करो, बालकोंके सामने कदापि ऐसी चेष्टा मत करो क्योंकि बालकोंकी प्रवृत्ति माता पिताके

११३

राजगृहीमें धर्मगोष्ठी

पावापुरसे चलकर राजगृही आये। पञ्च पहाड़ीकी वन्दना की। यहांका चमत्कार विलक्षण है पर्वतकी तलहटीमें कुण्ड हैं पानी गरम हैं, और जिनमें एकही बार स्नान करनेसे सब थकावट निकल जाती है। अधिकांश लोग पहले दिन तीन पहाड़ियोंकी और दूसरे दिन अवशिष्ट दो पहाड़ियोंकी वन्दना करते हैं। विरले मनुष्य पांचों पहाड़ियोंकी भी वन्दना एक ही दिनमें कर लेते हैं। पहाड़ियोंके ऊपर सुन्दर सुन्दर स्थान हैं परन्तु हम लोग उनका उपयोग नहीं करते, केवल दर्शन कर ही चले आते हैं।

मैं तीन मास यहां रहा, प्रातःकाल सामायिक करनेके बाद कुण्डों पर जाता था और वहीं आधा घंटा स्नान करता था। वहीं पर बहुतसे उत्तम पुरुष आते थे, उनके साथ धर्मके ऊपर विचार करता था। अन्तमें सबके परामर्शसे यही सब निष्कर्ष निकला कि धर्म तो आत्माकी निर्मल परिणतिका नाम है। यह जो हम प्रवृत्तिमें कर रहे हैं धर्म नहीं है। मन वचन कायके शुभ व्यापार हैं। जहां मनमें शुभ चिन्तन होता है, कायकी चेष्टा सरल होती है, वचनोंका व्यापार स्वपरको अनिष्ट नहीं होता यह सब मन्द कषायके कार्य हैं। धर्म तो वह वस्तु है जहां न कषाय है और न मन

वचन शक्तिके व्यापार हैं। वास्तवमें वह वस्तु वर्णनातीत है, उसके होते ही जीव मुक्ति का पात्र हो जाता है।

मुक्ति कोई अलौकिक पदार्थ नहीं, जहां दुःखोंकी आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाती है वहीं मुक्ति का व्यवहार होने लगता है। किसीने कहा है—

'सुख मात्यन्तिकं यत्र बुद्धिग्राह्य मतीन्द्रियम्।
तं वै मोक्षं विजानीयाद् दुष्प्रापमकृतात्मभिः' ॥

इन लोगोंके जो प्रयास हैं वे दुःख निवृत्तिके लिये हैं। दुःख किसीको इष्ट नहीं, जब दुःख होता है तब आत्मा बेचैन हो जाती है उसे दूर करनेके लिए जो जो प्रयत्न किये जाते हैं वे प्रायः हम सबको अनुभूत हैं। यहां तक देखा गया है कि जब अत्यन्त दुःखका अनुभव होता है और जीव उसे सहनेमें असमर्थ हो जाता है तब विष खाकर मर जाता है। लोकमें यहां तक देखा गया है कि मनुष्य काम वेदनाकी पीड़ामें पुत्री माता और भगिनीसे भी सम्पर्क कर लेता है। यहां तक देखा गया है कि उच्च कुलके मनुष्य भंगिनके संसर्गसे भंगी तक हो जाते हैं।

एक ग्राम मदनपुर है जो मेरी जन्म भूमिसे चार मील है वहां एक भंगिन थी उसका सम्पर्क किसी उच्च कुलके मनुष्यसे हो गया। पुलिस वालोंने उस पर मुकदमा चलाया जब वह अदालतमें पहुंचा तब मजिस्ट्रेटने बोला कि इसे क्या पहनाओगे ? मेरे पास एक पड़े भर जनेऊ रखे हैं किस किसको पहनाओगे ? मेरा मजिस्ट्रेट देखकर अवाक् [illegible] अनेकबारों [illegible] कर्म पुरुष करते थे और मैं भी ऐसा पतित निकला कि

जिसने अपना नाश तो किया ही साथमें सहस्रोंको भी नष्ट कर दिया।

इससे सिद्ध होता है कि आत्मा दुःखकर वेदनामें सदसत् के विवेकसे शून्य हो जाता है अतः दुःख निवृत्ति ही पुरुषार्थ है। दुःखोंका मूल कारण इच्छा है, इसका त्याग ही सुखका जनक है, इच्छाकी उत्पत्ति मोहाधीन है। मोहमें यह आत्मा अनात्मीय पदार्थोंमें आत्मीयत्वकी कल्पना करता है जब अनात्मीय पदार्थको अपना मान लिया तब उसके अनुकूल पदार्थोंमें राग और प्रतिकूल पदार्थों में द्वेष स्वयं होने लगता है अतः हमारी गोष्ठीमें यही चर्चाका विषय रहता था कि इस शरीरमें निजत्व बुद्धिको सबसे पहले हटाना चाहिये यदि यह हट गई तो शरीरके जो सम्बन्धी हैं उनसे सुतरां ममता बुद्धि हट जावेगी।

इस शरीरके जनक मुख्यतया माता और पिता हैं। पिताकी अपेक्षा माताका विशेष सम्बन्ध रहता है क्योंकि वह ही इसके पोषण करनेमें मुख्य कारण है। जब यह निश्चय है कि यह शरीर हमारा नहीं क्योंकि इसकी रचना पुद्गलोंसे है माताका रज और पिताका वीर्य जो कि इसकी उत्पत्तिमें कारण है पौद्गलिक हैं, आहारादि जिनसे कि इसका पोषण होता है पौद्गलिक हैं, जिस कर्मके उदयसे इसकी रचना हुई वह भी पौद्गलिक है, तथा इसकी वृद्धिमें जो सहायक हैं वे सब पौद्गलिक हैं...तब इसे जो हम अपना मानते थे वह हमारी अज्ञानता थी आज आगमाभ्यास,सत्समागम, और धर्म साधनसे हमारी बुद्धिमें यह आगया कि हमारी पिछली मान्यता मिथ्या थी। हम लोगोंको इससे ममता भाव छोड़ देना ही कल्याणका पथ है।

कोई यह कहता था कि इस व्यर्थके विकल्पजालमें कुछ

ध्वनिसे यहांकी वाया पृथिवी गुञ्जित रही होगी। यह वही स्थान है जहां महाराज श्रेणिक जैसे विवेकी राजा और महारानी चेलना जैसी पतिव्रता रानीने आवास किया था। विपुलाचल पर दृष्टि जाते ही यह भाव सामने आजाता है कि भगवान् महावीर स्वामीका समवसरण भरा हुआ है, गौतम गणधर विराजमान हैं और महाराज श्रेणिक नतमस्तक होकर उनसे विविध प्रश्नोंका उत्तर सुन रहे हैं। अस्तु यहांसे पैदल यात्रा करते हुए हम ईसरी आगये, मार्गमें उत्तम-उत्तम दृश्य मिले।

गिरीडीहका चातुर्मास

जब हजारीबाग आया तब शामसे बाहर चार मील पर रात्रि हो गई। सड़क पर ठहरनेके लिये कोई स्थान नहीं था केवल एक धर्मशाला थी जो कि कलकत्तामें रहनेवाले एक मेहतरने बनवाई थी। चूंकि वह मेहतरकी बनवाई थी इससे साथके लोगोंने उसमें ठहरनेमें एतराज किया।

मैंने कहा—'भाईयो! धर्मशाला तो ईंट चूनाकी है इसमें ठहरने से क्या हानि है? इतनी घृणा क्यों? आखिर वह भी तो मनुष्य है और उसने परोपकारकी दृष्टिसे बनवाई है क्या उसको पुण्य बन्ध नहीं होगा? बनवाते समय उसके तो यही भाव रहे होंगे कि अमुक जातिका शुभपरिणाम करे तभी पुण्यबन्ध हो। जिसके शुभपरिणाम होंगे वही पुण्यका पात्र होगा। जब कि चारों गतियोंमें सम्यग्दर्शन हो सकता है तब पञ्चलब्धियां होने पर यदि भंगीको सम्यग्दर्शन हो जावे तो कौन रोकनेवाला है? जरा विवेकसे काम लो, जिसके अनन्त संसारका नाश करनेवाला सम्यग्दर्शन हो जावे और पुण्य जनक शुभ परिणाम न हों यह बुद्धिमें नहीं आता।

एक बोले—हम यह कुछ नहीं जानते किन्तु लोक व्यवहार [illegible] नहीं है कि भंगीकी धर्मशालामें ठहरा जावे।

मैंने कहा—किसी भगीने चार आमके पेड़ मार्गमें लगा दिये, हम लोग घामसे पीड़ित होते हुए उस मार्गसे निकलें और छायामें बैठना ही चाहते हों कि इतनेमें कोई कह उठे कि ए मुसाफिर! ये पेड़ भगीने लगाये हैं तब क्या हम उनकी छायाको त्याग देंगे?

हमारे साथके आदमी बोले—वर्णी जी! लोक मर्यादा का लोप मत करो। मैंने कहा—भैया! लोक मर्यादा इसी को कहते हैं, कि हम अस्पताल की दवाईयां खावें जहां की प्रत्येक कार्य की सफाई करनेवाले यही भंगी होते हैं, जहां की औषधियां मांस और मदिरासे भरी रहती हैं, जहां ताकत पर औषधमें प्रायः मछली का तेल दिया जाता है और जहां अण्डोंके स्वरस का योग औषधियोंके साथ किया जाता है। आपके सामने तो बनी हुई स्वच्छ दवाई आती है इससे कुछ पता नहीं चलता पर किसी डाक्टरसे उसके उपादान और बनाने की प्रक्रिया को पूछो और वह सच सच बतलावे तो रोमाञ्च उठ आवें शरीर सिहर जावे। होटलोंमें खावें जहां कि उच्छिष्ट का कोई विचार नहीं रहता... इन सब कार्योंमें लोक मर्यादा बनी रहती है, पर एक भंगीके पैसेसे बनी हुई धर्मशालामें ठहरनेसे लोक मर्यादा नष्ट हुई जाती है, याने यहां की पृथिवी ही अशुद्ध हो गई!

बहुत कहा तक कहें उस धर्मशालामें ठहरना किसीने स्वीकार नहीं किया अन्तमें एक ग्राममें जाकर एक कृषकके मकानमें ठहर गये। कृषक बहुत ही उत्तम प्रकृति का था उसने अपना [illegible] हम लोगोंने आनन्दसे [illegible] का गये, [illegible] वहां ठहर बहुत [illegible] हमारा [illegible] गये।

सेठ कमलापति उदासी स्वामी दामोदर मोहनलालजी तथा बाबू गोविन्द लालजी जो पुराने साथी थे, आनन्दसे मिल गये। श्रीयुत बाबू चन्द्र कुमारजी आरावाले भी मिल गये। आपकी धर्मपत्नी का इनसे बहुत ही स्नेह रहता है। श्री मक्खनलालजी सिमई इटावा वाले भी यहां धर्म साधनके लिये आये। आपको ज्ञान सुलभ है, धर्मके सम्पन्न हैं शास्त्र सुनने का आपको बहुत ही प्रेम है सुबोध भी हैं।

इस प्रकार यहां आनन्दसे दिन बीतने लगे चार मासके बाद गिरेडीमें चातुर्मासके लिए चले गये। मदन बाबू बड़े प्रेमसे ले गये। पहले दिन चिरकी रहे, वहांसे गिरिराज कि यात्रा कर फिर वहीं आ गये। वहांसे बराकट गये, यहां पर श्वेताम्बर धर्मशाला बहुत सुन्दर है, बीचमें मन्दिर है उसीमें सानन्द रात्रि व्यतीत की। प्रातः काल चलकर गिरेडी पहुँच गये। यहां पर सुखसे काल बीतने लगा। बाबा राधाकृष्णके बँगला में ठहरे। यहां पर दो मन्दिर हैं, एक तेरा पंथी आम्नाय का है, उसमें भी ब्रह्मचारी तेचरीदासजी पूजन करते हैं। दूसरा मन्दिर बाबू रामचन्द्र मदनचन्द्रजी का है, यह मन्दिर बहुत ही सुन्दर है, मन्दिरके नीचे एक बढ़िया धर्मशाला है, दो कूप हैं बहुत ही निर्मल स्थान है। यहांके प्रत्येक गृहस्थ स्नेही हैं।

जहां मैं ठहरा था उनके भाई कालूरामजी मोदी थे जो बहुत ही सज्जन थे उनसे मेरा विशेष प्रेम हो गया, वह निरन्तर मेरे पास आने लगे। यहां पर बाबू रामचन्द्रजी बहुत ही सुयोग्य हैं मन्दिर का हिसाब आप ही के पास रहता है लोगों की बड़ी शर थी।

मैंने उनसे कहा कि मन्दिर का हिसाब कर देना आपकी

११४

सागर की ओर

द्रोणगिरिसे सिंघई वृन्दावनजी ने हीरालाल. पुजारी को भेजा। उसने जो जो प्रयत्न किये वे हमारे बुन्देल-खण्ड प्रान्तमें आनेके लिए सफल हुए। हीरालालने कहा कि अब तो देशका मार्ग लेना चाहिये। मैंने कहा—'यह देश अब कुछ करता धरता है नहीं क्या करें? उसने कहा—'सिंघई वृन्दावनने कहा है कि वर्णीजी जो कुछ कहेंगे हम करेंगे।' मैंने कहा—'अच्छा' मनमें यह विकल्प तो था ही कि एक बार अवश्य सागर जाकर पाठशालाको चिरस्थायी किया जाय। यही बीज ऐसे पवित्र स्थानसे मेरे पृथक् होनेका हुआ। वास्तवमें शिक्षा प्रचारकी दृष्टिसे बुन्देलखण्डकी स्थिति सोचनीय है। लोग रथ आदि महोत्सवोंमें तो खर्च करते हैं पर इस ओर जरा भी ध्यान नहीं देते। शिक्षा प्रचारको दृष्टिसे अनेक प्रयत्न हुए पर अभी तक चाहिये उतनी सफलता नहीं मिली है। यद्यपि इस दृष्टिसे हमने बुन्देलखण्डमें आकर यहांकी स्थिति सुधारनेका विचार किया पर परमार्थसे देखा जाय तो हमसे बड़ी गलती हुई कि

पार्श्व प्रभुके पादमूल का त्याग कर 'पुनर्मूषको भव' का उपाख्यान चरितार्थ किया।

उपाख्यान इस प्रकार है--

एक साधुके पास एक चूहा था। एक दिन एक बिल्ली आई चूहा डर गया। डरकर साधु महाराजसे बोला—भगवन्! मार्जाराद् बिभेमि', साधु महाराजने आशीर्वाद दिया 'मार्जारो भव' इस आशीर्वादसे चूहा बिलाव हो गया। एक दिन बड़ा कुत्ता आया, मार्जार डर गया और साधु महाराजसे बोला--'प्रभो! शुनो बिभेमि', साधु महाराजने आशीर्वाद दिया 'श्वा भव' अब वह मार्जार कुत्ता हो गया। एक दिन वनमें महाराजके साथ कुत्ता जा रहा था अचानक मार्गमें व्याघ्र मिल गया, कुत्ता महाराजसे बोला— व्याघ्राद् बिभेमि' महाराजने आशीर्वाद दिया 'व्याघ्रो भव', अब वह व्याघ्र हो गया। जब व्याघ्र तपोवनके सब हरिण आदि पशुओंको खा चुका तब एक दिन साधु महाराजके ही ऊपर झपटने लगा। साधु महाराजने पुनः आशीर्वाद दे दिया 'पुनर्मूषको भव'।

यही अवस्था हमारी हुई, शिखरजीमें (ईसरी में) सानन्द धर्म साधन करते थे किन्तु लोगोंके कहनेसे आकर फिरसे सागर आनेका निश्चय कर लिया। इस पर्यायमें हमसे यह महती भूल हुई जिसका प्रायश्चित फिरसे वहीं जानेके सिवाय अन्य कुछ नहीं। चलने आ गया।

लोगोंने बहुत कुछ कहा कि बुन्देलखण्डके मनुष्योंका स्थान स्थान पर अपमान होता है। इससे मुझे कुछ स्वदेशाभिमान जागृत हो गया और यहांके लोगोंका कुछ उत्थान करनेकी भावना उत्पन्न हुई। जब मैं चलने लगा तब गिरीडीहकी

समाजको बहुत ही खेद हुआ। जिसका कारण स्नेह ही था। श्री कालूरामजी मोदी और बाबू रामचन्द्रजीका कहना था कि ये सब संसारके कार्य हैं होते ही रहते हैं मानापमान पुण्य पापोदय में होते हैं, दूसरेके पीछे आप अपना अकल्याण क्यों करते हैं? पर मनमें एक बार सागर आनेकी प्रबल भावना उत्पन्न हो चुकी थी अतः मैंने एक न सुनी।

११६

मार्गमें
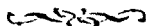
ईसरीसे प्रस्थान करनेके समय सम्पूर्ण त्यागी वर्ग एक मील तक आया। सबने बहुत ही स्नेह जनाया तथा यहां तक कहा पछताओगे। परन्तु मुझ मूढ़ने एक न सुनी। बाबू धन्यकुमार जी बड़वालोंने भी बहुत समझाया परन्तु मैंने एककी न सुनी और वहांसे चलकर दो दिन बाद हजारीबाग रोड आ गया। यहा पर दो दिन रहा बाद कोडरमा पहुंच गया। यहां पर चार दिन तक नहीं जाने दिया। यहां पण्डित गोविन्दरायजी हैं जो बहुत ही सज्जन हैं सुबोध हैं। आपकी धर्मपत्नी सागर की लड़की हैं आपके सुपुत्र भी पढ़नेमें बहुत योग्य हैं। यहां श्री जगन्नाथ प्रसादजीने पच्चीस सौ रुपया दान देकर एक औषधालय खुलवाया है। यहांसे चलकर रफीगञ्ज आये। दो दिन ठहरे यहां पर मन्दिर बन रहा था उसके लिये पांच हजार रुपया का चन्दा हो गया। यहांसे चलकर औरंगाबाद आया। यहां पर गया वाले श्री दानूलालजी सेठीका बड़ा मकान है उसीमें ठहरे। आनन्दसे दिन बीता रात्रिको राम धुन सुनी। रामधुन वाले ऐसे मग्न हो जाते हैं कि उनको अपने शरीरकी भी सुध बिसर जाती है। यहांसे चलकर कुछ दिन बाद डालमिया नगर आ गये। यहां पर श्रीमान् साहु शान्ति प्रसादजी साहब रहते

साहू शान्ति प्रसादजी अत्यन्त सादी वेषभूषामें रहते हैं। मैं जिस दिन वहांसे चलनेवाला था उस दिन विहारके गवर्नर आपके यहां आये थे बहुत ही धूमधाम थी परन्तु आप उसी वेषमें रहे जिसमें कि प्रति दिन रहते थे। जो जो वस्तुएं आपके यहां बनती थीं उनकी एक प्रदर्शनी बनाई गई थी। आपके छोटे पुत्रने मुझसे कहा—चलो आपको प्रदर्शनी दिखावें। मैं साथ हो गया, सर्व प्रथम कागजकी बात आई वहां कुछ घास पड़े थे। वह बोला,—समझे, यह घास है इसके छोटे छोटे टुकड़े बुरादा तैयार किया जाता है फिर लुगदी तैयारकी जाती है फिर उसमें सफेदी डालकर उसे सफेद बनाया जाता है। तात्पर्य यह कि उसने बड़ी सरलतासे कागज बननेकी पूरी प्रक्रिया शुरूसे अन्त तक समझा दी। इसी प्रकार सीमेन्ट तथा शक्कर आदि बननेकी व्यवस्था अच्छी तरह समझा दी। मैं बालककी तीव्रता देखकर बहुत ही प्रसन्न हुआ। ऐसे होनहार बालक अन्यत्र भी सुरक्षित रहते हैं। ऐसी ही बुद्धि उनकी होती है बल्कि किन्हीं किन्हींकी इनसे भी अधिक होती है परन्तु उन्हें कोई निमित्त नहीं मिलता। मैं चार दिन वहां रहा आनन्दसे समय बीता। आपने एक गाड़ी और एक मुनीम साथ कर दिया जो सागर तक पहुंचा गया था। आपने बहुत कहा—सागर जाओ परन्तु कालके समक्ष कुछ न चली। वहांसे चलकर दिन बाद बनारस आ गया।

चालीस मील पहलेसे बाबू रामस्वरूपजी बरुआ सागरसे आ गये। बनारस सानन्द पहुंच गये। वहां पर स्याद्वाद विद्यालय है। इसका उत्सव हुआ चार हजार रुपयाका चन्दा हो गया। पं० कैलाशचन्द्रजी प्रधानाध्यापक हैं जो बहुत योग्य व्यक्ति हैं। पं० फूलचन्द्रजी 'सिद्धान्त शास्त्री' भी यहीं रहते हैं।

[illegible]लालजी शास्त्री और सागर से पं० मुन्नालालजी [illegible] तथा श्री पूर्णचन्द्रजी बजाज भी आ गये। इनोंके व्याख्यान अत्यन्त रोचक हुए। यहाँ पर श्री महेशदासजी व श्री मधुसूदनजी बड़े सज्जन हैं। बाबू हर्षचन्द्रजी स्याद्वाद-पाठशालाके अधिष्ठाता हैं और बाबू सुमतिलालजी मंत्री। दोनों ही बहुत योग्य तथा उत्साही हैं। परन्तु हम एक दम ही अयोग्य निकले कि संस्कृत विद्याका केन्द्र त्यागकर पुनर्नूपको भवको कथा चरितार्थ करनेके लिये सागरको प्रस्थान कर दिया और बनारसकी हद छोड़नेके बाद दसमी प्रतिमाका व्रत पालने लगे।

चार दिनके बाद मिर्जापुर पहुंच गये। वहां पर दो दिन रहे पश्चात् दस दिनमें रीवा पहुंच गये। यहां पर श्री शान्तिनाथ स्वामीकी मूर्ति दर्शनीय है। यहांसे चलकर तीन दिनमें सतना पहुंचे यहां पर श्रीमान् धर्मदासजी के आग्रह विशेषसे चार दिन रहना पड़ा। आपने एक हजार एक रुपया यह कह कर दिया कि आपकी जहां इच्छा हो वहांके लिये दे देना। यहांसे चलकर पडरिया आये। यहां पर चार दिन ठहरे पश्चात् यहांसे चलकर पन्ना आगये। तीन दिन रहे, यहांसे चन्दन नगर आये। यहां पर पानीका प्रकोप रहा अतः बड़ी कठिनतासे खजराहा पहुंचे। यह अतिशयक्षेत्र प्राचीन एवं कलापूर्ण मन्दिरोंके समुदायसे प्रसिद्ध है यहां शान्तिनाथ स्वामीकी मूर्ति बहुत ही मनोज्ञ है बीस फुटसे कम न होगी यहांके विषयमें पहले लिख चुके हैं।

यहांसे चलकर चार दिन बाद छतरपुर आगये। यहां पर [illegible] जैन साहित्य भण्डार और प्राचीन प्रतिमाएं बहुत हैं परन्तु वर्तमानमें उनकी व्यवस्था सुन्दर नहीं। यहां पर चौधरी [illegible]जी राजमान्य हैं प्रतिष्ठित भी हैं तथा समाजमें उनका

शैली है कि धर्म तो प्रत्येक आत्मामें शक्ति रूपसे विद्यमान रहता है जब जिसके विकाशमें आ जावे वह तभी धर्मात्मा बन जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि कोई जैनधर्मके अनुकूल प्रवृत्ति करे तो उसे दृढ़ करना चाहिये। इस प्रान्तमें ब्रह्मचारी चिदानन्दजीने अधिक जागृति की है। यहाँसे चलकर हम गोरखपुर होते हुए, घुवारा आये यह ग्राम बहुत बड़ा है। पाँच जिनालय है पचास घर जैनियोंके हैं, जिनमें पण्डित दामोदर बहुत ही सुयोग्य हैं धनाढ्य भी साथ ही प्रभाव शाली भी हैं। आपकी ग्राममें अच्छी मान्यता है। यहां पर स्वर्गीय छतारे सिघईके दो पुत्र थे उनमें एक का तो स्वर्गवास हो गया। उनके तीन सुपुत्र हैं तीनों ही व्यापरमें कुशल हैं। दूसरे पुत्र प्यारेलालजी हैं बहुत योग्य हैं। एक सेठ भी ग्राममें हैं जो बहुत योग्य हैं। इसी तरह अन्य महानुभाव भी अच्छी स्थितिमें हैं। यदि यह लोग पूर्ण शक्तिसे काम लेवें तो एक विद्यालय यहां चल सकता है। परन्तु इस ओर अभी दृष्टि नहीं है।

यहाँसे चलकर बाराग्राम आये। ग्राममें तीन घर जैनियोंके हैं। मन्दिर बनवा रहे हैं परन्तु उत्साह नहीं। यहाँसे चलकर नीमटोरिया आये। यहाँपर पाँच जिनालय और जैनियोंके पचीस घर हैं। कई सम्पन्न हैं। तीन दिन ठहरा। एक पाठशाला भी स्थापित हो गई है। यहाँसे चलकर अछावन आये, यहाँपर एक मन्दिर बन रहा है—अधूरा पड़ा है। यहाँके ठाकुर बड़े सज्जन हैं। उन्होंने सब पञ्चायतको डाटा और मन्दिरके लिये पर्याप्त चन्दा करवा दिया। यहाँसे चलकर दिगुनपुरा बसे, यहाँसे चलकर जामोंडेमें भोजन किया और शामको बराघटा पहुँच गये।

सेठ कमलापतिजी यहींके हैं। उन्हींके मकानपर ठहरे। आपके सुपुत्रोंने अच्छा स्वागत किया। यहाँपर सेठ [illegible]

जाता हूँ और वहाँसे दूसरी गाड़ी लाता हूँ आप निश्चिन्त होकर सोइये। इसी बीच जिसके घरपर ठहरे थे वह गृहपति आ गया और हमसे बोला—'वर्णीजी इस गाड़ीवानको जाने दीजिये जिसने गाड़ी भेजी उसने जान बूझकर रद्दी गाड़ी भेजी। यह लोग बड़े कुशल होते हैं, इनकी मायाचारी आप क्या जानें ? हम इनके किसान हैं, इनके हथकंडोंसे परिचित हैं, आज इनकी बदौलत हम लोगोंकी यह दशा हो गई है कि तनपर कपड़ा नहीं घरमें दाना नहीं। पर परमात्मा सबकी फिक्र रखता है ऐसा कानून बना कि इनकी साहूकारी मिट्टीमें मिल गई कर्जोकी बीसों वर्षकी किस्तें हो गईं। खैर इस चर्चासे क्या लाभ ? मेरी घरकी गाड़ी है वह आपको सागरतक पहुंचा आवेगी। क्या आप मेरी इस नम्र प्रार्थनाको स्वीकार न करेंगे ? इन लोगोंके द्वारा तो आप ६०० मील आ गये, बीस मील यदि मेरे द्वारा भी सेवा हो जावे तो मैं भी अपने जन्मको सुफल समझूं ?'

मैंने कहा—'आप लोग किसान हैं खेतोंका काम अधिक रहता है।' इस पर वह बोला—'अच्छा, आप इसी गाड़ीसे जाइये।' इसके अनन्तर उसने कहा—'कुछ उपदेश दीजिये।' मैंने कहा—'अच्छा, आप कूड़ा वगैरहमें आग न लगाइये तथा पर स्त्रीका त्याग करिये।' वह बोला—'न लगावेंगे न लगते देख खुश होवेंगे। पर स्त्रीका त्याग वगैरह शब्द तो हम नहीं जानते पर यह अवश्य जानते हैं कि जो हमारी स्त्री है वही भोगने योग्य है। जब हम अत्यन्त व्याकुल होते हैं तब उसके साथ विषय सेवन करते हैं। इसीसे आजतक हमारा शरीर नीरोग है।' उसने अपने पुत्रको बुलाकर उससे भी कहा कि बेटा ! वर्णीजी जो व्रत देते हैं उसका पालन करना तथा कभी वेश्या स्त्रीके नाचमें न जाना और वर्णीजीका कहना है

सागरके अञ्चलमें

सागर ही नहीं इससे सम्बद्ध ग्रामोंमें भी लोगोंके हृदयमें शिक्षाके प्रति प्रेम जागृत होने लगा था। खुरईमें भी यहाँकी समाजने श्री पार्श्वनाथ जैन गुरुकुलकी स्थापना कर ली थी। उसका उत्सव था जिसमें श्रीमान् पं० देवकीनन्दनजी, सिद्धांतके मर्मज्ञ पं० वंशीधरजी इन्दौर तथा मुन्नालालजी समगौरया आदि विद्वान् पधारे थे। कारंजासे श्रीमान् समन्तभद्रजी क्षुल्लक का भी आगमन हुआ था। मैं भी पहुंचा, बहुत ही समारोहके साथ गुरुकुलका उद्घाटन हुआ। रुपया भी लोगोंने पुष्कल दिया। विशेष द्रव्य देनेवाले श्री स० सिं० गणपतिलालजी गुरहा तथा श्रीमन्त सेठ ऋषभकुमारजी हैं। ऋषभकुमारजीने गुरुकुलको बिल्डिंग बनवा देनेका वचन दिया। इस अवसरपर भेलसाके प्रसिद्ध दानवीर श्रीमन्त सेठ लक्ष्मीचन्द्रजी पधारे थे। आपने गुरुकुलको अच्छी सहायता दी। आजकल जो धवल आदि ग्रन्थोंका उद्धार हो रहा है उसका प्रथम यश आपको ही है।

[illegible] चलकर [illegible]के प्राचीन मन्दिरके दर्शन [illegible] एक दिन रहा, वहींपर [illegible] ज्वर था, कुछ भी स्मरण न था। पता [illegible] [illegible] आ गये। साथमें [illegible] [illegible] भी थे। मुझे डोलीमें रखकर सागर ले आये। मुझे

कुछ भी स्मरण न था। दस दिन बाद स्वास्थ्य सुधरा। यह सब हुआ परन्तु भीतरकी परिणतिका सुधार नहीं हुआ इसीसे तात्त्विक शान्ति नहीं आई।

सुखपूर्वक सागरमें रहने लगे। चातुर्मास यहींका हुआ। चातुर्मासमें अच्छे अच्छे महानुभावोंका संसर्ग रहा। सहारनपुरसे श्री नेमिचन्द्रजी वकील, उनके बड़े भाई रतनचन्द्रजी मुख्तार जो कि करणानुयोगका अच्छा ज्ञान रखते हैं, पण्डित शीतलप्रसादजी, पं० हुकमचन्द्रजी सलावा जिला मेरठ तथा श्री त्रिलोकचन्द्रजी सलावा आदि सज्जन पधारे। आपके सद्भावमें धार्मिक चर्चाका अच्छा आनन्द रहा। गुजरात प्रान्तसे भी मोहनभाई राजकोट तथा ताराचन्द्रजी आदि सज्जन पधारे। एक महाशय अहमदाबादसे भी पधारे। इस प्रकार चातुर्मास आनन्दसे बीता।

इसके बाद श्री पं० चन्द्रमौलिजी जो कि सागरके विद्यालयके सुपरिन्टेन्डेन्ट थे पटना ग्राम ले गये। बीचमें खाना मिला। यहाँ पर स्वर्गीय कन्हैयालालजी चौधरीके सुपुत्र रहते हैं जो धनाढ्य हैं परन्तु पदार्थोंके अति लुब्ध हैं। बड़े प्रेमसे आहार [illegible] एक बार मैंने पाठशालाको वार्षिक दान किया। फिर पटना पहुंचे, यह ग्राम यहाँकी तहसील है यहाँपर बाबूलालजी बहुत सज्जन हैं एक पाठशाला है जिसमें पं० [illegible] प्रसाद अध्यापक अध्ययन करते हैं [illegible]

से ही पृथक् थे उसकी दुकान और मकान पर कब्जा कर लिर और हमसे बोले कि नालिश कर लो! मेरे पास उसका जो कुछ था वह मैंने वहां की पाठशालाके मन्त्रीको दे दिया और कह कि वह तो दान कर गई पर इन्हें बलात्कार छीनना है ले ले परन्तु फल उत्तम न होगा। पापके परिणामों से कभी भी सुख नहीं होता। इस प्रकार व्यवस्था कर वहांसे नैनागिरिके मेलाके चला गया। मेला अच्छा हुआ पाठशालाको दस हजार रुपये के लगभग रुपया इकट्ठा हो गया। यह क्षेत्र बहुत ही रम्य है। यहां पर छोटी सी पहाड़ी है उस पर अनेक जिन मन्दिर हैं। पन्द्रह मिनटमें धर्मशालासे पहाड़ पर पहुंच जाते हैं एक घण्टामें मन्दिरों के दर्शन हो जाते हैं। यहां एक पुराना मन्दिर है जिसमें प्राचीन कालकी बहुत सुन्दर मूर्ति है मन्दिरोंके दर्शन कर नीचे आइये तब एक सरोवर है जिसके मध्यमें सेठ जवाहरलाल मामदावालोंने एक मन्दिर बनवाया है जिसे देखकर पावापुरके जल मन्दिरका स्मरण हो आता है। उसके दर्शन करनेके बाद एक बड़ा भारी मकान मिलता है जो कि श्रीमान् मलैया शिवप्रसाद शोभाराम बालचन्द्रजी सागरका बनवाया हुआ है और जिसमें पचास छात्र सानन्द विद्याध्ययन कर सकते हैं। इस क्षेत्र पर श्री स्वर्गीय दौलतराम वर्णी पाठशाला है जिसमें बीस छात्र अध्ययन करते हैं। श्री स्वर्गीय दौलतरामजी वर्णी एक बहुत ही विद्वान् महात्मा थे आपके विषयमें पहले बहुत कुछ लिख आया हूँ। इनका समाधिमरण इसी क्षेत्र पर हुआ था। आपके गुरु श्री बाबा शिव लालजी थे जो बड़े ही तपस्वी थे। आपके विषयमें भी पहले बहुत कुछ लिख आया हूँ, फिर भी पाठकोंको आपके तपश्चरणकी एक बात सुनाना चाहता हूँ वह इस प्रकार है—श्री मुरलीधर गोलापूर्व अमरमऊके रहनेवाले थे बादमें नागपुर चले गये।

यह एक अप्रासङ्गिक बात आ गई। अस्तु। नैनागिरिके आसपास जैनियोंकी बसती अच्छी है तथा सम्पन्न घर बहुत हैं परन्तु इस ओर उनकी रुचि विशेष मालूम नहीं होती अन्यथा यहां एक अच्छा विद्यालय चल सकता है।

नैनागिरिसे चलकर शाहपुर आया। बीचमें चंदा मिला यहां भी पाठशालाके लिये एक हजार पांच सौ रुपये हो गये। शाहपुरके आदमी उत्साही बहुत हैं। यहां पुष्पदन्त विद्यालयको पूर्वका द्रव्य मिलाकर बीस हजार रुपयेका फण्ड हो गया। विद्यालयके सिवा यहांपर एक चिरोंजाबाई कन्याशालाके नामसे महिला पाठशाला भी खुल गई। इसकी स्थापनका श्रेय श्री बदामोबाई गयाको है। आपकी प्रवृत्ति इतनी निर्मल है कि देखनेसे प्रशम मूर्तिका दर्शन हो जाता है। आप स्वयं दान देती हैं और अन्यसे प्रेरणा कर दिलाती हैं। आपने पांच सौ मनुष्य एवं स्त्रियोंके बीच व्याख्यान देकर सबके मनको कोमल बना दिया जिसमें कुछ ही समयमें पचास रुपया मासिकका चन्दा हो गया।

अनन्तर पटनागञ्जके मन्दिरोंके दर्शनके लिए आये। जो कि रहली मामकी नदीके ऊपर हैं। यहां पर तीन दिन रहे फिर दमोहको चले गये वहांसे श्री कुण्डलपुर गये। यहांपर परवार सभाका उत्सव था जिसमें बड़ी बड़ी स्पीचें हुई। कुछ लोग तो यहांतक जोशमें आये कि एक लाख रुपया इकट्ठा कर एक वृहत् शिक्षा संस्था स्थापित करना चाहिये। जोशमें आकर सबने इस बातकी प्रतिज्ञा की पर अन्तमें कुछ भी नहीं हुआ। धीरे धीरे सबका जोश ठण्डा हो गया।

ख्याति है। आपका संघ थोड़े ही समयमें दि० जैन महासभ और दि० जैन परिषद्के समान प्रख्यात हो गया। सागरसे श्र प० दयाचन्द्रजी साहब जो कि जैन सिद्धांतके अच्छे वक्ता और समस्त धर्म ग्रन्थ जिन्हें प्रायः कण्ठस्थ हैं आये थे। तथ बनारससे पण्डित फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री भी जो कि क णानुयोगके निष्णात और ममज्ञ पण्डित हैं आये थे। आप वे विद्वत्परिषद्के प्राण ही हैं। यदि यह परिषद् परस्पर प्रेम पूर्व काम करती रही तो इसके द्वारा समाजका बहुत कुछ कल्याण हे सकता है और जो 'मैं' 'तू' के चक्रमें पड़ गई तो क्या होगा से भविष्यके गर्भमें है।

यहां पर तीन दिन परिषद्की बैठकें हुईं धर्मकी बहुत प्रभा वना हुई तथा एक बात नवीन हुई कि पण्डित महाशयोंने दिल खोलकर परिषद्के कोषको स्थायी सम्पत्ति इकट्ठी कर दी। आशा है कि यदि यह विद्वद्वर्ग इस तरह उदारता दिखाता रहा तो कुछ समयमें ही परिषद् वास्तवमें परिषद् हो जावेगी। परिषद्को अच्छी सफलता मिली। यदि कोई दोष देखा तो यही कि अभी परस्परमें तिरेसठ पनाकी त्रुटि है। जिस दिन यह पूर्ण हो जावेगी उस दिन परिषद् जो चाहेगी कर सकेगी। असम्भव नहीं, परन्तु कालकी आवश्यकता है इस श्लोककी ओर ध्यान देने की भी आवश्यकता है—

> 'अयं परो निजो वेति गणना लघुचेतसाम्।
> उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥'

इसमें अर्ध श्लोक तो हेय है और अर्ध ग्राह्य है। आशा है ये लोग स्वयं विवेचक हैं शीघ्र ही इसे अपनावेंगे। जिस दिन इन महाशयोंने अपनी प्रवृत्तिमें इसे तन्मय बना लिया उस दिन

जगतका उद्धार करना कोई कठिन नहीं क्योंकि जगत्का उद्धार वही कर सकता है जो अपना उद्धार कर ले अन्यथा सहस्रों हुए हैं और होंगे। जैसे हुए वैसे न हुए। मेरी श्रद्धा है कि जिन महानुभावोंने ज्ञान द्वारा आत्मीय कल्याण न किया उनका ज्ञान तो भार भूत ही है। कन्वेसी लालटेनके गदहा ढव ज्ञानका उन्हें कोई लाभ नहीं। मेरा ऐसा कहना नहीं कि सब ही की यह प्रवृत्ति है। बहुतसे महानुभाव ऐसे भी हैं कि स्वपर कल्याणके लिये ही उनका ज्ञान है किन्तु जिनका न हो उन्हें इस ओर लक्ष्य देना उचित है। अस्तु, जो हो वे लोग जानें या वीर प्रभु जानें किन्तु मुझे तो पण्डितोंके समागमसे बहुत ही शान्ति मिली और इतना विपुल हर्ष हुआ कि उसकी सीमा नहीं। हे भगवन्! जिस प्रान्तमें शुद्ध पाठके लिये दस या बीस ग्राममें कोई एक व्यक्ति मिलता था वह भी शुद्ध पाठ करनेवाला नहीं मिलता था, आज उन्हीं ग्रामोंमें राजवार्तिकादि ग्रन्थोंके विद्वान् पाये जाते हैं। जहां गुणस्थानोंके नाम जाननेवाले कठिनतासे पाये जाते थे आज वहां जीवकाण्ड और कर्मकाण्ड के विद्वान् पाये जाते हैं। जहां पर पूजन पाठका शुद्ध उच्चारण करनेवाले न थे आज वहां पञ्च कल्याणकके करानेवाले विद्वान पाये जाते हैं। जहां पर लोगोंको "जैनी नास्तिक हैं" यह शब्द सुननेको मिलता था आज वहींपर यह शब्द लोगोंके द्वारा सुननेमें आता है कि जैनधर्म ही अहिंसा धर्मका प्रतिपादन करनेवाला है इसके बिना जीवका कल्याण दुर्लभ है। [illegible] पर [illegible] पर से वाद करनेमें भयभीत होते थे आज वहां पर [illegible] पण्डितोंसे शास्त्रार्थ करनेके लिये [illegible] देखकर ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो [illegible] और [illegible] लोग जैनधर्मका [illegible] हैं [illegible] इस धर्मके

गौरव स्वीकृत करने लगे हैं इसका श्रेय इन विद्वानोंको ही तो है तथा साथ ही हमारे दानी महाशयोंको भी है जिनके कि द्रव्य-दानसे यह मण्डली बन गई। कल्पना करो यदि श्री धन्यकुमार सिंघई और सकल पञ्च इस समारोहकी आयोजना न करते तो यह सौभाग्य जनताको प्राप्त न होता। हम तो जनताको भी धन्यवाद देते हैं कि उसने इस दृश्यको देखा यदि जनता न आती तो व्याख्यानोंका अरण्यरोदन होता। अपने अपने अधिकारोंका सबने उपयोग किया। हीरा बहुमूल्य वस्तु है परन्तु कुशल यदि उसे अपने हृदयमें स्थान न दे तो उसकी क्या महिमा? मोती उत्तम जातिके हैं यदि उन्हें सूतमें गुम्फित न किया जावे तो हार संज्ञा नहीं पा सकता। इत्यादि कहाँ तक कहा जावे? कटनीका यह समारोह बहुत ही प्रभावना कारक हुआ। मेरी तो यह श्रद्धा है कि यदि ऐसे समारोह किये जावें तो जैनधर्मका अनायास प्रचार हो जावे क्योंकि स्वामी समन्तभद्रने कहा है कि—

> 'अज्ञानतिमिरव्याप्तिमपाकृत्य यथायथम्।
> जिनशासन माहात्म्य प्रकाशः स्यात्प्रभावना'॥

विद्वानोंके साथ ही कई त्यागी महाशय भी पधारे थे अतः उनसे भी त्यागके महत्त्वकी प्रभावना हुई क्योंकि स्वामी अमृतचन्द्र सूरिने लिखा है कि—

> 'आत्मा प्रभावनीयो रत्नत्रयतेजसा सततमेव।
> दानतपोजिनपूजा विद्यातिशयैश्च जिन धर्मः'॥

व्याख्यानोंका अच्छा प्रभाव रहा। व्याख्यान दाताओंमें प० राजेन्द्र कुमारजी मन्त्री भारतीय जैन संघ मथुरा, प० कैलाश चन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री काशी, प० जगन्मोहनलालजी कटनी, श्रीयुत कर्मानन्दजी शास्त्री सहारनपुर जो कि पहले आर्यसमाज

के दिग्गज एवं शास्त्रार्थ केसरी थे तथा सागर विद्यालयकी पंडित मंडली आदि प्रमुख थे। हिन्दी साहित्यके प्रसिद्ध लेखक श्री जैनेन्द्रकुमारजीका भी अपूर्व भाषण हुआ। मथुरासे संघके सभी विद्वान् आये थे उन महाशयोंके द्वारा लोकोत्तर प्रभावना हुई। तथा देहली निवासी सर्व विदित पं० मक्खनलालजी का बहुत ही सफल व्याख्यान हुआ। आपने कन्या विद्यालयके लिये दिल हिलानेवाली अपील की जिससे चौंतीस हजारका चन्दा हो गया। इस चन्दामें कटनी समाजने पूर्ण उदारताका परिचय दिया। पन्द्रह हजार रुपए तो अकेले सिं० धन्यकुमारजी ने दिये तथा शेष रुपये कटनी समाजके अन्य प्रमुख व्यक्तियोंने दिये एतदर्थ कटनी समाज धन्यवादका पात्र है।

इसी अवसरपर कुँवर नेमिचन्द्रजी पाटनी भी जो कि किसनगढ़ मिलके मैनेजर हैं पधारे थे। आप बहुत ही सज्जन और विद्वान् हैं विद्वान ही नहीं संसारसे विरक्त हैं। आपके पिताका नाम श्री सेठ मगनमल्लजी है जिनकी आगरामें प्रख्यात धार्मिक सेठ श्री भागचन्द्रजीके साझेमें बड़ी भारी दुकान है। श्री सेठ हीरालालजी पाटनी आपके चाचा हैं जिन्होंने किसनगढ़में छह लाख रुपयाका दान किया है और जिनके द्वारा वहांकी संस्थाएं चल रही हैं। आप तीन दिन रहे। आपके समागमसे भी मेलाकी पूर्ण शोभा रही। सागर तथा जबलपुरसे गण्यमान व्यक्ति भी पधारे थे।

मैं श्री सिंघई धन्यकुमारजीके बगलामें जो कि गांवसे लगभग एक मीलपर एक रमणीय बगीचेमें है ठहरा था। आपका भी घर है। सज्जन हैं। आप [illegible] परस्पर प्रेम बहुत है। [illegible] इनके [illegible]

एक बार जब ये गिरिराजकी यात्राके लिये गये तब मैं ईसरीमें धर्म साधन करता था। आपकी मातेश्वरीने मेरा निमन्त्रण किया और अन्तमें जब भोजन कर मैं अपने स्थानपर आने लगा तब आपने बड़े आग्रहके साथ कहा कि आजीवन मेरा निमन्त्रण है। मैंने बहुत कुछ निषेध किया परन्तु एक न चली। जब मैंने दशमी प्रतिमा लेली तभी आपका निमन्त्रण पूर्ण हुआ। आप तीन वर्षतक बराबर निमन्त्रणका व्यय भेजते रहे।

यहाँ एक बात और उल्लेखनीय है जिसे पढ़कर मनुष्य बहुत सी कल्पनाएं करेंगे। बहुतसे यह कहेंगे कि वर्णीजी को चरणानुयोगका कुछ भी बोध नहीं और इसे मैं स्वीकार भी करता हू। बहुतसे कहेंगे दयालु हैं और बहुतसे कहेंगे कि मानके लिप्सु हैं कुछ भी कहो पर बात यह है मैं भोजनकर बागमें जा रहा था। बीचमें एक वृद्धा शिरके ऊपर घासका गट्ठा लिये बेचने जा रही थी। एक आदमीने उस घासका साढ़े तीन आना देना कहा बुढ़ियाने कहा चार आना लेवेंगे। वह साढ़े तीन आनासे अधिक नहीं देता था। मुझसे न रहा गया, मैंने कहा-भाई घास अच्छी है चार आना ही दे दो बेचारी बुढ़िया कहाँ भटकेगी। उसने चार आना दे दिये बुढ़िया खुश होकर चली गई। इसके बाद स्टेशनके फाटकपर आया वहाँ एक बुड्ढा ब्राह्मण सत्तूका लोंदा बनाये बैठा था। मैंने कहा—'बाबाजी सत्तू क्यों नहीं खाते?' वह बोला—'भैया पानी नहीं है।' मैंने कहा—'नलसे ले आओ।' वह कहने लगा 'नल बन्द हो गया है।' मैंने कहा—'कुएसे लाओ।' वह बोला डोरी नहीं है। मैंने कहा—उस तरफ नल खुला होगा वहाँसे लाओ।' बुड्ढेने कहा—सत्तूको छोड़कर कैसे जाऊँ?' मैंने कहा 'मैं आपके सामानकी रक्षा करूंगा आप सानन्द

राजनैतिक विद्वान् हैं। आपकी प्रतिभाके बलसे जबलपुरमें सदा शान्ति रहती है। आप केवल राजनीतिके ही पण्डित नहीं हैं उच्चकोटिके साहित्यकार भी हैं। आपने रामायणके समान कृष्णायन बनाया है जो कि एक अद्वितीय पुस्तक है। इतना ही नहीं दर्शन शास्त्रमें भी आपका पूर्ण प्रवेश है। एक बार आपके सभापतित्वमें आजाद हिन्द फ़ौजवालोंकी सहायता करने वावत व्याख्यान थे मुझे भी व्याख्यानका अवसर मिला। यद्यपि मैं तो राजकीय विषयोंमें कुछ जानता नहीं फिर भी मेरी भावना थी कि हे भगवन्! देशका संकट टालो, जिन लोगोंने देशहितके लिये अपना सर्वस्व न्यौछावर किया उनके प्राण संकटसे बचाओ, मैं आपका स्मरण सिवाय क्या कर सकता हूं? मेरे पास त्याग करनेको कुछ द्रव्य तो है नहीं। केवल दो चद्दरें हैं इनमेंसे एक चद्दर मुकदमेकी पैरवीके लिये देता हूँ और मनसे परमात्माका स्मरण करता हुआ विश्वास करता हूँ कि यह सैनिक अवश्य ही कारागृहसे मुक्त होंगे।

मैं अपनी भावना प्रकट कर बैठ गया अन्तमें वह चादर तीन हजारमें नीलाम हुई। पण्डित द्वारका प्रसादजी इस प्रकरणसे बहुत ही प्रसन्न हुए। इस तरह जबलपुरमें सानन्द काल जाने लगा।

शहरका कोलाहल पूर्ण वायुमण्डल पसन्द न आनेसे मैं मढ़ियाजीमें सुखपूर्वक रहने लगा। गुरुकुल भी वहीं चला गया। इन्दौरसे ब्र० कृष्णाबाईजी सोगानी आई आपने गुरुकुलकी व्यवस्था रखनेमें बड़ा परिश्रम किया परन्तु अन्तमें चली गई फिर यमुना प्रसाद जी [illegible] मुहल्ले[illegible] बनाई गई इसका स्वामित्व गुरुकुलका [illegible] आजकल [illegible] है [illegible]

मचसचन्द्रजी जो पहले बड़नगरमें थे सुपरिन्टेन्डेन्ट हैं काम अच्छा चल रहा है। गुरुकुलके अधिष्ठाता श्रीमान् पण्डित जगन्मोहनलालजी हैं।

ब्र० मनोहर लालजी तथा ब्र० पन्नालालजी सेठी भी सहारनपुरमें गुरुकुलकी व्यवस्था कर जबलपुर वापिस लौट आये। आप दोनोंके कई बार प्रवचन हुए जिन्हें जनता रुचिपूर्वक श्रवण करती थी।
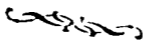
लोगोंके ऊपर विद्यालय का जो रुपया बकाया था, वह एक घण्टा में वसूल हो गया। और कन्याशालाके लिये नवीन चन्दा हो गया।

शाहपुरसे चलकर पड़रिया ग्राम आये, यहां पर एक लुहरी सेन का घर है। जो बहुत ही सज्जन है। लोग उसे पूजन करनेसे रोकते हैं। बहुत विवादके बाद उसे पूजन की खुलासी कर दी गई यहांसे चलकर सानौदा आये। यहां सात आठ घर जैनियोंके हैं, मन्दिर खपरैल है। कुछ कहा गया जिससे नवीन मन्दिर बननेके लिये दो हजार रुपया के लगभग चन्दा हो गया। यहां से चलकर बहेरिया आ गये, एक जमींदार की दहलानमें ठहर गये। यहां पर सागरसे पचासों मनुष्य आये बहुत स्नेह पूर्वक कुछ देर रहे। अनन्तर सागर चले गये। हमने आनन्दसे रात्रि व्यतीत की और प्रातः काल चलकर दस बजे सागर पहुंच गये। हजारों मनुष्यों की भीड़ थी। शहर की प्रधान सड़कें वन्दन मालाओं और तोरण द्वारोंसे सुसज्जित की गई थीं।

शान्ति निकुञ्जमें पांच छः दिन सुख पूर्वक रह कर यहांसे वरखेरा गये। जिस समय सागरसे चलने लगे। उस समय नर-नारियों का बहुत समारोह हुआ। स्त्रियोंने रोकने का बहुत ही आग्रह किया। मैंने कहा यदि सागर समाज महिलाश्रमके लिये, एक लाख रुपया देने का वायदा करे तो हम सागर आ सकते हैं। स्त्री समाजने कहा कि हम आपके वचन कीपूर्ति करेंगे।

वरखेरा सागरसे चार मील है, स्वर्गीय सिंघई बालचन्द्रजी का ग्राम है। उनके भतीजे सिंघई बाबूलालजी ने उस ग्राम की अच्छी उन्नति की है। एक बढ़िया बंगला बनवाया है, यहां एक दिन ठहरे, और यहीं भोजन किया। यहांसे भोजन करनेके बाद

हुआ। अनन्तर श्री बालचन्द्रजी मलैयाने जो कि शिक्षा विभागके मन्त्री हैं पाठशालाकी रिपोर्ट सुनाई तथा पाठशालाकी रक्षाके लिये अपीलकी। मैंने समर्थन किया। दस हजार एक रुपया श्री सिंघई कुन्दन लालजीने एकदम प्रदान किया तथा इतना ही श्री बालचन्द्रजी मलैयाने दिया। सिंघई वृन्दावनजीके न होनेपर भी उनके सुपुत्रने दो हजार कहा। मैंने कहा पांच हजार एक कह दीजिये। उसने हँसकर स्वीकारता दी। इसके बाद पांच सौ एक रुपया स० सि० दामोदर दासजी घुवारावालोंने दिये तथा फुटकर चन्दा भी तीन हजार रुपयाके लगभग हो गया। पश्चात् सन्ध्या समय सन्निकट होनेसे यह कार्य स्थगित हो गया। अन्तमें रात्रि आ गई। शास्त्र प्रवचन पण्डित गोरेलालजीका हुआ जो कि बहुत उत्तम रहा।

मेला बिघट गया, सब मनुष्य अपने अपने घर चले गये। हम ब्रह्मचारी चिदानन्दजी तथा श्री क्षेमसागरजी क्षुल्लक सवपारा जो कि द्रोणगिरिसे एक मील है श्री हीरालाल पुजारीके साथ आये। यह ग्राम अच्छा है यहां पर मेरे मामा रहते थे। ग्राम वालोंने बड़े हाव भावसे रक्खा। द्रोणगिरि पाठशालाके लिये सौ रुपयाके अन्दाज चन्दा हो गया। यहांसे छह मील चलकर भगवां आये। यहां पर दो दिवस रहे ग्राम अच्छा है, तहसील है। यहां पर जो तहसीलदार हैं वह बहुत ही योग्य हैं उन्होंने बड़े प्रभावके साथ पाठशालाका चन्दा करवाया। दो हजार रुपया हो गया, इतनी आशा न थी परन्तु लोगोंने शक्ति को उल्लङ्घ कर दान दिया इससे होनेमें विलम्ब नहीं लगा। यहांसे चलकर गोरखपुरा आये। यहां भी ग्रामीण पाठशालाका एक सौ रुपयाके करीब चन्दा हो गया। यहांसे चलकर घुवारा आये। ग्राम बहुत बड़ा है यहां पर कई मरावर हैं। तीस घर

वर्षों से पृथक् थी, इनके पति सिंघई हजारीलालजी बहुत प्रता
थे। कई वर्ष हुए, तब आपका स्वर्गवास हो गया। इनको धर्म
पत्नी सिंघैनने भी अपने घर की सम्यक् रक्षा की परन्तु जाति
सम्बन्ध न रक्खा। आज उनका भी चित्त जातिसे सम्बन्ध कर
का हो गया। और पञ्चोंने उसे सहर्ष स्वीकार किया। सिंघैन क
आयु सत्तर वर्ष की है, परन्तु हृदय की निर्मल नहीं। एकाक
हैं, अतएव स्वतन्त्र हैं, स्वतन्त्रता ही बाधक है। मोक्षमार्गमें प्रवृ
करने वाले जो महापुरुष हैं वे भी जब आचार्यों की आज्ञा
सार प्रवृत्ति करते हैं, तब गृहस्थों को तो किसी न किसी महा
रुषके आधीन रहना उचित ही है। आज कल जैनियोंमें मनुष्
स्वतन्त्र हो गये हैं। किसीके आधीन नहीं रहना चाहते, इसीं
इनके आचार मलिन हो गये हैं। जैनियोंमें सबसे मुख्य पहं
पानी छानकर पीते थे, देव दर्शन का नियम रखते थे, रात्रि भोज
नहीं करते थे, परन्तु अब यह सब व्यवहार छूटता जाता है
नाना कुतर्क कर लोग शिथिल पक्ष का पोषण करते हैं। नब्बे फी
सदी अभक्ष्य भोजन करने लगे हैं। सौ में नब्बे आदमी बाज
तक की औषध सेवन करते हैं। बाजार की मिठाई पान बर
सोडावाटर तो साधारण बात हो गई है। वेष भूषा भाषा एक
दम बदल गया है। स्त्री वर्ग इतना सुकुमार प्रकृति का बन गय
है कि हाथसे पीसना कूटना पाप समझता है। शहरोंमें तो इसे
की प्रशंसा समझी जाती है, कि स्त्री हाथसे पीसे नहीं केवल
उसकी स्वच्छता का ध्यान रक्खे! तथा वस्त्रों को प्रतिदिन साबुन
लगाकर स्वच्छ रक्खे, पनचक्की का आटा पिसावें पानी छाने
स्वच न खावें। कहां तक लिखें सब आचारों की शिथिलता का मूल
कारण बनाए है, जिसे शहर वालोंने अपना लिया है। जहां अनन्त
है वहा कुटुम्बमें पुराना चलन रहता है। और वहीं धर्मके

१२५

सागर से प्रस्थान

चातुर्मास का समय निकट था, अतः मैं सागरमें ही रह गया। आनन्दसे वर्षाकाल बीता। भाद्रमासमें लोगों का समुदाय अच्छा रहता था। किसी प्रकार की चिन्ता मनुष्योंको नहीं थी, क्योंकि चन्दा मांगने का प्रयास नहीं किया गया था। यह कई बार अनुभव कर देखा गया है कि जहां चन्दा मांगा वहां समस्त कलाओं का अनादर हो जाता है। यद्यपि द्रव्य पर पदार्थ है, इसके त्यागने का जो उपदेश देता है वह परमोपकारी है। द्रव्य में जो लोभ है, वह मूर्च्छा है, जो मूर्च्छा है वह परिग्रह है और परिग्रह ही सब पापों की जड़ है, क्योंकि बाह्य परिग्रह ही अन्तरङ्ग मूर्च्छाका जनक है। और अन्तरङ्ग परिग्रहही संसारका कारण है, क्योंकि अन्तरङ्ग मूर्च्छाके बिना बाह्य पदार्थों का ग्रहण नहीं होता। यही कारण है, कि भगवान्ने मिथ्यात्व वेद राग, हास्यादिषट् और चार कषाय इन्हें ही परिग्रह माना है। जब तक इनका सद्भाव है, तब तक ही यह जीव परवस्तु का ग्रहण करता है। इनमें सबसे प्रबल परिग्रह मिथ्यात्व है इसके सद्भावमें [illegible] सब परिग्रह [illegible] रहते हैं [illegible] रहते हैं [illegible]

है, अतः जिन्हें आत्म कल्याण की अभिलाषा है उन्हें
त्याग या उपदेश देने वालों को अपना परम हितैषी मान
चाहिये। नीति का वाक्य भी है, कि 'अमित्र' अभिसंधि मान
अर्थात् मित्र वही है जो पापसे निवृत्त करे। विचारकर देखा जा
तो लोभ ही पापका पिता है। उससे जिसने मुक्ति दिलायी उस
उत्तम हितैषी संसारमें अन्य कौन हो सकता है? परन्तु यहां तो
लोभ को गुरुमान करहम लोग उसका आदर करते हैं। जो लोभ
त्याग या उपदेश देता है, उससे बोलना भी पाप समझते हैं।
तथा उसका अनादर करनेमें भी संकोच नहीं करते। जो हो यह
संसार है, इसमें नाना प्रकारके जीवों का निवास है। कषायोदय
में नाना प्रकार की चेष्टाएं होती हैं। जिन महानुभावोंके उन
कषायों का अभाव हो जाता है, वे संसार समुद्रसे पार हो जाते
हैं। हम तो कषायोंके सद्भावमें यहीं ऊहा पोह करते रहते हैं। और
यही करते-करते एक दिन सभीकी आयुका अवसानहो जाता है।
अनन्तर जिस पर्यायमें जाते हैं उसीके अनुकूल परिणाम हो
जाते हैं। 'मनुष्यमें मनुष्यता और ... ...' की कहावत
परिताप करते हुए अनन्त संसार की यातनाओंके पात्र होकर
परिभ्रमण करते रहते हैं। इसी परिभ्रमण का मूल कारण हमारी
ही अज्ञानता है। हम निमित्त कारण को संसार परिभ्रमण का
कारण मानकर सांप की लकीर पीटते हैं। अतः जिन जीवों को
आत्महित करना इष्ट है, उन्हें आत्मनिहित अज्ञानता को पृथक्
करने का सब प्रथम प्रयास करना चाहिये। उन्हें यही संयोगात
... का उपाय है

... दिन ... मध्यान्ह ... श्री जिनेन्द्र देव
... समाज के ...
... १८ ... दान देना ...

किया। उसके बाद आश्विन वदी चौथ को मेरी जयन्ती उत्सव लोगोंने किया। उसी दिन श्री क्षुल्लक क्षेमसागरजी। श्री क्षुल्लक पूर्णचन्द्रजीके केश लोंच हुए। दोनों ही महाश घास की तरह अपने केश उखाड़कर फेंक दिये। देखकर लोग हृदय गद्‌गद् हो गये। अनन्तर श्री सेठ भगवान दासजी की बालों की अध्यक्षतामें सभा हुई, जिसमें अनेक विद्वानोंके भा हुए। इसी समय सिंघेन फूला बाईने एक हजार रुपया विद्या को और एक हजार रुपया महिलाश्रम को दिये। यह स्वर्ग सिंघई शिव प्रसादजी की विधवा पुत्रवधू है, इसने अपनी प्र सारी सम्पत्ति तथा मकान महिलाश्रम को पहले ही दानकर दि था। धर्म साधन करती हुई जीवन व्यतीत करती है। सिं रेवारामजीने भी महिलाश्रम को पांच हजार रुपया देना स्वीक किया। इसके पहले आप अपनी सम्पत्ति का बहुभाग महिलाश्र को प्रदान कर चुके थे, तथा उसीसे उस संस्था का ज हुआ था।

इस प्रकार सागरमें बड़ी ही शान्तिसे दिन गये। यद्यपि या हमें सब प्रकार की सुविधा मिली तो भी यहांसे जानेकी भावना उत्पन्न हो गई, और उसका कारण यह रहा कि यहांके लोगोंसे घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। कुटुम्बवत् स्नेह बढ़ने लगा, जो त्यागीके लिये बाधक है। भोजनके विषयमें लोगोंने मर्यादा का अतिक्रमण करके भी संतोष नहीं किया। हम भी उनके चक्करमें आते गये। अन्ततो गत्वा यही भावना मनमें आई, कि अब सागरसे प्रस्थान करना चाहिये।

प्रस्थानके विरोधी श्री मुन्नालालजी वैसाखिया सेठ भगवान दासजी तथा सिंघई कुन्दनलालजी आदि, बहुत सज्जन गया है। श्री समाज सबसे अधिक विरोधी था। यहां जिस दिन श्री अम

चन्द्रजीके यहाँ भोजन किया वहांसे चलकर सदगुवाँ आये। यहाँ एक रात्रि रहे, श्री कपूर चन्द्रजीके यहाँ भोजन किया। यहाँसे चलने के बाद दनोह पहुँचे। ग्रामके बाहर कई भद्र महाशय लेनेके लिये आये। सेठ लालचन्द्रजीके घर पर सानन्द ठहरे। आप बहुत ही सज्जन हैं आपकी धर्म पत्नी भी कोमल प्रकृतिकी हैं। आपके यहाँ आपकी धर्मपत्नीकी बहिनका लड़का निर्मल रहता है जो बहुत ही पटु और भद्र है। प्रतिदिन एक घण्टा दर्शन और स्वाध्याय करता है हमारी प्रतिदिन एक घण्टा वैयावृत्य करता रहा। सेठजी बहुत विवेकी हैं। आपने पच्चीस हजार रुपया दान किया और यह कहा कि मैं जहाँ अच्छा कार्य देखूँगा वहाँके लिये दे दूंगा। जिस दिन दान किया उसी दिनसे आठ आना प्रतिशत व्याज देना स्वीकृत किया तथा यह भी प्रतिज्ञा की कि पाँच वर्षके अन्दर इस द्रव्यको घरमें न रक्खूंगा। आपकी धर्मपत्नीने नवीन स्थापित स्वाध्याय मन्दिरके लिये एक हजार रुपया दिया है तथा सेठजीने एक हजार एक रुपया स्याद्वाद विद्यालय बनारसको तथा एक हजार एक रुपया वर्णिंचेयर हिन्दू विश्वविद्यालय बनारसको देना स्वीकृत किया।

एक दिन सेठजी अपनी धर्म पत्नीसे बोले—'हमारा विचार तो वर्णीजीके पास रहनेका है घरको आप संभालो।' धर्म पत्नी ने उत्तर दिया—'घर अपना हो तो संभालें, आप ही ठक तो घर था जब आप इतने निर्मम हो रहे हैं तब मुझे न घरसे स्नेह है, न इस नश्वर द्रव्य तथा हाड मासके पिण्ड इस शरीरसे [illegible] मैं आपसे पहले ही [illegible] प्रस्तुत हूं।' [illegible] [illegible] है [illegible] आपके वह [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible]

चन्द्रजीके यहाँ भोजन किया। वहाँसे चलकर सदगुवाँ आये। वहाँ एक रात्रि रहे, श्री कपूरचन्द्रजीके यहाँ भोजन किया। वहाँसे चलने के बाद दमोह पहुँचे। ग्रामके बाहर कई भद्र महाशय लेनेके लिये आये। सेठ लालचन्द्रजीके घर पर सानन्द ठहरे। आप बहुत ही सज्जन हैं आपकी धर्मपत्नी भी कोमल प्रकृतिकी हैं। आपके यहां आपकी धर्मपत्नीकी बहिनका लड़का निर्मल रहता है जो बहुत ही चतुर और भद्र है। प्रतिदिन एक घण्टा दर्शन और स्वाध्याय करता है हमारी प्रतिदिन एक घण्टा वैयावृत्य करता रहा। सेठजी बहुत विवेकी हैं। आपने पचीस हजार रुपया दान किया और यह कहा कि मैं जहाँ अच्छा कार्य देखूँगा वहांके लिये दे दूंगा। जिस दिन दान किया उसी दिनसे आठ आना प्रतिशत ब्याज देना स्वीकृत किया तथा यह भी प्रतिज्ञा की कि पांच वर्षके अन्दर इस द्रव्यको घरमें न रक्खूंगा। आपकी धर्मपत्नीने नवीन स्थापित स्वाध्याय मन्दिरके लिये एक हजार रुपया दिया है तथा सेठजीने एक हजार एक रुपया स्याद्वाद विद्यालय बनारसको तथा एक हजार एक रुपया वर्णीवियर हिन्दू विश्वविद्यालय बनारसको देना स्वीकृत किया।

एक दिन सेठजी अपनी धर्मपत्नीसे बोले—'हमारा विचार तो वर्णीजीके पास रहनेका है घरको आप संभालो।' धर्मपत्नी ने उत्तर दिया—'घर अपना हो तो संभालें, आप ही वरु तो घर था जब आप इतने निर्मम हो रहे हैं तब मुझे न घरसे स्नेह है, न इस नश्वर द्रव्य तथा हाड मासके पिण्ड इस शरीरसे ममता है। मैं आपसे पहले ही त्यागनेको प्रस्तुत हूं।' सेठजी श्रवण कर गद्गद् हो गये। मैं भी आश्चर्यमें पड़ गया। मनमें आया कि इस कालमें बाह्य निमित्तोंका अभाव है अन्यथा अब भी बहुत मनुष्य गृहवास त्यागनेको सन्नद्ध हैं। यहां और भी

कई मनुष्य चाहते हैं कि यदि समागम मिले तो हम लोग भी उस समागमसे आत्म शान्तिका लाभ लें परन्तु वहो दुर्लभ है।

यहां पर इन्हीं दिनोंमें प० मुन्नालालजी समगौरया सुपरिन्टेन्डेन्ट जैन विद्यालय सागरसे आये। दो दिन रहे। आपके व्याख्यानोंको जनताने रुचि पूर्वक सुना। सागरसे निकलने वाले जैन प्रभातके कई ग्राहक हुए। कितने ही महाशयोंने सागर विद्यालयको एक एक दिनका भोजन दान दिया। सिद्धान्त शास्त्री पं० फूलचन्द्रजी बनारस भी आये थे उन्हें वर्णी ग्रन्थ मालाके लिये ढाई सौ रुपयाके अन्दाज प्राप्त हो गया।

यहां एक नन्हेलालजी त्यागी जबलपुर वाले हैं उनका अच्छा आदर है आप ही प्रतिदिन शास्त्र प्रवचन करते हैं।

मैं यहांसे यह विचार कर सद्गुवां चला गया कि दीपावली रेशन्दी गिरिकी करूँगा। परन्तु वहां पहुँचनेपर विचार बदल गया जिससे फिर दमोह पहुँच गया। इतनेमें ही पं० जगन्मोहन लालजी शास्त्री कटनी प० महेन्द्रकुमारजी न्यायचार्य, पं० पन्नालालजी काव्य तीर्थ तथा पं० फूलचन्द्रजी सिद्धान्त शास्त्री बनारस आ गये जिसमें बहुत ही आनन्दसे वीर निर्वाणोत्सव हुआ। आप लोगोंके परिश्रमसे यहांकी सब संस्थाओंका केन्द्रीकरण हो गया तथा समाजमें परस्पर अति सौमनस्य हो गया सेठ गुलाबचन्द्रजी ने जो कि समाजमें धनमें सर्वश्रेष्ठ हैं इस एकीकरण को बहुत ही उत्तम माना और कहा कि मेरे पास मन्दिरोंका जो हिसाब है समाज चाहे तो उसे अभी लेले परन्तु समाजने आप ही को कोषाध्यक्ष रक्खा। श्री राजाराम बजाज तथा अभानाके रहने वाले श्री स्वरूपचन्द्रजी साहबने भी इस कार्यमें समयोचित खूब परिश्रम किया।

यहांके नवयुवक पार्टीने एक जैन हाई स्कूल खोलनेका दृढ संकल्प किया समाजने उसमें यथा शक्ति योगदान दिया। आशा है आगामी वर्षसे यह कार्य प्रारम्भ हो जावेगा तथा पण्डितजी के मिलने पर स्वाध्याय मन्दिरका कार्य भी शुरू हो जावेगा।

संसारकी दशा प्रत्येक कार्यमें एकत्व भावनाका पाठ पढ़ाती है। जिन पण्डित महाशयोंका संयोग हुआ था वह वियोग रूप हो गया और मैं भी समाजसे पृथक् होकर सद्गुवां आगया।

यहां तक अनुचित वर्ताव करते हैं कि अन्य साधुओंके साथ सामान्य मनुष्योंके समान भी व्यवहार करनेमें संकोच करते हैं। यदि किसीने उनसे कह दिया कि महाराज! सीताराम, तो लोग उसे मिथ्यादृष्टि समझने लगते हैं। मैं कटनीके प्रकरणमें घास वाली बुढ़िया और सत्तूवाले ब्राह्मणका जिक्र कर आया हूं। उस समय मेरी वैसी प्रवृत्ति देख साथवाले त्यागी कहने लगे—'वर्णी जी! आप चरणानुयोगकी आज्ञा भंग करते हैं उपवासके दिन ऐसी क्रिया करना अनुचित है।' मैंने कहा—'आपका कहना सर्वथा उचित है परन्तु मैं प्रकृतिसे लाचार हूं तथा अन्तरङ्गसे आप लोगोंके सामने कहता हूं कि यद्यपि मेरी दशमी प्रतिमा है परन्तु उसके अनुकूल प्रवृत्ति नहीं। उसमें निरन्तर दोष लगते हैं फिर भी स्वेच्छाचारी नहीं हूं। मेरी प्रवृत्ति पराये दुःखको देखकर आर्द्र हो जाती है। यही कारण है कि मैं विरुद्धकार्यका कर्ता हो जाता हूं। मुझे उचित तो यह था कि कोई प्रतिमा न लेता और न्यायवृत्तिसे अपनी आयु पूर्ण करता परन्तु अब जो व्रत अङ्गीकार किया है उसका निरतिचार पालन करनेमें ही प्रतिष्ठा है। इसका यह अर्थ नहीं कि लोकमें प्रतिष्ठा है प्रत्युत आत्माका कल्याण इसीमें है। लोकमें प्रतिष्ठाकी जो कामना है वह तो पतनका मार्ग है। आजतक आत्माका संसारमें जो पतन हो रहा है उसका मूल कारण यही लौकिक प्रतिष्ठा है। जिस प्रकार आत्मा द्रव्य पुद्गलादिकोंसे भिन्न है उसी प्रकार स्वकीय आत्मा परकीय आत्मासे भिन्न है। आत्माका किसी अन्य आत्मासे मेल नहीं। हमने सिर्फ मोहवश नाता जोड़ रक्खा है। माता पिताको अपनी उत्पत्तिका कारण मान रक्खा है। यह जो पर्याय है इसका उन्हें कारण मान रात्रि दिन मोही हो सकल्प विकल्पोंके जालमें फंसे रहते हैं। माता पिता उपलक्षण है। पुत्र पुत्री कलत्र भ्रात्रादिके सम्बन्धसे आकुलित होकर आत्मीय आत्मातत्त्वको

प्रतीतिसे वञ्चित रहते हैं और जब आत्म तत्वकी प्रतीति नहीं तब सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रकी कथा दूर रहे।'

यहांसे चलकर सुरईके गांव आया, यहां पर आठ घर जैनियों के हैं। ग्राम बहुत सुन्दर है, यहां पाठशाला स्थापित हो गई। यहांसे चलकर श्री सिद्धक्षेत्र नैनागिर आ गये। यहां आठ दिन रहे यहीं पर राजकोटसे श्री युत सेठ मोहन भाई धिया आये थे। आप बहुत ही सज्जन हैं, आपको जैनधर्ममें गाढ़ श्रद्धा है, आपकी धार्मिक रुचि बहुत ही प्रशंसनीय है, बहुत ही उदासीन हैं। आपके घरमें एक चैत्यालय है, जिसका प्रबन्ध आप ही करते हैं। आपके प्रति दिन पूजा का नियम है। आपका व्यवहार अति निर्मल है। आपके साथ ताराचन्द्रजी ब्रह्मचारी का घनिष्ठ सम्बन्ध है। कुछ दिन रह कर आप तो गिरिराज की यात्राके लिये चले गये, पर ब्र० ताराचन्द्रजी हमारे साथ रहे।

क्षेत्र पर एक पाठशाला है, जिसमें पं० धर्मदासजी न्यायतीर्थ अध्यापक हैं, बहुत ही सुयोग्य हैं। परन्तु पाठशालामें स्वाध्यायकी न्यूनता है। इस ओर अभी इस प्रान्त की समाज का लक्ष्य नहीं। यहांसे सात मील चलकर दमोरी आये। श्रीमान् क्षुल्लक क्षेमसागरजी यहींके हैं। आपका कुटुम्ब सम्पन्न है, एक पाठशाला भी चलती है, कई महाशय अच्छे सम्पन्न हैं। श्री हरबारी लाल जी वड़े उत्साही और प्रभाव शाली व्यक्ति हैं। नैनागिर क्षेत्रके यही मन्त्री हैं, राज्य मान्य भी हैं, और उदार भी हैं। परन्तु विद्या की उन्नतिमें तटस्थ हैं। यहांसे तीन मील चलकर सुनवाहा आये। यहां जैनियोंके बीस घर हैं। एक पाठशाला भी तीस रुपया मासिकके व्ययसे चल रही है। यहांसे चलकर बकस्वाहा पहुंचे। यह [illegible] रियासत का [illegible] है। यहां [illegible] पर जैनियोंके द्वारा [illegible] का मन्दिर [illegible] एक [illegible] का और एक [illegible]

पूर्वों का। यहांके जैनी प्रायः सम्पन्न हैं। पाठशालाके लिये, पांच हजार रुपया का चन्दा हो गया। चन्दा होना कठिन नहीं परन्तु काम करना कठिन है। देखे, यहां कैसा काम होता है। यहां तीन दिन रहे। एक बात विलक्षण हुई, वह यह कि एक जैनी का बालक गाय ढीलनेके लिये गांवके बाहर जाता था, गायके साथ उसका बछड़ा भी था। बालकने बछड़े को एक मामूली लाठी मार दी जिससे वह मर गया। गांवके लोगोंने उसे जातिसे बाह्य कर दिया, परन्तु बहुत कहने सुनने पर उसे जातिमें सम्मिलित कर लिया।

यहांसे चलकर फिर बनौरी आये, और एक दिन वहां रहकर सटौरा आ गये। यहां पर श्री भैयालालजी कक्कू बहुत ही धर्मात्मा जीव हैं। आपने दो बार पञ्चकल्याणक किये हैं, और हजारों रुपये विद्यादानमें लगाए हैं। तीर्थयात्रामें आप की अच्छी रुचि है। यहांसे चलकर दलपतपुर आ गए। आनन्दसे दिन बीता। यहां पर स्वर्गीय जवाहर सिंघईके भतीजे और नाती बहुत ही योग्य हैं। यहां एक पाठशाला भी चलती है। दलपतपुरसे दुलचीपुर और वहांसे बरायठा आये। यहां चालीस घर गोलापूर्व समाजके हैं, कई घर अत्यन्त सम्पन्न हैं, सेठ दौलत राम सिंघई बहुत योग्य हैं। पाठशालामें पं० पद्मकुमारजी विशारद अध्यापक हैं।

यहां जो पुलिस दरोगा हैं, वे जातिके ब्राह्मण हैं, बहुत ही सज्जन हैं। आपने बहुत ही आग्रह किया कि हमारे घर भोजन करिए। परन्तु अभी हम लोगोंमें इतनी दुर्बलता है, कि किसी को जल बनानेमें भय करते हैं। आपने प्रसन्न होकर कहा कि हम [illegible] मांसके देते हैं आपकी जहां इच्छा हो वहां [illegible]

करें। जब मैंने वरायठासे प्रस्थान किया, तब चार मील तक साथ आये।

रात्रि को हँसेरा ग्राममें वस रहे, यहां पर हमारी जन्म भूमि के रहने वाले हमारे लगोटिया मित्र सिंघई हरिसिंहजी आ गए। बाल्य कालकी बहुत सी चर्चा हुई। प्रातः काल मड़ावरा पहुंच गए। लोगोंने आतिथ्य सत्कारमें बहुत प्रयास किया। पश्चात् श्री नायक लक्ष्मण प्रसादजीके अतिथि गृहमें ठहर गया। साथमें श्रीचिदानन्द जी श्रीसुमेरचन्द्रजी भगत,तथा श्री क्षुल्लक क्षेम सागरजी महाराज थे। यहीं,पर सागरसे समगौरयाजी आ गए। उनकी जन्मभूमि यहां पर है। हम यहां तीन दिन रहे। यहीं पर एक दिन तीन बजे श्रीमान् पं० वशीधरजी इन्दौर आ गये। आपका रात्रिको प्रवचन हुआ, जिसे श्रवण कर श्रोता लोग मुग्ध हो गए। मैं तो जब जब वे मिलते हैं तब तब उन्हींके द्वारा शास्त्र-प्रवचन सुनता हूँ। विशेष क्या लिखूं ? आप जैसा मार्मिक व्याख्याता दुर्लभ ही है। आपका विचार महरौनी गांवके बाहर उद्यानमें शान्तिभवन बनाने का है, परन्तु महरौनी वाले अभी इतने उदार नहीं। वे चाहते हैं, कि प्रान्तसे बन जावे परन्तु जब तक स्वय बीस हजार रुपया का स्थायी प्रबन्ध न करेंगे, तब तक अन्यत्रसे द्रव्य मिलना असम्भव है। यही पण्डितजी की जन्मभूमि है यदि आपकी दृष्टि इस ओर हो जावे तो अनायास कार्य हो सकता है, परन्तु पञ्चम काल है, ऐसा होना कुछ कठिन सा प्रतीत होता है। मड़ावरामें पण्डितजी तथा समगौरयाजीके अकथ परिश्रमसे पाठशाला का जो चन्दा बन्द था, वह लग गया, और यहांके मनुष्योंमें परस्पर जो मनोमालिन्य था, वह भी दूर हो गया। यहां तीन दिन रह कर श्रीयुत स्वर्गीय सेठ चन्द्रभानुजीके सुपुत्रके आग्रहसे साढ़ूमल आ गया। यहां स्व० सेठ चन्द्रभानुजी का महान् प्रताप था। सेठ

पर कोई जबरदस्ती नहीं करते। परन्तु जब इस गांवमें पहुँचा तो परवाराजीको आत्मा पर बहुत प्रभाव पड़ा। इस मिनटकी पचीमें हो श्री चन्द्रभानजी परवा गद्गद् होकर बोले महाराज मैं बहुत दिनसे उलझनमें पड़ा था कि अपनी सम्प का कैसा उपयोग करूं। मेरी सिर्फ दो लड़कियां हैं पुत्र नहीं है। परन्तु आज वह उलझन सुलझी हुई दिखती है। निश्चय करता हूं कि अपनी सम्पत्तिको चार भागोंमें बाँट दूंगा दो हिस्से दोनों पुत्रियों और रिश्तेदारोंको, एक हिस्सा ह निजके लिए और एक हिस्सा धर्म कार्यके लिये रखूँगा। सबने परवाजीके निर्णयकी सराहना की। मध्याह्नके दो बजे साढ़े चार बजे तक एक आम सभा हुई जिसमें भाषणोंके अ न्तर परवाजीका निर्णय सबको सुनाया गया। लोगोंसे प चला कि उनके पास दो तीन लाखकी सम्पत्ति है। रात्रिको ए नवीन पाठशालाका उद्घाटन हुआ।

कुम्हेड़ीके बाद गुडा और नारायणपुर होते हुए श्री अतिश क्षेत्र अहार पहुंचा। यहां अगहन सुदी बारससे चौदस तक क्षे का वार्षिक मेला था। टीकमगढ़से हिन्दी साहित्यके महान विद्वान् श्री बनारसीदासजी चतुर्वेदी तथा बाबू मिथिला प्रसाद जी बी० ए० एल० एल० बी० शिक्षामंत्री श्री कृष्णानन्दजी गु तथा बाबू यशपालजी जैन आदि महानुभाव भी पधारे थे। अहार क्षेत्रका प्राकृतिक सौन्दर्य अवर्णनीय है। वास्तवमें पहाड़ों के अनुपम सौन्दर्य, बाग बगीचों, हरे भरे धानके खेतों एवं मीलों लम्बे विशाल तालाबसे निकलकर प्रवाहित होने वाले जल प्रवाहोंसे अहार एक दर्शनीय स्थान बन गया है। वह पर संसार को चकित कर देनेवाली पापट जैसे कुशल कारीगरकी कर कला से निर्मित श्री शान्तिनाथ भगवान्की सातिशय प्रतिमा ने तो

चन्द्रजी बहुत ही योग्य और उदार महाशय हो गये हैं। इनका राज्यमें अच्छा आदर था। नाथूरामजीने श्रहार विद्यालय को एक हजार रुपया प्रदान किया था। ये अभी थोड़े दिन हुए सुरार आये थे। तब इन्होंने मुझसे कहा था कि यदि आप पपौरा पधारें तो मैं पपौरा विद्यालय को पचास हजार रुपया दिलवाऊँगा। इसमें क्या रहस्य है मैं नहीं समझा परन्तु ये बहुत उदार हैं। सम्भव है स्वयं विशेष दान करें। इन्होंने यहां द्वितीय प्रतिमाके व्रत लिये। इनके पचासों एकड़ भूमि है। उससे जो आय होती है परोपकारमें जाती है। अभी टीकमगढ़में अन्न का बहुत कष्ट था, तब इन्होंने सेकड़ों मन चावल भेजकर प्रजामें शान्ति स्थापित करानेमें सहायता की थी। इनके उद्योगसे गांवमें एक पाठशाला भी स्थापित हो गई है। मेरा भोजन इन्हींके पर हुआ था। यहांसे चलकर जतारा आया। यह वह स्थान है, जहां पर मैंने श्री स्वर्गीय मोतीलालजी वर्णीके साथ रह कर जैनधर्म का परिचय प्राप्त किया था। यहां पर एक मन्दिरमें प्राचीन काल का एक भोंहरा है। इसमें बहुत ही मनोहर जिन प्रतिमाएँ हैं, जो अष्ट प्रतिहार्य सहित हैं। मुनिप्रतिमा भी यहां पर है। श्री प० मोतीलालजी वर्णी पाठशालाके लिए एक मकान दे गए हैं। और उसके सदा स्थिर रहनेके लिये द्रव्य भी दे गए हैं। यद्यपि उनके भतीजे सम्पन्न हैं, वे स्वयं उसे चला सकते हैं, परन्तु गांवके पञ्चोंमें परस्पर सौमनस न होनेसे पाठशाला का द्वार बन्द है। यहां दो दिन रहनेके बाद श्री स्वर्गीया धर्ममाता चिरोंजा बाईजीके गांव आया। यहां की जनताने बड़े ही स्नेह पूर्वक तीन दिन रक्खा। यहांसे चलकर सतगुवां आया। एक दिन रहा फिर बमोरी होता हुआ पृथ्वीपुर आया। यह सम्पन्न वस्ती है परन्तु परस्पर सौमनसके अभावमें धर्मका विशेष कार्य न हुआ। यहांसे चलकर बरुआ-

सागर आ गया। बीचमें चिदानन्द ब्रह्मचारी का समागम हुआ गया था। वे यहां आ मिले। यहां पर बाबू रामस्वरूपजीके यहां सानन्दसे रहने लगा। इस प्रकार बुन्देलखण्डके इस पैदल पर्यटनसे आत्मामें अपूर्व शान्ति आई।

१२=

बरुवासागरमें विविध समारोह

इस प्रकार टीकमगढ़से भ्रमण करता हुआ बरुवासागर आ पहुँचा और स्टेशनसे कुछ ही दूर बाबू रामस्वरूपजी ठेकेदारके नवीन भवनमें ठहर गया। बाबू साहबसे मेरा बहुत कालसे परिचय है। परिचयका कारण इनकी निर्मल और भद्र आत्मा है। यह वही बरुवासागर है जहां पर मेरी आयुका बहुत भाग बीता है। यहांकी आबहवा बहुत ही सुन्दर है। यहां पर श्री स्वर्गीय मूलचन्द्रजी द्वारा एक पार्श्वनाथ विद्यालय स्थापित हुए १५ वर्ष हो चुके हैं। यहां की प्राकृतिक सुषमा निराली है। सुरम्य अटवी के बीचों बीच एक छोटी सी पहाड़ी है। उसके पूर्व भागमें बहुत सुन्दर बाग है, उत्तरमें महान सुरम्य सरोवर है, पश्चिममें सुन्दर जिनालय और दक्षिणमें रमणीय अटवी है। पहाड़ी पर विद्यालय और छात्रावासके सुन्दर भवन बने हुए हैं। स्थान इतना सुन्दर है कि प्रत्येक देखनेवाला प्रसन्न होकर जाता है।

पार्श्वनाथ विद्यालयके सभापति श्री राजमल्लजी साहब हैं जो कि बहुत ही योग्य व्यक्ति हैं। आपके पूर्वज लश्करके थे पर आप वर्तमानमें झांसी रहते हैं। बड़े कुशल व्यापारी हैं। आपके छोटे भ्राता चांदमल्लजी साहब हैं जो बहुत ही योग्य हैं और जैनधर्मका अच्छा बोध भी रखते हैं। आपका एक बालक ⋯लाल है। उसकी भी धर्ममें अच्छी रुचि है। इस पाठशालाके

जब [illegible]
दिया तब [illegible]
समझा। [illegible]
के भाई कामताप्रसाद रहते थे। यहीं पर श्री रामभरोसेलालजी सिंघई रहते हैं जो बहुत ही योग्य धार्मिक व्यक्ति हैं। आप व्यापारमें अति कुशल हैं साथ ही स्वाध्यायके प्रेमी भी हैं स्वाध्यायप्रेमी ही नहीं गोलालारे जातिके कुशल पञ्च भी हैं आप प्रान्तीय गोलालारे सभाके सभापति भी रह चुके हैं। आपको जाति उत्थानकी निरन्तर चिन्ता रहती है। आपका भोजन पान शुद्ध है। आपने बरुवासागर विद्यालयको १००१) दिया। आपके दो सुपुत्र हैं, दोनों ही सदाचारी हैं। यहीं श्री स्वर्गीय बाईजीके दूसरे भाई स्वर्गीय बड़कूलालजी सिंघई रहते थे। आप बड़े उदार थे तथा बरुवासागर विद्यालयको निरन्तर सहायता करते थे।

मगरपुरसे दुमदुमा गया। यह वही दुमदुमा है जहाँके पण्डित दयाचन्द्र जी जैनसंघ मथुरा में उपदेशक हैं। आप योग्य व्यक्ति हैं। आपके घर पर शुद्ध भोजन की व्यवस्था है। यहाँके श्रीमान् मनोहरलालजी वर्णी हैं जो आजकल उत्तर प्रान्तमें रहते हैं और निष्णात विद्वान् हैं। आपके द्वारा सहारनपुरमें एक गुरुकुल की स्थापना हो गई है। यदि आप उसमें अपना पूर्ण उपयोग लगा देवें तो यह संस्था स्थायी हो सकती है। आप प्रत्येक कार्यमें उदासीन रहते हैं पर यह निश्चित है कि उपयोग की स्थिरताके बिना किसी भी कार्य का होना असम्भव है। चाहे वह लौकिक हो और चाहे पारलौकिक अथवा दोनों मे से हो। अस्तु जो हो, इनको वे जान।

इधर उधर भ्रमण कर पुन बरुवासागर आ गया। बरुवा-

सागर विद्यालयके विषयमें एक बात विशेष लिखनेकी रह गई वह यह कि स्वर्गीय मूलचन्द्र जी के सुपुत्र स्वर्गीय श्रेयान्सकुमार जो कि बहुत ही होनहार युवक थे जब सागर गये तब मुझसे बोले कि आप बरुवासागर आवें और जिस दिन आप बरुवासागर से परे दुनदुना आजावेंगे उसी दिन मैं दश सहस्र रुपया बरुवासागर विद्यालय को दान कर दूँगा परन्तु आप उसी वर्ष परलोक सिधार गये। आपकी धर्मपत्नी हैं जो बड़ी ही सज्जन हैं। होनहार बालक भी है।

यहांपर पाठशालाके जो मुख्याध्यापक पं० मनोहरलाल जी हैं वे तो उसके मानों प्राण ही हैं। आप निरन्तर उसकी चिन्ता रखते हैं। मामूली वेतन लेकर भी आपको संतोष है। आपने अथक परिश्रम कर झांसीवाले नन्हूमलजी जैन अग्रवाल लोइयासे पाठशालाके लिये पचास सहस्रका मकान दिला कर उसे अमर बना दिया। लोइया जी ने इसके सिवाय छात्रावास का एक कमरा भी बनवा दिया है और मैंने पाठशालाके लिये जो एक पट्टी दी थी वह भी इन्होंने ग्यारह सौ रुपयेमें ली थी। आपका स्वभाव अति सरल और मधुर है। आप परम दयालु हैं संसारसे उदास रहते हैं और निरन्तर धर्म कार्यमें अपना समय लगाते हैं।

बाबू रामस्वरूपजीके विषयमें क्या लिखूं ? वे तो विद्यालयके जीवन ही हैं। वर्तमान में उसका जो रूप है वह आपके सत्प्रयत्न और स्वार्थत्याग का ही फल है। आप निरन्तर स्वाध्याय करते हैं तत्त्व को समझने में [illegible] शास्त्रके बाद आध्यात्मिक भजन बड़ी [illegible] रहते हैं [illegible] बहुत [illegible] निरन्तर [illegible] करते हैं [illegible] हैं

मैंने श्री तिथि फाल्गुन सुदी

सप्तमी वी. सं. २४७४ को

प्रातःकाल श्री शान्तिनाथ

भगवानकी साक्षीमें

आत्मकल्याणके लिये

क्षुल्लकके व्रत लिये।

मेरा दृढ़ निश्चय

है कि प्राणोंका

कल्याण त्याग

में ही निहित

है।

[ह० ५८१]

की धर्मपत्नी-ललिताबाई बरुवासागरने ५०१) एकमुश्त दिये। इसके सिवा फुटकर चन्दा भी हुआ। सब मिलाकर २५०००) के लगभग विद्यालयका ध्रौव्यफण्ड होगया। इस प्रकार विद्यालय स्थायी हो गया। मुझे भी एक शिक्षायतनको स्थिर देख अपार हर्ष हुआ। वास्तवमें ज्ञान ही जीवका कल्याण करनेवाला है परन्तु यह पञ्चमकाल का ही प्रभाव है कि लोग उससे उदासीन होते जा रहे हैं।

इस प्रान्तमें इतने द्रव्यसे कुछ नहीं होता यह प्रान्त प्रायः अशिक्षित है, यहाँ तो पाँच लाखका फण्ड हो तब कुछ हो सकता है पर यह स्वप्न है। अस्तु, जो भगवान् वीरने देखा होगा सो होगा।

यहाँसे प्रस्थान कर झाँसीकी ओर चल पड़े।

चन्द्रप्रभ स्वामीका महान् मन्दिर बना हुआ है। इसका चौक बड़ा ही विस्तृत है। उसमें पांच हजार मनुष्य सुख पूर्वक बैठ सकते हैं। मन्दिरके बाहर बड़ा भारी चबूतरा है और इसके बीचमें उत्तुंग मानस्तम्भ बना हुआ है। उसमें मार्बलका फर्श लगानेके लिये एक प्रसिद्ध सेठने पचास हजार रुपया दिये हैं। यहां पर्वतपर बहुत ही स्वच्छता है। इसका श्रेय श्री गप्पूलालजी लश्करवालोंको है। श्रीमान् सेठ बैजनाथजी सरावगी कलकत्ता (रांची) वालोंने क्षेत्रके जीर्णोद्धारमें बहुत सी सहायता स्वयं की है और अन्य धर्मात्मा बन्धुओंसे कराई है। आप विलक्षण प्रतिभाशाली व्यक्ति हैं। स्वयं वृद्ध हैं परन्तु युवकोंसे अधिक परिश्रम करते हैं। किसी प्रकार जैनधर्मकी उन्नति हो इसकी निरन्तर चिन्ता बनी रहती है। प्रति दिन जिनेन्द्रदेवकी अर्चा करते हैं तथा दूसरोंको भी जिनेन्द्र भगवान्की अर्चा करनेकी प्रेरणा करते हैं। जिस प्रान्तमें जाते हैं वहां जो भी संस्था होती है उसे पुष्ट करनेके अर्थ स्वयं दान देते हैं तथा अन्य बन्धुओंसे प्रेरणा कर संस्थाको स्थायी बनानेका प्रयत्न करते हैं। पर्वत पर आपके द्वारा बहुत कुछ सुधार हुआ है। इस समय सोनागिरिमें भट्टारक श्री हरीन्द्रभूषणजीके शिष्य भट्टारक हैं। यहां पर कई धर्मशालाएं हैं। जिनमें एक साथ पांच हजार यात्री ठहर सकते हैं।

यहां पर एक पाठशाला भी है परन्तु उस ओर समाजका विशेष लक्ष्य नहीं। पाठशालासे क्षेत्रकी शोभा है। क्षेत्र कमेटीको पाठशालाकी उन्नतिमें पूर्ण सहयोग देना चाहिये। समाज तथा देशका उत्थान शिक्षासे ही हो सकता है। अत्र पर आनेवाले बन्धुओंका कर्तव्य है कि वे पाठशालाकी ओर विशेष ध्यान दें। शिक्षासे मानवमें पूर्ण मानवताका विकाश होता है। समाज

इससे जैनधर्मके प्रचारका विशेष लाभ दिखलाया जिससे मैंने देहली चलनेकी स्वीकृति दे दी। मार्गमें संघकी सब व्यवस्था करनेके लिये लाला राजकृष्णजीने पं० चन्द्रमौलिजीको निश्चित किया। पं० चन्द्रमौलिजी बहुत ही योग्यता और तत्परताके साथ सब प्रकारकी व्यवस्था करते हैं। मार्गमें सभा आदिका आयोजन भी करते हैं। ये होनहार विद्वान् हैं। समाज ऐसे नवयुवक विद्वानोंको यदि कार्य करनेका अवसर प्रदान करे तो विशेष लाभ हो सकता है।

लश्करकी ओर

वैशाख वदि ४ सं० २००६ को प्रातःकाल सोनागिरि चलकर चांदपुर आ गये। यह ग्राम अच्छा है, कुछ तीन घर यहां पर हैं। उनमें सौ घर यादववंशी क्षत्रिय, पच्ची घर गहोई वैश्य, पचास घर ब्राह्मण और शेष घर इतर जाति वालोंके हैं। यहां पर एक स्कूल है उसमें ठहर गये।

स्कूलका मास्टर बहुत उत्तम प्रकृतिका था। उसने गर्मीके प्रकोपके कारण अपने ठहरनेके मकानमें ठहरा दिया और आप स्वयं गर्मीमें ऊपर ही ठहर गया। बहुत ही शिष्टताका व्यवहार किया तथा एक बहुत ही विलक्षण बात यह हुई कि मास्टर साहबने समाधितन्त्र सुनकर बहुत ही प्रसन्नता प्रकट की। उसकी श्रद्धा जैन धर्ममें होगई और उसने उसी दिनसे समाधितन्त्रका अभ्यास प्रारम्भ कर दिया तथा उसी दिनसे दिवस भोजन एवं पानी छान कर पीनेका नियम ले लिया। इसके सिवा उसने सबसे उत्तम एक बात यह स्वीकृत की कि गर्भमें बालक आनेके बाद जब वह बालक पांच या छः मासका न हो जावे तब तक ब्रह्मचर्यसे रहना। साथमें यह निश्चय भी किया कि मेरी गृहस्थी जिस दिन योग्य हो जावेगी उस दिनसे धर्मसाधन करूंगा। बहुत ही निर्मल प्रकृतिका आदमी है। प्रातः काल जब मैं यहांसे चलने लगा तब एक मील सड़क तक साथ आया बहुत आग्रह करनेके बाद वापिस गया

यहांसे चार मील चलकर बबरा आ गये। श्री माणिकचन्द्र हजारीलाल जी की दुकान पर ठहर गये। हजारीलाल जी चार भाई हैं। परस्परमें इनके सौमनस्य है। इनके पिता भी जीवित हैं। इनके पिताके दो धर्मपत्नी हैं दोनों ही बहुत सज्जन हैं। अथिति के आने पर उसकी पूर्ण वैयावृत्य करने में तत्पर रहते हैं। यहां इनकी दुकान अच्छी चलती है। यहां पर मन्दिर नहीं है अतः उसकी स्थापनाके लिये इनके भाई फूलचन्द्र जी पूर्ण प्रयत्न कर रहे हैं।

वैशाख वदि ५ को यहां सभा हुई जिसमें आपने श्री मन्दिर जी के लिये एक हजार एक रुपया दिये समाजने भी यथा योग्य दान दिया। एक महाशयने तो यहां तक उत्साह दिखाया कि केवल मन्दिर ही नहीं पाठशाला तथा धर्मशाला भी बनना चाहिये। यह सब हुआ परन्तु एक भाईके पास मुट्ठी का रुपया था वह कहते थे कि भाई ऐसा न हो कि यह कार्य जिस प्रकार अनेक बार चिट्ठा होकर भी नहीं हुआ उसी प्रकार फिर भी न हो। इसी चर्चामें ही सभा समाप्त हो गई। वैशाख वदि ६ को भी सभा हुई परन्तु उसमें भी विशेष तत्त्व न निकला। अनन्तर वैशाख वदि ७ को पुन सभा हुई जिसमें श्री चिदानन्दजी ब्रह्मचारीने प्रभावक भाषण दिया। उसका बहुत ही अधिक प्रभाव पड़ा और चन्दा हो गया बाबाजीने दोपहरको जाकर सब रुपये वसूल कर दिये।

अनन्तर यह विचार आया कि छोटेलालजी सेठ जैसवालका मकान पैंतालीस सौ रुपयामें ले लिया जावे। यह विचार सबने स्वीकृत किया तथा उसीकी बगलमें लाला रामनाथ रामजीने अपनी जमीन दे दी जो कि सत्तर फुट लम्बी और पचपन फुट चौड़ी थी। पश्चात् फिर भी परस्परमें मनोमालिन्य हो गया।

बाहर एक दहलानमें बहुत सुन्दर चित्राम है। दो द्वारपाल ऐसे सुन्दर बने हैं कि उनके गहनोंमें सच्चे मोती जड़े हुए हैं। इसके बाद दहलानमें एक कोठी है उसमें प्रचीन पत्थरके अतिमनोहर बिम्ब विद्यमान हैं। लगभग १२ बिम्ब होंगे। इसके बाद एक दहलान है जहां सुवर्णका चित्राम है। इस चित्राममें ५२ सेर सोना लगा था ऐसा प्रचीन मनुष्यों का कहना है। ऐसा सुन्दर दृश्य है कि हमारे देखनेमें अन्यत्र नहीं आया। चौकमें संगमर्मर जड़ा हुआ है वह इतना विशाल है कि दो हजार आदमी उसमें बैठ सकते हैं। दहलानके पीछे एक कूप और स्नान को स्थान है। यहां रात्रिको दीपक नहीं जलाते और न बिजली लगावे हैं। धोती दुपट्टे छने पानीसे धुलवाते हैं। इस मन्दिरके प्रबन्ध कर्ता श्री कन्हैयालाल जी हैं, आप बहुत ही योग्य हैं विद्वान् भी हैं। भोजनादि की प्रक्रिया आपके यहां योग्य है। आपके सुपुत्र माणिकचन्द्र वकील हैं। आप सोनागिरि सिद्धक्षेत्रके मन्त्री हैं तथा इनके भाई श्री गप्पूलाल जी हैं जो बहुत हो वाक्पटु हैं। आपके दो सुपुत्र हैं। दोनों ही योग्य हैं परन्तु जैसी धार्मिक रुचि और जैसा ज्ञान आपका है वैसा आपके औरस पुत्रों का नहीं। इसका मूल कारण आप ही हैं क्योंकि आपने उस प्रकार की शिक्षासे बालकों को दूर रक्खा। आपके पास इतनी सचला सम्पत्ति है कि एक पाठशाला का क्या दो पाठशालाओं का व्यय दे सकते हैं परन्तु उस ओर लक्ष्य नहीं। यहां पर और भी बहुत मनुष्य ऐसे हैं जो पाठशाला चला सकते हैं परन्तु पढ़ना पढ़ाना एक आपत्ति मानते हैं। इस मन्दिरके थोड़ी दूरपर एक दूसरा मन्दिर तेरापन्थ का है जिसके सरक्षक सेठ मिश्रीलाल जी हैं जो बहुत ही योग्य हैं। मन्दिर बहुत ही सुन्दर बना हुआ है। चारों ओर वायुका सचार है। गन्धकुटीमें बहुत ही सुन्दर बिम्ब

है। स्फटिक मणिके बिम्ब बहुत ही मनोहर हैं। श्रीपार्श्वनाथ भगवान् का बिम्ब बहुत ही सातिशय और चित्ताकर्षक है। उनके दर्शन कर संसार की माया विडम्बना दूर भगने लगती है।

यहांसे चलकर एक बड़ा भारी मन्दिर श्रीसच्चिदानन्द आनन्दकन्द पम्पापुरमें है। मन्दिर बहुत भव्य है। जैसा सरीखाका मन्दिर है वैसा ही यह मन्दिर है। इसका चौक और इसकी दहलानें बहुत सुन्दर हैं। भीतरमें सुवर्णका काम बहुत ही चित्ताकर्षक है। इसके प्रबन्धकर्ता श्री सेठ गोपीलालजी साहब हैं। आप सुयोग्य मानव हैं। आपका ज्ञान अच्छा है तथा इसी मन्दिरमें सेठ बुधमलजी साहब भी हैं जो योग्य व्यक्ति हैं। आपके सुपुत्र भी योग्य हैं। परन्तु उनमें आप जैसा धार्मिक रुचि नहीं। आप व्यापारमें कुशल हैं परन्तु स्वाध्यायमें तटस्थ हैं। आपकी मातेश्वरी धार्मिक हैं। कोई भी त्यागी आवे उसकी वैयावृत्य करने में आपको निरन्तर प्रवृत्ति रहती है।

कुछ दूरी पर नसियामें शान्तिनाथ स्वामीकी खड्गासन मनोहर प्रतिमा है जो एक कृत्रिम पर्वतके आश्रयसे विराजमान की गई है। प्रतिमा प्राचीन होने पर भी अपनी सुन्दरता और स्वच्छतासे नवीन सी मालूम होती है। चेहरेसे शान्ति टपकती है। यह प्रतिमा पासके किसी वन खण्डसे यहां लाई गई थी। उक्त मन्दिरोंके सिवा यहां और भी अनेक मन्दिर हैं। गर्मीके प्रकोपके कारण मैं उनके दर्शनोंसे वञ्चित रहा।

यह सब होकर भी यहां पर कोई ऐसा विद्यायतन नहीं कि जिसमें बालक धार्मिक शिक्षा पा सकें। चम्पाबागकी धर्मशाला में ठहरने हुए मुझे दस दिनके लगभग हो गये। जिस दिन कि मैं [illegible] अभिनन्दन करनेके लिये भाइयों के रास्ते उपस्थित हो

रवाना हुआ था और आकर इसी चम्पाबागमें ठहरा था। जब तक मैं नगरके बाहर शौच क्रियाके लिये गया था तब तक किसी ने ताला खोलकर मेरा सब सामान चुरा लिया था। मेरे पास सिर्फ एक लोटा एक छतरी और छह आना पैसे बचे थे और मैं निराश होकर पैदल ही घर वापिस लौट गया था।

यहांसे चलकर वैशाख सुदि ५ को गोपाचलके दर्शन करनेके लिये गया। गोपाचल क्या है दिगम्बर जैन संस्कृतिका द्योतक सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। यहां पर्वतकी भित्तियोंमें विशाल-काय जिनबिम्ब कुशल कारीगिरोंके द्वारा महाराज डूंगरसिंह के समयमें निर्मित किये गये थे। लाखों रुपया उस कार्यमें खर्च हुआ होगा। पर मुगल साम्राज्य कालमें वे सब प्रतिमाएं टांकीसे खण्डित कर दी गई हैं। कितनी ही पद्मासन मूर्तियां तो इतनी विशाल हैं कि जितनी उपलब्ध पृथिवीमें कहीं नहीं होंगी। खण्डित प्रतिमाओंके अवलोकनसे मनमें विचार आया कि आज कलके मनुष्य नवीन मन्दिरोंके निर्माणमें लाखों रुपया लगा देते हैं परन्तु कोई ऐसा उदार हृदयवाला नहीं निकलता जो कि इन प्रतिमाओंके उद्धारमें भी कुछ लगाता। यदि कोई यहांका उद्धार करे तो भारतवर्षमें यह स्थान अद्वितीय क्षेत्र हो जावे परन्तु यह होना कठिन है। पञ्चम काल है अतः ऐसी सुमतिका होना कठिन है। लश्करके चम्पाबागमें लाखों रुपयोंकी लागतके दुष्कर मन्दिर हैं परन्तु किलेकी प्रतिमाओंके उद्धारके लिये किसी ने प्रयत्न नहीं किया और न इसकी आशा है। हां, संभव है तीर्थ-क्षेत्र कमेटीकी दृष्टि इस ओर जावे परन्तु वह भी असंभव है क्योंकि उसके पास नौ रुपया की आय और ग्यारह रुपयाका व्यय है। यदि किसी भाग्यवान्‌के चित्तमें आ जावे तो अनायास इस क्षेत्रका उद्धार हो सकता है।

यह दृढ़ श्रद्धा थी कि यह सब प्रपञ्च मिथ्या है, मायासे ही सब दिखता है। वस्तुतः कुछ है नहीं। पर्याय दृष्टिसे सत्य है यह उनको मान्य नहीं। व्यवहार सत्य मानते हैं। व्यवहार सत्य व्यवहार कालमें तो है ही परन्तु फिर भी मिथ्या कहना कुछ संगत नहीं मालूम पड़ता। अस्तु, उनके आनेसे तात्त्विक चर्चा हो जाती थी।

भादोंके बाद आश्विन मास भी अच्छा बीता। कार्तिकमें दीपावलीका उत्सव सानन्द हुआ। यहां श्री दीनानाथजी जैन अग्रवालने जो एक उत्साही पुरुष हैं अष्टाह्निका पर्वके समय श्री सिद्धचक्र विधान करवाया। जिसमें पुष्कल द्रव्य व्यय किया, दश हजार मनुष्योंको भोजन कराया, पांच हजार रुपया विद्या-दानमें दिये, ग्यारह सौ रुपया श्री क्षुल्लक पूर्णसागरजी के आदेशानुसार ग्वालियरकी पाठशालाके लिये और एक सौ एक रुपया श्री गोपाचलके जीर्णोद्धारमे भी प्रदान किये। उत्सवके समय बाहरसे अनेक गण्यमान्य विद्वानोंको भी आमंत्रित किया था। उन सबकी संस्थाओंको भी यथायोग्य दान दिया था। बनारससे पं० फूलचन्द्रजी, पं० महेन्द्रकुमारजी, पं० पन्नालालजी काव्यतीर्थ तथा सागरसे प० पन्नालालजी साहित्याचार्य, पं० मुन्नालालजी समगौरया भी पधारे थे। पं० चन्द्रमौलिजी यहां थे ही। प्राचीन पण्डित झम्मनलालजी तर्कतीर्थ भी जो कि आज कलकत्ता रहते हैं आये थे। प्रतिष्ठाचार्य पं० सूरजपालजी थे। आठ दिन तक दीनानाथ बागमें स्वाध्याय प्रवचन आदि बड़े समारोहसे होते रहे। पं० चन्द्रमौलिजी विद्वानोंके भाषण आदिकी उत्तम व्यवस्था करते थे। इसी उत्सवके समय एक दिन सर्वधर्म सम्मेलन हुआ, एक दिन कवि सम्मेलन हुआ और एक दिन स्त्री सम्मेलन भी हुआ जिसमे महाराजा ग्वालियरकी महारानी भी आई थीं। आपने आगत जैन समाजकी महिलाओं को बहुत ही रोचक व्याख्यान दिया। प० महेन्द्रकुमारजी और